MAHL-101

हिन्दी साहित्य का इतिहास और आदिकालीन कविता

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय–हल्द्वानी 263139
फोन नं : 05946–261122, 261123
टोल फ्री नं. 18001804025
फैक्स नं. 05946–264232 ई–मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

विशेषज्ञ समिति

प्रो. एच.पी. शुक्ला **निदेशक– मानविकी विद्याशाखा** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट 'बटरोही'** निदेशक, महादेवी वर्मा सृजन पीठ, रामगढ़, नैनीताल
प्रो. एस.डी. तिवारी विभागाध्यक्ष, हिन्दी गढ़वाल विश्वविद्यालय, गढ़वाल	**डॉ. जितेन्द्र श्रीवास्तव** हिन्दी विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विवि. दिल्ली
प्रो. डी.एस. पोखरिया विभागाध्यक्ष, हिन्दी कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल	**प्रो. नीरजा टंडन** हिन्दी विभाग कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं सम्पादन

डॉ. शंशाक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**डॉ. राजेन्द्र कैड़ा** अकादमिक एसोसिएट, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. राजेन्द्र कैड़ा अकादमिक परामर्शदाता, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**1,2,3,4**
प्रो. विजय कुलश्रेष्ठ 22, मोतीमगरी, उदयपुर, राजस्थान	**5,6,7,8**
डॉ. आलोक कुमार सिंह हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नई टिहरी, टिहरी, गढ़वाल–249001	**9,10,11,12,13,14**
डॉ. शीला रजवार नैनीताल	**15,16**
डॉ. अम्बुज पाण्डेय हिंदी विभाग के.वी. डिग्री कालेज, मीरजापुर उ0प्र0	**17**

मुद्रण : मई–2016 **ISBN 978-93-84632-67-0**

कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण : जून 2012, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

प्रकाशक निदेशालय : अध्ययन एवं प्रकाशन (उ.मु.वि.वि.) – 263139
mail : studies@uou.ac.in
मुद्रक : दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर मुद्रित प्रतियाँ 1000

अनुक्रम

MAHL-101

हिन्दी साहित्य का इतिहास और आदिकालीन कविता

		पृष्ठ संख्या
खण्ड –1	**साहित्येतिहास लेखन**	
इकाई – 1	इतिहास एवं साहित्येतिहास का संबंध	1–17
इकाई – 2	हिंदी साहित्येतिहास लेखन की परम्परा	18–39
इकाई – 3	हिंदी साहित्येतिहास लेखन की समस्या एवं नामकरण की समस्या	40–56
इकाई – 4	हिंदी साहित्येतिहास लेखन : काल विभाजन की समस्या	57–74
खण्ड – 2	**आदिकाल : परिचय एवं स्वरूप**	
इकाई – 5	हिंदी साहित्य के आदिकाल का उद्भव एवं विकास	75–85
इकाई – 6	हिंदी साहित्य के आदिकाल का स्वरूप एवं प्रक्रिया	86–105
इकाई – 7	हिंदी साहित्य के आदिकालीन कविता में रस, छंद, अलंकार योजना	106–119
इकाई – 8	हिंदी साहित्य के आदिकालीन कविता का भाषिक विवेचन	120–137
खण्ड – 3	**आदिकालीन कविता : पाठ एवं आलोचना**	
इकाई – 9	आदिकालीन सिद्ध साहित्य : परिचय एवं स्वरूप	138–154
इकाई – 10	आदिकालीन सिद्ध साहित्य : पाठ एवं परिचय	155–170
इकाई – 11	आदिकालीन नाथ साहित्य : परिचय एवं स्वरूप	171–185
इकाई – 12	आदिकालीन नाथ साहित्य : पाठ एवं परिचय	186–202
इकाई – 13	आदिकालीन जैन साहित्य : परिचय एवं स्वरूप	203–215
इकाई – 14	आदिकालीन जैन साहित्य : पाठ एवं परिचय	216–232
खण्ड –4	**आदिकालीन कविता : लौकिक साहित्य**	
इकाई – 15	विद्यापति : परिचय एवं पाठ	233–250
इकाई – 16	विद्यापति : साहित्य एवं आलोचना	251–270
इकाई – 17	अमीर खुसरो : परिचय, पाठ और आलोचना	271–286

इकाई 1 इतिहास एवं साहित्येतिहास का संबंध

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 इतिहास: अर्थ एवं स्वरूप
1.3.1 इतिहास : परिभाषा
1.3.2 इतिहास : विज्ञान अथवा कला
1.4 इतिहास लेखन की पाश्चात्य परम्परा
1.5 इतिहास लेखन की भारतीय परम्परा
1.6 साहित्येतिहास : अर्थ एवं स्वरूप
1.6.1 साहित्येतिहास : अवधारणा एवं परिभाषा
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.11 सहायक पाठ्य सामग्री
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य की संपूर्ण प्रक्रिया को समझने के लिए यह जानना बहुत जरूरी है कि हिंदी साहित्य के समग्र इतिहास की पृष्ठभूमि को समझने के उद्देश्य को पूर्ण करने वाली पहली इकाई है। प्रस्तुत इकाई के पूर्वार्द्ध में इतिहास की प्रक्रिया एवं उसके स्वरूप का विश्लेषण किया गया तथा साथ ही इतिहास की पाश्चात्य एवं भारतीय परम्परा का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है।

इकाई के उत्तरार्द्ध में साहित्येतिहास के स्वरूप एवं उसकी प्रक्रिया का विवेचन प्रस्तुत किया गया है । साथ साहित्येतिहास की पाश्चात्य एवं भारतीय परंपरा का परिचय देते हुए इतिहास एवं साहित्येतिहास के अन्तर्संबंधों पर भी प्रकाश डाला गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पाश्चात् आप इतिहास एवं साहित्येतिहास के स्वरूप, उसकी प्रक्रिया एवं दोनों ही की लेखन परम्परा से परिचित होंगे आप इतिहास एवं साहित्येतिहास के जटिल अन्तर्संबधों को जान सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि साहित्य के इतिहास का क्या महत्व है।
- बता सकेंगे कि इतिहास एवं साहित्येतिहास के परिप्रेक्ष्य में पश्चिमी तथा भारतीय विचारकों का क्या योगदान है।
- हिंदी साहित्येतिहास की सम्पूर्ण परम्परा की प्रक्रिया, पृष्ठभूमि एवं महत्ता को समझा सकेंगे।
- इतिहास एवं साहित्येतिहास के अन्तर्संबंध को समझा सकेंगे।

1.3 इतिहास: अर्थ एवं स्वरूप

'इतिहास' शब्द का अर्थ है - 'ऐसा ही था' अथवा 'ऐसा ही हुआ' इस दृष्टि से देखा जाए तो कहा जा सकता है कि अतीत के किसी भी वास्तविक घटनाक्रम का लिपिबद्ध रूप 'इतिहास' कहा जा सकता है। प्रश्न यह है कि क्या अतीत का कोई भी विवरण इतिहास कहा जा सकता है अथवा नहीं ? इस संदर्भ में यह कह देना श्रेयस्कर होंगा कि ''अतीत के गर्भ में इतना कुछ छिपा हुआ है कि उसे समग्र रूप में प्रस्तुत करना किसी भी इतिहासकार के वश की बात नहीं है। इसलिए विभिन्न इतिहासकार अपनी-अपनी रूचि एवं दृष्टि के अनुसार अतीत के कुछ पक्षों को अपने-अपने शब्दों में

प्रस्तुत करते प्रत्येक व्यक्ति जो कुछ देखता है, उसमें उसकी वैयक्तिक रूचि के साथ-साथ उसके युग की सामूहिक चेतना, उसके बौद्धिक विकास एवं उसकी भावात्मक प्रवृत्तियों का प्रभाव भी मिश्रित होता है'' इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास लेखन के विभिन्न दृष्टिकोण हो सकते है तथा इसी आधार पर इतिहास के वास्तविक, अर्थ को जानना दुश्कर हो जाता है। इस समस्या के समाधान के लिए सर्वप्रथम हमें यह जानना आवश्यक है कि 'इतिहास क्या है ? इतिहास के वास्तविक अर्थ को जाने बिना हम इतिहास की प्रक्रिया, उसके स्वरूप एवं उसकी विभिन्न लेखन परम्पराओं को ठीक से नहीं समझ सकते। इसलिए आइए सर्वप्रथम हम इतिहास की कुछ मान्य परिभाषाओं के विश्लेषण से यह जानने का प्रयत्न करें कि 'इतिहास' क्या है?

1.3.1 इतिहास: परिभाषा

ग्रीक विद्वान हीरोद्योत्तस (484-425 ई.पू0) को इतिहास का संबंध खोज एवं अनुसंधान से माना है तथा इस संबंध में उसकी पांच विशेषताएं बताई हैं -

1. ये वैज्ञानिक विद्या है -क्योंकि इसकी पद्धति आलोचनात्मक होती है।
2. मानव जाति से संबंधित होने के कारण यह मानवीय विद्या है।
3. यह तर्क संगत विद्या है - क्योंकि इसमें तथ्य एवं निष्कर्ष प्रमाण पर आधारित होते हैं।
4. यह अतीत के आलोक में भविष्य पर प्रकाश डालता है, अतः शिक्षाप्रद विद्या है।
5. इतिहास का लक्ष्य प्राकृतिक या भौतिक लक्ष्य की प्रक्रिया का परिवर्तन करना है।''

महाभारत में कहा गया है इतिहास अतीत का एक ऐसा वृत्त होता है जिस के माध्यम से धर्म अर्थ, काम एवं मोक्ष का उपदेश दिया जा सकता है। ''धर्मार्थकाम मोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्। पूर्ववृत्तं कथायुक्तमिनतिहासं प्रचक्षते।।''

हीरोद्योतस का मानना था कि ''इतिहास परिवर्तन की प्रक्रिया है, उससे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक सत्ता अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच कर अन्त में अपकर्ष की ओर अग्रसर हो जाती है।''

हनरी जॉनसन के अनुसार अतीत की प्रत्येक घटना इतिहास की कोटी में आती है। उनके अनुसार ''इतिहास विस्तृत रूप में वह प्रत्येक घटना है जो कि कभी धटित हुई।'' परन्तु क्योंकि अतीत की कुछ घटनाओं का संबंध पशु जगत से होता है अतः जॉनसन की यह परिभाषा अतिवादी कोटी की परिभाषा कही जाती है।

सर चार्ल्स फर्थ - ''इतिहास मनुष्य के समाज में जीवन का, समाज में हुए परिवर्तनों का समाज के कार्यों को निश्चित करने वाले विचारों का तथा उन भौतिक दशाओं का, जिन्होंने उसकी प्रगति में सहायता की, का लेखा जोखा है।''

इम्यूनल काण्ट (1724-1804) ''प्रत्यक्ष जगत में वस्तुओं का विकास उसके प्राकृतिक इतिहास के समकक्ष रहता है। बाह्य प्रगति उन आंतरिक शक्तियों की कलेवर मात्र होती है, जो एक निश्चित नियम के अनुसार मानव जगत में कार्यशील रहती है।'' काण्ट की परिभाषा में गहन दार्शनिकता का भाव मिलता है। दरअसल काण्ट के अनुसार जिस प्रकार समस्त मानव जीवन का बाह्य विधान नियमों से बद्ध रहता है वैसे ही मनुष्य का ऐतिहासिक जीवन (इतिहास) भी आंतरिक प्रवृत्तियों द्वारा परिचालित होता है।

रपसन -''घटनाओं अथवा विचारों का अति से सम्बद्ध विवरण ही इतिहास है।'' रैपसन की यह परिभाषा इतिहास की आंतरिक बुनावट में घटित घटनाओं की पारस्परिक तारतम्यता को उद्घाटित करती है।

टॉमस कार्लाइल - ''इतिहास असंख्य जीवन-वृत्तों का सार हैं।''

आर.जी.कांलिंगवुड -''इतिहास समाजों में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों एवं उपलब्धियों की कहानी है।'' साथ ही कांलिंगवुड ने यह भी लिखा है ''सम्पूर्ण इतिहास विचारधारा का इतिहास होता है।''

ई.एच.कार - इतिहास को तटस्थ क्रिया न मानकर इतिहासकार एवं तथ्यों के मध्य व्याप्त जीवंत प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। कार का यह कहना कि तथ्य स्वयं नहीं बोलते अपितु सुविज्ञ इतिहासकार उनसे (तथ्यों से) अभीष्ट बुलवाता है - सही है। ई.एच0 कार ने लिखा है कि ''वास्तव में इतिहास, इतिहासकार एवं तथ्यों के बीच अर्न्तक्रिया की अविछिन्न प्रक्रिया तथा वर्तमान और अतीत के बीच अनवरत परिसंवाद है।

''भारतीय साहित्य में 'इतिहास' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'अथर्ववेद' में प्राप्त होता हैं तदन्तर यह शब्द शतपथ ब्राह्मण, जैनिनीय, बृहदारण्यक तथा छान्दोगोपनिषद में प्रयुक्त हुआ है।

'छान्दोग्योपनिषद' के अनुसार इतिहास का विषय निम्नलिखित है -"

आध्यादि बहुत्याख्यानं देवर्षिचरिताश्रयम्।
इतिहासमिति प्रोक्तंभविष्याद्भुतधर्मयुक।।''

प्रस्तत परिभाषाओं के विश्लेषण से यह बात आसानी से जानी जा सकती है कि इतिहास को लेकर दुनिया भर के विद्वानों ने कितना विचार-विमर्श किया है। इकाई के आगे आने वाले भागों में आप

इतिहास की परम्परा के दो धुरवों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। इतिहास के आधुनिक स्वरूप का विकास पश्चिम में अवश्य हुआ परन्तु इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि भारतीय विद्वानों के पास ऐतिहासिक-दृष्टि का अभाव रहा है। इस संशय का शमन भी इकाई के अगले भागों में जाएगा। परिभाषाएँ किसी भी विषय को समझने के लिए आधार भूमि का काम करती है परन्तु समय के साथ-साथ बड़ी-बड़ी परिभाषाएँ भी अपूर्ण हो जाती है। इतिहास स्वयं में एक जीवन प्रक्रिया है अतः परिभाषाओं के आधार पर उसे बहुत मोटे तोर पर समझे जाने का प्रयास तो किया जा सकता है परन्तु समग्र तौर पर समझा नहीं जा सकता। अतः परिभाषाओं का मोह त्याग कर हम इतिहास की आंतरिक बुनावट पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करने का प्रयत्न करते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में सबसे पहले जिस प्रश्न से हमारा सामना होता है वह प्रश्न है कि इतिहास अपनी आंतरिक प्रक्रिया में विज्ञान है अथवा कला ?

1.3.2 इतिहास : विज्ञान अथवा कला

किसी भी अन्य अनुशासन की तरह ही इतिहास के अध्ययन की भी अपनी कुछ समस्याएँ है। इन्हीं समस्याओं से जुझते हुए विभिन्न विद्वानों ने इतिहास एवं उसके दर्शन की व्याख्या की है। सर्वप्रथम यह सुनिश्ति करने का प्रयास किया गया है कि अपनी आंतरिक प्रगति के आधार पर इतिहास को विज्ञान माना जाए अथवा कला। इस प्रश्न का एक-रेखीय उत्तर देना कठिन एवं कई तरह से अव्यवहारिक माना गया है तथा इतिहास को कला एवं विज्ञान को गुणों से समन्वित अनुशासन बताया गया है। विभिन्न विद्वानों ने इतिहास को अलग-अलग कारणों के चले 'कला' एवं 'विज्ञान' की कोटी में रखा है। परन्तु बहुत स्पष्ट रूप से 'इतिहास' को मात्र 'कला' अथवा मात्र 'विज्ञान' कहना उचित नहीं कहा जा सकता। इतिहास के भीतर कलात्मकता की जिनती आवश्यता है उतनी ही आवश्यता वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता की भी है। इस संबंध में यह स्वीकार करते हुए भी कि इतिहास की आंतरिक प्रकृति में कलात्मकता का विशष पुट होता है यह कहा जा सकता है इतिहास की प्रकृति विज्ञान के बहुत अधिक समीप है। ''फिर भी एव वैज्ञानिक व इतिहासकार के मध्य यह कुछ अन्तर हैं - प्रथम के पास एक प्रयोगशाला होती है जबकि दूसरे के पास पुस्तकालय। वैज्ञानिक निर्णय, संक्षिप्त ओर अपरिवर्तनीय होते हैं जबकि इतिहासकार के निर्णय लचीले और विषय परक होते हैं। वैज्ञानिक, प्रतीकों और ग्राफों का प्रयोग करता है जबकि इतिहासकार का कार्य वर्णन और व्याख्या पर निर्भर होता है। वैज्ञानिक, वस्तुनिष्ठ होता है किन्तु इतिहासकार विषयपरक है। वैज्ञानिक विश्व पर लागू होने वाले नियमों को बनाता है किन्तु ऐतिहासिक नियम सदैव त्रुटिपूर्ण होते हैं। इतिहास और विज्ञान का मिल इस दृष्टि से एक है कि दोनों आंकड़ों के संकलन के लिए एक ही पद्धति को अपनाते हैं और दोनों का अंतिम ध्येय सत्य की खोज करना है।''

बोध प्रश्न

(क) सही विकल्प चुनिए

1. भारतीय साहित्य में इतिहास शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख किस ग्रंथ में मिलता है ?

   क. महाभारत

   ख. अथर्ववेद

   ग. रामायण

   घ. मनुसंहिता

2. 'इतिहास' की एक सटीक परिभाषा दीजिए तथा अपने शब्दों में उसकी संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

3. ग्रीक विद्वान हीरोद्योत्तस का जन्म कब हुआ था ?

1.4 इतिहास लेखन की पाश्चात्य परम्परा

जैसाकि पहले बताया जा चुका है कि इतिहास लेखन की परम्परा का आरम्भ ग्रीक विद्वान **हीरोद्योत्तस** (484-425 ई.पू.) से हुआ था। इसी समय एक अन्य पाश्चात्य इतिहासविद का नाम भी सामने आता है, जिसे **थूसीडॉइड्स** (471-401 ई.पू.) के नाम से जाना जाता है। हीरोद्योत्तस ने ग्रीक और पारसियों, पश्चिम तथा पूर्व, एशिया तथा यूरूप के कुछ महत्वपूर्ण युद्धों, उन जातियों की जीवन पद्धतियों इत्यादि का महत्वपूर्ण उल्लेख अपनी कृतियों में किया था। अपनी कुछ आंतरिक त्रुटियों के बावजूद थूसीडाइड्स ने ऐथेन्स और स्पाटा के बीच हुए विश्व प्रसिद्ध 'पेलोपोनेशियन' युद्ध का सटीक इतिहास लेखन किया था। इनके उपरांत रोम निवासी **पौलीबियस** (204-122 ई.पू.) केटा (ई.पू. 160 के लगभग) जूलियस सीजर (ई.पू. 51), लीवी (ई.पू. 59 से 17) टैसीटस कॉन्स्टैन्टाइन (306-337 ई.) तथा 'सिवितास दाई' के लेखक 'सेंट ऑगस्टाइन' का नाम पाश्चात्य इतिहास दर्शन के इतिहास में महत्वपूर्ण है।

यूरोपीय इतिहास लेखन के मध्य युग में हमें इतिहास लेखन की दो प्रवृत्तियॉं दिखाई देती है एक तरफ सेंट आगस्टाइन की तटस्थ इतिहास लेखन पद्धति है तो दूसरी तरफ, थूसेबियस, सुकरात, सोजोमेन, थियोडोरेट, फैसिओडोरस जैसे इतिहास लेखकों की इतिहास पुस्तकें प्राप्त होती हैं जिनके विचार, धार्मिक विचार पद्धति पर आधारित होते थे. यूरोप में इतिहास लेखन के विकास का विश्लेषण करते

हुए डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है ''धार्मिक एवं साम्प्रदायिक संघर्ष के फलस्वरूप इतिहास-लेखन को तो प्रोत्साहन प्राप्त हुआ हो, साथ ही कुतुबनुमा जैसे वैज्ञानिक आविष्कार ने भी इस कार्य में सहायता प्रदान की। धार्मिक कारणों से ही किन्तु कुतुबनुमा की सहायता से लम्बी समुद्री यात्राएं की गई और भूमि भागों की खोज ने ईसा की 16वीं-17वीं शताब्दियों में इतिहास-अध्ययन की ओर अधिकाधिक ध्यान दिलाया'' इसी विश्लेषण को विस्तार देते हुए खोज के फलस्वरूप यूरोपीय देशों में जो सामाजिक और आर्थिक उथल-पुथल उत्पन्न हुई उससे ईसा की 16वीं-17वीं शताब्दियों में ही जो संवैधानिक एवं प्रणयन को फिर एक नया आयाम प्राप्त हुआ। 18वीं सदी तक आते-आते यूरोप के भीतर राजनैतिक एवं धार्मिक संघर्ष अपनी अंतिम अवस्था भी पार कर शांत हो चला था अतः तत्कालीन इतिहास लेखन इन प्रभावों से अपने को मुक्त कर के ज्ञान एवं तथ्य की भूमि को आधार बनाकर विकसित होने लगा 'जिओवानी बातिस्ता वीचो (1668-1744) ने राजनैतिक युद्ध संघर्ष की मानसिकता से इतिहास लेखन को मुक्त कर के प्रथम बार समाज केन्द्रित इतिहास दृष्टि का विकास किया उसकी इस परम्परा को मांतेस्क्यू (1689-1755) ने विकसित किया। ''उसने अपनी रचनाओं द्वारा प्रकृति वैज्ञानिक की भॉति तटस्थ दृष्टिकोण ग्रहण कर इंगलैण्ड, फ्रांस और राम के विधानों के क्रमिक विकास का तुलनात्मक अध्ययन कर संस्थाओं और विचारों के विकास में जलवायु को प्रमुख कारण माना,'' मांटेस्क्यू के पश्चात् यूरोपीय विद्वानों की एक लम्बी सूची इतिहास-लेखन के विकास में अपना योगदान देती रही। इस सूची के प्रमुख नाम निम्नलिखित हैं -

वाल्तयर (1694-1778), डेविड ह्यूम (1711-1776) विलियम रॉबर्ट्सन, माइकेल श्मिट (1736-1794) एडवर्ड गिबनर (1737-1794), अनाल्ड हीरेन (1760-1842), जे0जी0 फिख्टे (1762-1814), फ्रीड्रिख श्लेगेल (1772-1829), एफ0 डब्ल्यू0 शेलिंग (1775-1854), फ्रीड्रिख हेगेल (1770-1831), हाइनरिख लिओ (1799-1878), कार्लाइल (1795-1881)। इस सम्पूर्ण परम्परा के पश्चात् भी यूरोप के विभिन्न भागों में इतिहास-लेखकों की नवीन परम्पा का उद्भव एवं विकास होता रहा। आगस्ट कॉम्टे, जस्टस मोसर, बार्थोल्ड नीबूर (1776-1831), लिओपोल्ड रैंके (1795-1886) एवं थिओडोर मॉमसेन, विलियम स्टब्स, जान रिचर्ड ग्रीन, जॉन आर0 सीले, सेम्युअल आर0 गार्डिनर, आर0जी0 कालिंगवुड, बरट्रेण्ड रसल का इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इसके साथ-साथ यूरोप के भीरत ही मार्क्स के विचारों के आधार पर इतिहास की एक नया व्याख्या प्रस्तुत की जाने लगी। कार्लमार्क्स, लुडविग फायरबाख, लोरिया, एश्ले, हैमण्ड्स, बोगार्ट आदि इतिहासविदों इस परम्परा का क्रमशः उन्नयन किया।

बोध प्रश्न -

1. यूरोप के पाँच प्रमुख इतिहासकारों के नाम लिखिए।
2. ग्रीक इतिहास लेखन का प्रथम विद्वान किसे माना जाता है।

सही विकल्प चुनिए -

3. क. जिवोवानी बातिस्ता वीचों का कालखण्ड माना जाता -

अ. 1668-1744

ब. 1774-1826

स. 1568-1644

द. 19 वीं सदी का प्रारम्भ

ख. हीरोद्योत्तस के पश्चात् प्रख्यात इतिहासकार थे -

अ. बेंजामिन फ्रैंक

ब. रोनाल्ड रीगल

स. थूसीडाइड्स

द. इनमें से कोई नहीं

1.5 इतिहास लेखन की भारतीय परम्परा

प्राचीन भारत के इतिहास लेखन की परम्परा का अपना विशिष्ट चरित्र है। आधुनिक यूरोपीय इतिहास दृष्टि से अलग भारतीय इतिहास को भी अपनी विशिष्ट पद्धति एवं प्रक्रिया है। प्राचीन भारतीय दृष्टि आधुनिक इतिहास दृष्टि से मेल नहीं खाती इसलिए आधुनिक इतिहास दृष्टि को एक मात्र 'इतिहास' दृष्टि मानने वाले बहुत से विशेषज्ञों का मानना है कि प्राचीन भारतीय विद्वान या तो इतिहास लेखन को महत्वहीन मानते थे अथवा प्राचीन भारत में इतिहास लेखन होता ही नहीं था।

डॉ. एच.सी. शास्त्री ने लिखा है, ''प्राचीन भारतीयों ने इतिहास के प्रति विशेष ध्यान नहीं दिया क्योंकि वे अतीत तथा वर्तमान के भौतिक जीवन की अपेक्षा आगामी जीवन में रूचि रखते थे।'' यह बात संभवतः कुछ हद तक सच हो सकती है परन्तु वास्तविक बात यह नहीं है। निःसंदेह प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में अनेक समस्याएं थीं फिर भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखकों ने इस दिशा में निरन्तर प्रयास जारी रखे। इतिहास लेखन के प्रति भारतीयों की अरूचि के बाद भी यहाँ पर लेखन हेतु विशाल ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध थी जिसका विद्वानों ने समय-समय पर प्रयोग किया। इस संबंध में प्रोफेसर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी का कथन बहुत असंतग है कि प्राचीन भारत में श्रेष्ठ ऐतिहासिक साहित्य की रचना नहीं हुई ऐतिहासिक महत्व के ग्रंथ किन्ही कारण वश खो गए हैं अथवा नष्ट हो गए हैं परन्तु यह संभावना उचित नहीं प्रतीत होती कि सभी ग्रंथ नष्ट हो गए हों। यदि

कुछ ग्रंथ उस काल में लिखे गए होते तब उनका कोई न कोई संकेत अथवा संदर्भ बाद के लेखकों की कृतियों में अवश्य मिलता परन्तु इस तथ्य को लगभग सभी विद्वानों ने स्वीकार किया कि मुद्राओं, अभिलेखों कास्यं, प्लेटों और सिक्कों के रूप में प्राचीन इतिहास को जानने के महत्वपूर्ण साक्ष्य बहुत बड़ी मात्रा में आज भी उपलब्ध हैं। प्राचीन भारत के इतिहास से संबंधित ग्रंथों को हम इस प्रकार विश्लेषित कर सकते है।

1. **वद** - प्राचीन भारतीय साहित्य में वेदों का स्थान अप्रतिम हैं। वेद न केवल धार्मिक दृष्टि से सर्वोपरि माने गए हैं अपितु अपनी विशद विषयवस्तु और गंभीरता के लिए विश्व साहित्य में अपना अलग स्थान रखते हैं। ये संख्या में चार हैं - ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद। यद्यपि इन वेदों का महत्व धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक है तब भी वैदिक भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं भाषिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन इनमें प्राप्त होता है। इन ग्रंथों से प्राचीन भारतीय इतिहास की विपुल सामग्री प्राप्त की गई है तथा भविष्य में होने वाले शोधों से वेद भारतीय इतिहास लेखन में और अधिक महत्वपूर्ण होकर उभरेंगे इस बात पर संशय की कोई संभावना नहीं है।

2. **ब्राह्मण ग्रंथ एवं उपनिषद** - वेदों के अतिरिक्त अन्य वैदिक साहित्य में निहित सामग्री को भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। धार्मिक एवं ऐतिहासिक रूप से वेदांग एवं सूत्र साहित्य का अत्यधिक महतव है। उपनिषद एवं ब्राह्मण ग्रंथ इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

3. महाकाव्य - लौकिक संस्कृत को दो महान महाकाव्यों की विषय वस्तु प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। आदिकवि वाल्मिकी प्रणीत 'रामायण' एवं महाकवि व्यास द्वारा लिखित 'महाभारत' इस कोटी की सर्वोपरि रचनाएँ है। इसके अतिरिक्त लौकिक संस्कृत साहित्य की कई महत्वपूर्ण रचनाएँ तत्कालीन भारतीय समाज, राज्य, संस्थाओं, प्रशासकों एवं सामान्य जनों की रीति-नीति एवं प्रबंधन की अत्यावश्यक ऐतिहासिक सामग्री से ओत-प्रोत है।

4 . पुराण - इनकी कुल संख्या 18 है. हांलाकि उप-पुराणों की संख्या बहुत अधिक है। इस पुराण साहित्य की विषय-वस्तु भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

5 . जन तथा बौद्ध साहित्य - प्राचीन भारत के दो महान धर्मों से संबंधित ग्रंथों का महत्व न केवल धार्मिक रूप में है अपितु इतिहास लेखन की सामग्री के रूप में भी जैन एवं बौद्ध साहित्य का महत्व स्पष्ट है। जैन एवं बौद्ध धर्म से संबंधित साहित्यिक एवं अन्य अनुशासनपरक सामग्री का उपयोग आरम्भ से लेकर अब तक इतिहास लेखकों ने निरंतर किया है। अब तक इतिहास लेखकों ने निरंतर किया है। जैन धर्म के अंतर्गत भद्रबाहु चरित, नेमिनाथ चरित, पउम चरिउ, महापुराण, कथाकोश इत्यादि तथा बौद्ध धर्म के अन्तर्गत (क) पिटक (ख) जातक (ग) निकाय, इन तीन अंगों का साहित्य आज उपलब्ध है। बौद्ध पिटक साहित्य के अन्तर्गत तीन महत्वपूर्ण अंग हैं (1) विनय पिटक (2) सुत्त

पिटक (3) अभिधम्म पिटक। जातक साहित्य में बुद्ध के पूर्व-जन्मों का वर्णन मिलता है। बौद्ध धर्म से संबंधित अधिकांश साहित्य पाली भाषा में उपलब्ध है। परन्तु परवर्ती काल में संस्कृत भाषा में भी बौद्ध धर्म से परिचालित बहुत सा साहित्य प्राप्त हुआ है। इन दोनों ही धर्मों का यह प्राप्त साहित्य प्राचीन भारत के इतिहास लेखन के अत्यधिक महत्व के इतिहास लेखन के अत्यधिक महत्व रखता है।

प्रमुख साहित्यिक ग्रंथ - आज इतिहास लेखकों के पास प्राचीन भारतीय विद्वानों द्वारा लिखित अकृत साहित्य उपलब्ध है जिसका उपयोग भारतीय इतिहास लेखन के लिए किया जाता रहा है। साहित्य, दर्शन, न्याय, व्याकरण, साहित्य, कला, संगीत आदि अनुशासनों से संबंधित अनेकानेक महत्वपूर्ण ग्रंथों को इस कोटी में रखा जा सकता है। इनमें से प्रमुख ग्रंथ निम्नलिखित हैं -

1. अष्टाध्यायी (व्याकरण ग्रंथ-आचार्य पाणिनि)

2. महाभाष्य (व्याकरण ग्रंथ - आचार्य पंतजलि)

3. अर्थशास्त्र (राजनैतिक एवं आर्थिक ग्रंथ आचार्य कौटिल्य)

4 . कामसूत्र (ललित ग्रंथ - आचार्य वात्स्यायन)

साथ ही महाकवि कालिदास, भवभूति, भारवि, श्रीहर्ष, बाणभट्ट, राजशेखर कल्हण, मास, विल्हण, जगन्नाथ आदि अनेकानेक कवियों, काव्यशास्त्रियों, विचारकों एवं साहित्यिकों द्वारा लिखित रचनाओं का उपयोग प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में निरंतर सहायता प्रदान करता है। इनके अतिरिक्त मध्यकालीन प्रादेशिक बोलियों एवं भाषा में लिखा गया अकूत साहित्यिक भण्डार भी प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत के इतिहास लेखन के आवश्यक सामग्री उपलब्ध कराता रहा है। महाकवि चंदबरदायी, कबीर, सूरदास, नामदेव, तुकाराम आदि अनेक कवि एवं साहित्यिकों के ग्रंथ इस कोटी में रखे जा सकते हैं।

कल्हण - कल्हण प्राचीन भारत का एक प्रसिद्ध इतिहासकार है। कल्हण का संबंध वर्तमान कश्मीर से है। वह एक विद्वान कश्मीरी ब्राह्मण था। माना जाता है कि कल्हण के विद्वान पिता 'कण्पका' कश्मीर के यशस्वी राजा हर्ष के दरबार में मंत्री था। कल्हण द्वारा लिखित विश्वप्रसिद्ध ज्ञानकोश ग्रंथ का नाम राजतंरगिणी (1148 ई.) था। इस ज्ञानकोश का लेखन कल्हण द्वारा दो वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात् किया गया। मूलतः कश्मीर पर लिखे गए इस ग्रंथ का महत्व अन्ततः सम्पूर्ण भारतीय इतिहास लेखन में अक्षुण्ण रहेगा।

मध्यकाल क अन्य सहायक ग्रंथ - मध्यकालीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के प्रसिद्ध अन्वेषक महीबुल हसन ने कहा है, ''मध्युगीन इतिहासकारों ने अपने उद्योग को गम्भीरता से लिया और इतिहास के उच्च विचार को बनाए रखा। उदाहरण के तौर पर, बरनी इतिहास और इल्म-उल

हदीस को समतुल्य मानता था और विश्वास करता था कि इतिहासकार को सत्य के प्रति निष्ठावान होना चाहिए और अतिश्योक्ति तथा शब्दों की वृथा भाषा से परहेज रखना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्यवश, अधिकांश मध्यकालीन इतिहासकार दरबार से संबंध रखते थे, उन्होंने केवल वह ही नहीं लिखा जो उन्हें उपयुक्त अनुभव हुआ वरन् अपने संरक्षकों को उनकी प्रशंसा के लेखों तथा काव्यों से तुष्ट भी किया।'' तटस्थ कवियों एवं साहित्यिक विद्वानों के अतिरिक्त मध्यकाल के बहुत से दरबारी कवियों, विद्वानों एवं इतिहासकारों ने अनेक ऐसी इतिहास परक पुस्तकों की रचना की जिनका उपयोग प्राचीन एवं मध्कालीन इतिहास लेखन के आवश्यक है। यह सामग्री अरबी तथा फारसी में उपलब्ध है जिनमें से कुछ प्रमुख पुस्तकों का अनुवाद हिंदी, अंग्रेजी तथा अन्य प्रादेशिक एवं विदेशी भाषाओं में किया जा चुका है।

इस प्रकार की प्रमुख पुस्तकें निम्नलिखित है -

1 . तबकात-ए-नासिरी - मिनहाज-उस-सिराज़

2 . तारीख-ए-मुहम्मदी-मुहम्मद बिहमद खानी

3 . तारीख-ए-मुबारक शाही - याहा बिन अहमद

4 . सीरत-ए-फिरोजशाही-शम्स सिराज अफीफ

5 . तारीख-ए-फिरोजशाही - शम्स सिराज अफीफ

6 . ताज उल मासिर - हसन निजामी

7 . तुगलकनामा - अमीर खुसरो

8 . फुतुह उल सलातीन - इसामी

9 . शाहनामा - फिरदौसी

10 . तहकीक-ए-हिंद - अलबरूदी

11 . आइन-ए-सिकन्दरी - अमीर खुसरों

12 . तारीख-ए-इलाही - अमीर खुसरो

13 . सान-ए-मुहम्मदी - जियाउद्दीन बरनी

14 . तारीख-ए-फिरोजशाही - जियाउद्दीन बरनी

15 . रहेला - मुहम्मद बिन मुहम्मद 'इब्नबतूता'

16 . जफरनामा - शराफुद्दीन अली याजदी

17 . तारीख - ए- दाऊदी - अब्दुलाह

इन प्रमुख इतिहास ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक मध्यकालीन मुस्लिम ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक मध्यकालीन मुस्लिम विद्वानों ने ऐसी बहुत पुस्तकों का प्रणयन कया है जो प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय समाज, संस्कृति, राजनीति, धर्म, अर्थ तथा जीवन-पद्धतियों का दिग्दर्शन कराती है। भारतीय इतिहास लेखन परम्परा में इन प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रंथों का महत्व सदा बना रहेगा।

बोध प्रश्न: लघु उत्तरीय प्रश्न

क. चार वेदों के नाम लिखिए तथा बताइये प्रमुख पुराणों की संख्या क्या है ?

ख. बौद्ध साहित्य के तीन अंग कौन-कौन से हैं ?

ग. अष्टाध्यायी एवं कामसूत्र के रचनाकार हैं ?

घ. अमीर खुसरों एवं इब्नबतूता की एक-एक कृतियों का नाम लिखो।

1.6 साहित्येतिहास: अर्थ एवं स्वरूप

सर्वप्रथम यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि साहित्येतिहास क्या है। वे कौन-कौन से तत्व है जो किसी संगठिन संरचना को साहित्येतिहास के रूप में परिभाषित करती है। इस संबंध में प्रख्यात साहित्येतिहासकार वार्ष्णेय का मत उद्धृत किया जा सकता है, '' साहित्येतिहास व केवल साहित्य का पुरावृत्त अथवा उसके अतीत का इतिवृन्तात्मक विश्लेषण है, न केवल जीवनियों या कविवृत्त का संग्रह है, न केवल स्त्रोतों की खोज है, न केवल भाषा वैज्ञानिक अध्ययन है, न केवल कला पाठालोचना है, न केवल विधाओं और आंदोलनों का विकास क्रम या धारा निरूपण है और न केवल आलोचना है। साहित्येतिहास का उद्देश्य न केवल कलाकारों को जन्म देना है, न संस्कृति का प्रचार करना है और न अध्यापक बनाना है। उस लम्बे उदाहरण के पश्चात् यह तथ्य निश्चित हो जाते हैं कि अन्ततः साहित्येतिहास क्या नहीं है जब एक बार यह तथ्य निश्चित हो जाए कि साहित्येतिहास क्या नहीं है तो वास्तविक अर्थों में साहित्येतिहास क्या है यह जानना कंचित सरल जान पड़ेगा।

1.6.1 साहित्यतिहास: अवधारणा एवं परिभाषा

इकाई के पूर्व भाग में हमने देखा कि साहित्येतिहास का स्वरूप निर्धारित करते समय हमें किन-किन तथ्यों को मूलवश साहित्येतिहास नहीं समझ रखना चाहिए। उपरोक्त विश्लेषण के पश्चात् निश्चित किया जा सकता है कि साहित्येतिहास की मूल अवधारणा क्या है।

(क) साहित्यतिहास की अवधारणा - अपने विश्लेषण को आगे बढ़ाते हुए श्री वार्ष्णेय लिखते हैं, '' साहित्येतिहास मानव जीवन की ऊर्जा, उसके सूक्ष्म स्फुलिंग, उसके चेतना के व्यपक ज्ञान की एक विशिष्ट होने के कारण उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व सर्वोच्च साधन है। वह एक ऐसी खोज का माध्यम है जिससे मानव मन का वह पक्ष ूा जाता है जो हमारे अस्तिचर्ममय अस्तित्व से उपर हैं। मैं साहित्येतिहास को ज्ञान की ऐसी विधा मानता हूँ जो कृतियों के अध्ययन द्वारा निरंतर परिवर्तनशील जीवधारियों का सार्वभौम के भीतर विकास (जैविक विकास नहीं) स्थिर करती है।'' इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्येतिहास ने ज्ञान की एक ऐसी शाखा के रूप में अपना विकास किया है जिसके अन्तर्गत साहित्य के माध्यम से मानव की समग्र वैचारिक एवं मनोगत चेतना के विकास का अध्ययन संभव है। प्रख्यात विद्वान **श्री नलिन विलोचन शर्मा** ने लिखा है, साहित्येतिहास ''नामेां की तालिका-मात्र नहीं है। वह केवल घटनाओं और तिथियों की भी सूची नहीं है और, साहित्यिक इतिहास लेखकों की ऐसी तिथिमूलक तालिका भी नहीं है, जिसमें उनकी कृतियों का विवण और सारांश मात्र है। साहित्यिक इतिहासकार के लिए यह तो आवश्यक है ही कि उसे प्राग्भावी साहित्य का पाठ सुलभ हो, क्योंकि साहित्यिक इतिहास तब तक लिखा ही नहीं जा सकता जब तक समृद्ध पुस्तकालय और सुव्यवस्थित सूचीपत्र न हो किन्तु यदि साहित्यिक इतिहासकार चाहता है कि स्वयं उसकी तिथिमूलक सूचीपत्र से कुछ अधिक भिन्न हो, तो उसे कार्य-कारण संबंध और सातत्य का ज्ञान, सांस्कृतिक परिवेश का कुछ बोध और उस व्यवस्था में यत्किंचत् प्रवेश होना ही चाहिए, जिसमें अंशीभूत प्रवेश होना ही चाहिए, जिसमें अंशीभूत कलाएँ अंशीभूत सभ्यता से संबद्ध रहती है।

(ख) साहित्यतिहास की परिभाषा - साहित्येतिहास की अवधारणा को निश्चित करने के पश्चात् अध्ययन की उपयोगिता के लिए आवश्यक है कि साहित्यिक इतिहास के स्वरूप का निर्धारण भी आवश्यक। इस संबंध में यह भी महत्वपूर्ण है कि साहित्यिेतिहास की एक निश्चित परिभाषा का निर्धारण एवं विशलेषण किया जाए। इसी आधार पर साहित्येतिहास का स्वरूप स्पष्ट किया जा सकता है। विद्यार्थियों के अध्ययन को ध्यान मे रखकर हम कुछ सर्वमान्य परिभाषाओं को उद्धृत कर रहे हैं। इन्हीं परिभाषाओं के विश्लेषण से हम साहित्येतिहास का स्वरूप निश्चित कर सकेंगे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल - **''जबकि प्रत्यक दश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता ह, तब यह निश्चित ह कि जनता की चित्तवृत्ति क परिवर्तन क साथ-साथ साहित्य क स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता ह। आदि स अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों**

की परंपरा को परखत हुए साहित्य परंपरा क साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता ह।''

"किसी भी भाषा के साहित्य का इतिहास-लेखक उस भाषा के साहित्य के विषय में भाषा वैज्ञानिक गवेषणा पाठालोचन, सम्पादन, सांस्कृतिक चिंतन की व्याख्याओं, समीक्षाओं, समाज की परिवेशगत प्रवृत्ति आदि सभी अध्ययन प्रणालियों का उपयोग करता है और उसके प्रसाद का निर्माण इसकी नींव के बिना संभव नहीं है। परिभाषाओं के आलोक में साहित्येतिहास की जो तस्वीर सामने आती है उसे अतीत और वर्तमान, रूप और वस्तु के परम्परागत निष्कर्षों की कसौटी पर चर्चा का केन्द्र नहीं बनाया जा सकता। साहित्येतिहास में रचनाओं का मूल्यांकन रचनाकार की रचनाशीलता के संबंध में जीवन की वास्तविकता की मींमासा, परम्परा का विवेचन और युग की सामाजिक सांस्कृतिक खोज का काम होता है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न विद्वानों ने साहित्येतिहास की अलग-अलग परिभाषाएँ निश्चित की है जिससे अध्येता को साहित्येतिहास के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है।

1.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- ❖ इतिहास के अर्थ, स्वरूप एक प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।
- ❖ विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के माध्यम से इतिहास की अवधारणा का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।
- ❖ इतिहासलेखन की भारतीय एवं पाश्चात्य परम्परा को जान चुके होंगे।
- ❖ साहित्येतिहास का स्वरूप, अर्थ एवं प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

1.8 शब्दावली

साहित्येतिहास	-	साहित्य का इतिहास
परिप्रेक्ष्य	-	संबंध में, संदर्भ
श्रेयस्कर	-	लाभकारी, कल्याणकारी
कुतुबनुमा	-	दिशा सूचक यंत्र

सार्वभौम - जो सब जगह स्थित हो

सर्वमान्य - सभी को मान्य, स्वीकार

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.3 क उत्तर

(क) अथर्ववेद

(ग) 484-425 ई.पू.

1.4 क अभ्यास प्रश्नों क उत्तर

(अ) सेंट आगस्टाइन

(ब) मौतेस्क्यू

(स) वोल्तेयर

(द) फीड्रिख हेगेल

(य) कार्लाइल

2. हीरोद्योतस

3. सही विकल्प चुनिए

(क) 1668-1744

(ख) थूसीडाइड्स

1.6 अतिलघु उत्तरीय प्रश्न -

(क) ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद, सामवेद, 18 पुराण

(ख) (1) पिटक (2) जातक (3) निकाय

(ग) पाणिनी, वात्स्यायन

(घ) (1) तारीख-ए-इलाही - अमीर खुसरो

(2) रहेला - इब्नबतूता।

1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्त, गणपति, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खण्ड), 2010, लोकभारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ - 01
2. मौर्य, देवलाल, हिंदी साहित्य का इतिहास दर्शन और रामचंद्र शुक्ल, 1993, एक्सीलेंश पब्लिशर्स इलाहाबाद, पृष्ठ -03
3. गुप्त गणपति, पूर्वोक्त, पृष्ठ - 03
4. खुराना एवं बंसल, इतिहास लेखन, धारणाएँ तथा पद्धतियाँ , 2009-10, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, पृष्ठ - 03
5. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर, इतिहास और साहित्येतिहास 1984, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ - 37
6. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 37
7. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 38
8. खुराना एवं बंसल, पूर्वोक्त, पृष्ठ - 112
9. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 122
10. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर, पूर्वोक्त, पृष्ठ - 85
11. पूर्वोक्त, पृष्ठ - 86
12. शर्मा, नलिन विलोचन, साहित्य का इतिहास दर्शन, संवत् 2016, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृष्ठ - 33
13. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास संवत् 2055, काशीनागरी प्रचारिणी, सभा, वाराणसी, पृष्ठ-01

14. व्यास, भोलाशंकर, साहित्य का इतिहास - लेखन समस्या व समाधान, पृष्ठ – 04

1.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. इतिहास लेखन, धारणाएँ तथा पद्धतियॉं डा.0 के0एल0 खुराना, डा.0 आर0के0 बंसल लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

2. इतिहास और साहित्येतिहास, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, भारतीय साहित्य प्रकाशन मेरठ

3. हिंदी साहित्य का इतिहास-दर्शन, डॉ. शिवकुमार दिल्ली।

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

(क) इतिहास की परिभाषा देते हुए इतिहास लेखन की भारतीय एवं पाश्चात्य परम्परा का विवेचन कीजिए।

(ख) साहित्येतिहास से आप क्या समझते है? सविस्तार व्याख्या कीजिए।

इकाई 2 हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की परंपरा

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 हिन्दी साहित्येतिहास परम्परा का उद्भव एवं विकास
  2.3.1 हिन्दी साहित्येतिहास का स्वरूप
  2.3.2 हिन्दी साहित्येतिहास की सामग्री एवं स्रोत
2.4 हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा (एक)
  2.4.1 गार्सां द तासी कृत 'इतिहास'
  2.4.2 मौलवी करीमुद्दीन एवं एफ.फैलन कृत 'इतिहास'
  2.4.3 शिव सिंह सेंगर कृत 'इतिहास'
  2.4.4 सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन कृत 'इतिहास'
  2.4.5 मिश्रबन्धु कृत 'इतिहास'
  2.4.6 एडविन ग्रीव्ज कृत 'इतिहास'
  2.4.7 एफ.ई. के कृत 'इतिहास'
2.5 हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा (दो)
  2.5.1 आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत 'इतिहास'
  2.5.2 हिन्दी साहित्येतिहास के अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई हिन्दी स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के अंतर्गत सम्मिलित है.इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने जाना की इतिहास किसे कहते हैं. 'इतिहास' का अपना आतंरिक स्वरुप व उसकी प्रक्रिया क्या है साथ ही आपने यह भी जाना की साहित्येतिहास किसे कहते हैं ? साहित्येतिहास के लक्षण, स्वरुप और विशेषताएं क्या हैं। प्रस्तुत इकाई से पूर्व आपने इतिहास तथा साहित्येतिहास की विभिन्न लेखन पद्धतियों एवं परम्पराओं का ज्ञान प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे कि हिन्दी साहित्येतिहास का लेखन किन परिस्थितियों में प्रारम्भ हुआ। वो कौन-कौन से स्रोत थे जिनसे सामग्री संचयन कर इतिहास लेखकों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की नींव रखी। इस इकाई में आप यह भी जानेंगे कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का उद्भव एवं क्रमशः विकास कैसे हुआ. औपनिवेशिक एवं प्रति-औपनिवेशिक वातावरण ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की पद्धतियों को कैसे और कितना प्रभावित किया।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की सम्पूर्ण परम्परा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। जिसके आधार पर आप हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालखंडों एवं उनकी विशेषताओं तथा सीमाओं को जान सकेंगे.

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- बता सकेंगे कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में सामाजिक पृष्ठभूमि का क्या महत्व है तथा साथ ही यह भी बता सकेंगे कि साहित्य की विचारधारा को समाज कैसे और कितना प्रभावित कर सकता है।
- समझा सकेंगे कि हिन्दी समाज की ऐतिहासिक चेतना का विकास क्रमशः कैसे हुआ तथा हिन्दी साहित्येतिहासकारों ने इस चेतना का रेखांकन और मूल्यांकन कैसे किया।
- समझा सकेंगे कि किसी भी समाज की साहित्यिक चेतना को विकसित करने में इतिहास का क्या महत्व है।

2.3 हिन्दी साहित्येतिहास परम्परा का उद्भव एवं विकास

किसी भी साहित्य का इतिहास लेखन बहुत जरूरी है। इतिहास लेखन इसलिए जरूरी नहीं कि उक्त साहित्य की सुदीर्घ परम्परा को कुछ पृष्ठों के उपयोग से जाना जा सके अपितु उस साहित्य

के भीतर स्वयं अपने को पहचानने की आकॉक्षा इसका कारण होना चाहिए। दरअसल साहित्य केवल इसलिए नहीं होता है कि हम बीते हुए कालखण्ड को पहचान सकें अपितु साहित्य के इतिहास लेखन की प्रक्रिया अतीत के साथ-साथ वर्तमान को पहचानने की भी होती है।

2.3.1 हिन्दी साहित्यतिहास का स्वरूप -

हिंदी साहित्येतिहास को किसी भी कारण मिश्रबंधुओं से पहले नहीं खींचा जा सकता। हालांकि अन्ततः हिंदी साहित्य का पहला व्यवस्थित इतिहास तो **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** (1884-1941) का **'हिंदी साहित्य का इतिहास'** (1929) ही है। परन्तु सर ग्रियर्सन और मिश्रबंधुओं का अध्ययन हम हिंदी साहित्य के इतिहास को जाँचने वाली मेधा के दो ध्रुवांतों के रूप में कर सकते हैं। एक इतिहास (मिश्रबंधु विनोद) उस जाति की प्राचीन इतिहास-दृष्टि के साथ अपने वर्तमान को परिभाषित करने वाला दिखाई देता है तो दूसरा इतिहास (**द मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिट्रचर ऑफ हिन्दुस्तान**) उस जाति की चेतना को औपनिवेशिक प्रत्यारोपण के माध्यम से परिभाषित करने की कोशिश करता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में पहली बार साहित्य और समाज के गतिशील विकासवादी संबंधों को पहचानने की कोशिश की थी, जैसा कि उनका इतिहास संबंधी दृष्टिकोण है, जिसमें वे लिखते है: ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।"

कोई भी इतिहास साहित्य का लिखा जाएगा तो साहित्य में जनता की चित्तवृत्ति के अनुरूप कैसे परिवर्तन हुआ है और चित्तवृत्तियों में परिवर्तनों का सामाजिक कारण क्या है इसे दिखलाए बिना इतिहास नहीं हो सकता और परिवर्तनों में जब तक आप परम्परा का निरूपण नहीं करेंगे, नैरंतर्य नहीं दिखाएं गे, तब तक इतिहास नहीं होगा। इसलिए उसमें परम्परा और परिवर्तन, सामाजिक आधार पर चित्तवृत्तियों के अनुरूप साहित्य में जैसे-जैसे परिवर्तन होगा, दिखाएँगे । यही इतिहास होगा। निश्चित ही शुक्ल जी ने हिंदी को उसका पहला व्यवस्थित इतिहास ही नहीं अपितु हिंदी को एक व्यवस्थित इतिहास-दृष्टि भी प्रदान की। उन्होंने अपने से पहले की सम्पूर्ण ऐतिहासिक चेतना तथा साहित्य विषयक सामग्री को जोड़कर यह कार्य किया। सामाजिक चेतना के मौलिक परिवर्तनों के साथ क्रमश: विकसित होती हुई 'ऐतिहासिक-दृष्टि पर बात करते हुए प्रो.रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं : "19वीं सदी से ही आधुनिक चिंतन सामान्य जन को केन्द्र में रखकर चलता है। इसलिए इतिहास में राज-वंशों के स्थान पर सामाजिक इतिहास का महत्व, साहित्य में क्लैसिक आभिजात्य के स्थान पर रोमोंटिकों की जनसामान्य में रूचि, दर्शन में मानववादी परिणति, जनतंत्र का उदय, ये सभी प्रवत्तियॉ

एक ही दिशा की ओर संकेत करती है। इसी समय के आस-पास लोक इतिहास और लोक वार्ता में अध्ययन की निष्ठा जाग्रत होती है, और जर्मनी के पांडित्य में उस समय उपहास के विषय 'नव्य वैयाकरण' अतीत की गौरवशाली पर अब मृत भाषाओं के स्थान पर समकालीन जीवित एवं विकासशील जनभाषाओं के अध्ययन पर बल देते हैं।.....लोक जीवन और लोक शक्ति में आस्था आधुनिक विचारधारा की एक प्रमुख पहचान है।"

2.3.2 हिन्दी साहित्यतिहास की सामग्री एवं स्रोत

श्री देवलाल मौर्य ने 'हिंदी साहित्येतिहास लेखन के उद्गम स्रोत' का परिचय देते हुए लिखा "यह एक विचारणीय प्रश्न है कि हिंदी के इस विकसित रूप का मूल स्रोत क्या है और वह कहाँ से निकलकर कहाँ तक प्रवाहित हुआ है?..... मूल कृतियों के अतिरिक्त जो सूचनाएँ अन्य स्थानों से प्राप्त होती है, उन्हें साहित्येतिहास के स्रोत कहा जा सकता है। सामान्यतः इतिहास के स्रोत बहुमुखी होते हैं, परन्तु साहित्येतिहास के स्रोत काफी सीमित एवं कई श्रेणियों में विभक्त होते हैं। उसके पश्चात् उसी युग में लिखा गया अन्य साहित्य आता है। क्रमशः काल के विस्तार में लिखे गए साहित्य की प्रमाणिकता संदिग्ध होती जाती है परन्तु उनसे कार्य लेने के अपने ऐतिहासिक तरीके हैं।"

उन्होंने अपने से पूर्व में हुए अध्ययनों के आधार पर हिंदी साहित्येतिहास की सामग्री को 10 भागों में विभाजित किया है।

1- कविवृत्त-संग्रह,
2- पूर्ववर्ती इतिहास,
3- वार्ता-साहित्य,
4- भक्तमाल साहित्य
5- पश्चिमी साहित्य,
6- जीवनी साहित्य,
7- ग्रंथों में आए उद्धरण,
8- दरबारी ग्रंथ,
9- सांप्रदायिक ग्रंथ,
10- शिलालेख आदि।

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन के कुछ प्रमुख स्रोत-

1. कविवृत्त-संग्रह –

- कविमाला (संवत् 1712) 75 कवि संकलित।
- कालिदास हजारा (सन् 1719) 212 कवि।

- अलंकार-रत्नाकर (संवत् 1792) ।
- सार संग्रह (संवत् 1880) ।
- सत्कविगिराविलास (संवत् 1803) बदलेव कवि कृत-17 कवि संकलित।
- विद्वन्मोदतरंगिणी-राजासुब्बा सिंह (संवत् 1874) 44 कवि संकलित।
- राग कल्पद्रुम-कृष्णानंद व्यासदेव रामसागर (संवत् 1900) 200 संत कवि संकलित। मिश्रबंधुओं ने इसी ग्रंथ को 'रामसागरोद्भव संग्रह' माना है।
- रामचन्द्रोदय-ठाकुर प्रसार त्रिवेदी (संवत् 1920) 242 कवि संकलित।
- दिग्विजय भूषण-लाला गोकुल प्रसाद 'बृज' (संवत् 1952) 192 कवि संकलित।
- सुन्दरी तिलक-भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र (सन् 1869) 69 कवि संकलित।
- भाषा काव्य संग्रह (महेश दत्त शुक्ल) (सन् 1873) ।
- हिंदी-कोविद-रत्नमाला (तीन भागों में)-डॉ.श्यामसुदंर दास (सन् 1909-1914) ।
- कविता कौमुदी (चार भागों में) पं. रामनरेश त्रिपाठी (सन् 1922-1924)।
- ब्रजमाधुरी सार-वियोगी हरि (सन् 1923) ।

2. वार्ता साहित्य - सुप्रसिद्ध पुष्टिमाग्रीय संप्रदाय में इन ग्रंथों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये दो हैं –

- चौरासी वैष्णवन की वार्ता (सन् 1568 के लगभग)।
- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (सन् 1568 के लगभग)।

3. भक्तमाल साहित्य –

- नाभादास कृत 'भक्तमाल' (लगभग 1585)।
- जगाकृत 'भक्तमाल'।
- चैनजी कृत 'भक्तमाल'
- भगवत मुदित कृत 'रसिक अनन्यमाल'।

4. परिचयी साहित्य – यह भी भक्तमाल की तरह सन्त-भक्त कवियों के परिचय (चरित्र इत्यादि) का संकलन है।

- अनंतदास की 'परिचयियाँ ' सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

5. बीतक साहित्य या जीवनी साहित्य –

'बीतक' शब्द का अर्थ है – वृत्त या वृत्तान्त

- स्वामी लाल दास कृत बीतक
- ब्रजभाषा कृत बीतक।
- हंसराज स्वामी कृत बीतक इत्यादि।

हिन्दी साहित्य से संबंधित ऐसी इतस्तत सामग्री का अपना ऐतिहासिक महत्व है। महत्वपूर्ण होते हुए भी यह सामग्री इतिहास नहीं अपितु यह अपने आप में इतिहास-दृष्टि देने में भी असमर्थ है। संभवत: इतिहास-दृष्टि इस सामग्री के सापेक्ष कहीं और विकसित होकर इस सामग्री को अपने योग्य नियोजित करती है। राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दशाएं किसी जाति को अपने इतिहास (राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक) लिखने की प्रेरणा प्रदान करती है।

अभ्यास प्रश्न

साहित्य का इतिहास लेखन इसलिए जरुरी है क्योंकि -

1 . (सही उत्तर के सामने सही √ का निशान लगाएं)

(क) हमें स्वयं के अतीत के बारे में जानकारी मिल सके .

(ख) हमें स्वयं के अतीत के साथ-साथ वर्तमान की पहचान कर सकें.

(ग) हमें इतिहास-विषय में अच्छे अंक मिल सकें . फ्क

(घ) इनमें से कोई नहीं .

2 . सही विकल्प चुनिए

(क) कविता कौमुदी का सम्बन्ध किस से है

(1)रामचंद्र शुक्ल (2)नामवर सिंह (3)ग्रियर्सन (4)रामनरेश त्रिपाठी

(3) परिचयियाँ के लेखक हैं

(1) नाभादास (2) कबीर (3)अनंतदास (4)रैदास

4 . हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की स्रोत सामग्री पर एक संक्षिप्त टिपण्णी लिखिए (पांच पंक्तियों में उत्तर दें)

.....

.....

.....

.....

.....

2.4 हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा (एक)

2.4.1 गार्सां द तासी कृत 'इतिहास'

(इस्त्वार द ल लितेरेत्यूर ऐंदुइ ए ऐंदुस्तानी, 1839)- हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन का प्रथम प्रयास एक फ्रांसीसी विद्वान गार्सां द तासी (1794-1878) द्वारा किया गया। फ्रांस के प्रसिद्ध बन्दरगाह मारसेल में जन्में इस अध्येता को फ्रेंच, अंग्रेजी, लैटिन के अलावा फारसी, अरबी, तुर्की, उर्दू और संस्कृत भाषा की भी खासा ज्ञान था। पारसी विश्वविद्यालय में उर्दू के प्रोफेसर गार्सा द तासी ने 'इस्त्वार द ल लितेरेत्यूर ऐंदुइ ए ऐंदुस्तानी' के नाम से हिंदुई और हिन्दुस्तानी का इतिहास फ्रेंच भाषा में लिखा था। इसके प्रथम संस्करण का प्रथम भाग 1839 ई. में, जिसमें मात्र कवि परिचय था, प्रकाशित हुआ दूसरा भाग कुछ समय पश्चात् 1847 ई. में प्रकाशित हुआ। इस दूसरे भाग में फ्रेंच भाषा में कवियों की रचनाओं के उदाहरण संकलित थे। यह प्रथम संस्करण ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड की ओरिएंटल ट्रांसलेशन कमेटी द्वारा प्रकाशित किया गया था। उर्दू से लगाव होने के नाते इस ग्रंथ में उल्लिखित 738 कवि और लेखकों में से मात्र 72 हिंदी और उसकी बोलियों के कवि माने जा सकते हैं। "इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण तीन भागों में प्रकाशित हुआ। प्रथम एवं द्वितीय भाग सन् 1870 तथा तृतीय भाग 1871 में पेरिस से प्रकाशित हुआ। तीनों भागों में क्रमश: एक हजार दो सौ तेइस, एक हजार दो सौ और आठ सौ एक कवियों और लेखकों का उल्लेख है।"

खोज के पश्चात् भी इस ग्रंथ की मूल प्रति उपलब्ध नहीं हो पाई परन्तु सौभाग्य से हिंदी जगत के प्रख्यात विद्वान, **डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णय** द्वारा तासी के इस ऐतिहासिक ग्रंथ के सभी भागों की मूल भूमिकाओं एवं 358 कवि और लेखकों का परिचय '**हिन्दुई साहित्य का इतिहास' हिन्दुस्तानी एकडमी, उत्तरप्रदश इलाहाबाद** से सन् **1953** में किया गया है।

2.4.2 मौलवी करीमुद्दीन एवं एफ.फलन कृत 'इतिहास'

(तबकातुश्शुअरा 1848) - इस ग्रंथ को मौलवी करीमुद्दीन नामक व्यक्ति ने 1848 में देहली कॉलेज द्वारा प्रकाशित करवाया। इसे 'तबकातुश्शुअरा' अथवा 'तजकिरा-ई-शुअरा-ई-हिंदी' के नाम से जाना जाता है। दुर्भाग्यवश इस ग्रंथ का मूल, अनुवाद अथवा 'इसका कोई संक्षिप्त भाग' खोजने पर भी न मिल सका। विभिन्न विद्वानों द्वारा छिटपुट लेखों के आधार पर इस ग्रंथ के विषय में लिखा गया है। इन लेख-निबंधों द्वारा इतना ही ज्ञात हुआ है कि अन्तत: यह पुस्तक तजकिरा-ई-शुअरा-ई-हिंदी' 'तजकिरा' अर्थात् जिक्र (चर्चा) मात्र ही है। इस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर इंग्लिश में जो विवरण मुद्रित है वो इसके इतिहास (हिस्ट्री) होने की बात कहता है'' 'ए हिस्ट्री ऑफ उर्दू पोएटस चीफली ट्रांसलेटेड फ्राम इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी', वाई.एफ.फैलन ऐन्ड मौलवी करीमुद्दीन विथ ऐडिशन्स। देहदी कॉलेज, 1848''। हालॉकि मूलत: यह ग्रंथ तासी की इतिहास पुस्तक का अनुवाद है परन्तु बिहार शिक्षा विभाग के इंस्पैक्टर वाई.एफ.फैलन ने इसका अनुवाद उर्दू में किया जिसमें मौलवी करीमुद्दीन ने अपनी ओर से बहुत कुछ तोड़ा और जोड़ा है। यह जोड़-तोड़ इतनी अधिक है कि स्वयं तासी ने अपनी पुस्तक के द्वितीय संस्करण में इसका उपयोग किया है और इसे एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में मान्यता भी दी है।

2.4.3 शिव सिंह सेंगर कृत 'इतिहास'

(**शिवसिंह सरोज, 1878)** - शिवसिंह सेंगर द्वारा लिखा यह ग्रंथ अपने वृहद कवि संकलन के बतौर अपना महान ऐतिहासिक महत्व रखता है। डॉ.किशोरीलाल गुप्त हालाँकि इसे भी इतिहास ग्रंथ नहीं मानते परन्तु फिर भी वे इसे हिंदी साहित्येतिहास का प्रस्थान बिंदु मानते है।

'शिवसिंह पुलिस के सरकिल इंस्पेक्टर थे और प्राचीन काव्य में इनकी अभिरूचि थी। 'सरोज' में 838 कवियों की कविताओं के प्राय: दो हजार नमूने दिए गए हैं। काव्य संग्रह के उपरांत ग्रंथ के उत्तरार्द्ध में, प्राय: 125 पृष्ठों में सेंगर जी ने 1003 कवियों का जीवन चरित्र भी अकारादि क्रम से दिया है। इन 1003 कवियों में से 687 की तिथियॉं भी दी गई हैं, 53 कवि 'विद्यमान' कहे गए हैं, 263 कवि तिथिहीन हैं।''

अपनी विशाल सामग्री के कारण बाद के इतिहासकारों (जॉर्ज अब्राहम ग्रिर्यसन, मिश्रबंधु) के साथ अब तक भी 'शिवसिंह सरोज' का महत्व बना हुआ है, लेकिन ठेठ ऐतिहासिक दृष्टि के आभाव के कारण अन्तत: शिवसिंह सरोज भी इतिहास ग्रंथ नहीं है। वे ग्रंथ की भूमिका में ''भाषा काव्य निर्णय'' शीर्षक से हिंदी भाषा का मूल खोजने का प्रयत्न करते हैं। इसी स्मृति सम्पन्न प्रयत्न के चलते वे हिंदी की अपनी चेतना को लेकर विक्रम सवंत् 770 में विद्यमान पुंड कवि तक पहुँचते हैं।

2.4.4 सर जान अब्राहम ग्रियर्सन कृत 'इतिहास'

(द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान, 1889) - भाषा – वैज्ञानिक, इतिहासज्ञ और प्राच्य विद्याविशारद के रूप में सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1851-1941) का नाम सर्वप्रसिद्ध है। बिहारी भाषाओं के सात व्यकरण (1883-1887) लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया (11 जिल्दों में) जैसे महान और वृहदकाय ग्रंथ के अलावा इन्होंने 'द मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' (1889) जैसे ग्रंथ का भी प्रणयन किया। सन् 1886 में डॉ. ग्रियर्सन ने सप्तम अन्तर-राष्ट्रीय प्राच्य विद् सम्मेलन, वियना में हिन्दुस्तान (हिंदी भाषा-भाषी प्रदेश) के मध्यकालीन भाषा साहित्य और तुलसी पर एक लेख पढ़ा था, (मूल लेख-द मिडीवल वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान विद स्पेशल रेफ्रंस टु तुलसीदास) बहाने समूने हिंदी परिदृश्य पर लिखे गई इस लेख को सम्मेलन एवं उसके पश्चात् भी विद्वानों ने खूब सराहा और उसे अधिक स्थिर रूप देने को कहा। इसी का परिणाम यह हुआ कि ग्रियर्सन ने **'द मार्डन वर्नाक्यूलर लिटरचर ऑफ हिन्दुस्तान'** लिखा। जिसका प्रथम प्रकाशन 1888 में 'रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' की संख्या एक में हुआ। एक वर्ष पश्चात् यह वृहद निबंध पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुआ। ग्रियर्सन के ग्रंथ का अपना ऐतिहासिक महत्व है।

ग्रियर्सन के ग्रंथ में पहली बार इतिहास बोध को रेखांकित किया जा सकता है। डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय लिखते हैं "यद्यपि ग्रियर्सन का यह दावा है कि उन्होंने लगभग सभी 952 कवियों और लेखकों की रचनाओं को पूर्ण या आशिंक रूप में, या नमूनों के रूप में देखा था, तो भी, तासी और सेंगर के ग्रंथों की भॉति उनके ग्रंथ में बहुत से कवियों और लेखकों के नाम, जन्म–तिथि, निवासस्थान, आदि के साथ अध्यायों के अंत में पूरक अंश के रूप में अथवा विविध शीर्षक के अन्तर्गत दिए गए हैं। इसीलिए उन्होंने अपने ग्रंथ को विधिवत् लिखा गया साहित्येतिहास कहने में संकोच किया है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता काल-विभाजन है।"

ग्रियर्सन के इतिहास लेखन में कुछ ठोस विशेतषताएं भी हैं जिन्हें स्वीकार करके ही हिंदी साहित्येतिहास की ऐतिहासिकता पूर्ण होती है। दरअसल सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन के पास अपनी

व्यक्तिगत खोज और गहन अध्ययनशील प्रवृत्ति के चलते हिन्दुस्तान की भाषा एवं इसके साहित्य को समझने, इसके भीतर बहने वाली विभिन्न धाराओं को जॉचने की प्रखर संभावनाएं मौजूद थीं।

2.4.5 मिश्रबन्धु कृत 'इतिहास'

(**मिश्रबंधु विनोद, 1913**) - इटौंजा, जिला लखनऊ निवासी पं.गणेश बिहारी मिश्र, रावराजा डॉक्टर श्याम बिहारी मिश्र (1873-19 फरवरी 1947) डी.लिट्., साहित्य वाचस्पति पं.शुकदेव बिहारी मिश्र तीनों सगे भाई थे एवं ''मिश्रबंधु'' नाम से संयुक्त रूप से पुस्तकें लिखा करते थे। दिसंबर 1901 में इन्होंने 'सरस्वती' नामक प्रसिद्ध पत्रिका के एक अंक में 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' लिखने की बात कही थी। सन् 1900 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने हस्तलिखित हिंदी ग्रंथों की खोज का कार्य प्रारम्भ किया। 1900 से 1908 तक खोज कार्य के निरीक्षक बाबू श्यामसुंदर दास थे। 1909 से 1916 तक इसके निरीक्षक श्याम बिहारी मिश्र एवं शुकदेव बिहारी मिश्र हुए। इस खोज कार्य से मिश्र बंधुओं को इतिहास लिखने में बहुत सहायता हुई। इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण संवत् 1970 (सन् 1913) में प्रकाशित हुआ। उस समय इसमें तीन भाग, 1593 पृष्ठ तथा 3,757 कवियों एवं लेखकों के विवरण थे। कुल मिलाकर 4591 कवियों एवं लेखकों के विवरण समालोचनाओं एवं चक्रों में दिए गए थे। जब तक चतुर्थ भाग निकले, उसके पूर्व ही प्रथम भाग का तृतीय संस्करण, सं. 1986 (सन् 1929) में निकल गया।

इस प्रकार कई स्तरों से कवियों एवं लेखकों के विषय में सूचनाएं संग्रहित करने के पश्चात् 'मिश्रबंधुओं' ने एक बृहद्काय ग्रंथ का निर्माण किया जिसे स्वयं उन्होंने **'मिश्रबंधु विनोद' अथवा 'हिंदी साहित्य का इतिहास तथा कवि-कीर्तन'** कहना उचित समझा।

मिश्रबंधुओं ने हिंदी साहित्य के इतिहास को निम्नांकित कालों में विभाजित किया है। विषय-वस्तु के आधार पर यह काल-विभाजन 'मिश्रबंधु विनोद' के विभिन्न भागों में व्याप्त है।

पूर्व प्रारंभिक हिंदी सं. 700 स 1347 तक

चंद पूर्व हिंदी-सं. 700-1200

रासो काल – सं. 1201-1347

उत्तर प्रारंभिक हिंदी –सं. 1348-1444

उत्तर प्रारंभिक हिंदी-सं. 1348-1444

माध्यमिक हिंदी

पूर्व माध्यमिक-हिंदी-सं. 1444-1560

प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी-सं. 1561-1680

अष्टछाप-1561-1630

सौरकाल – 1561 -1630

गोस्वामी तुलसीदास तथा तुलसीदास की हिंदी-सं. 1631-1680

पूर्व तुलसीकाल- 1631-1645

माध्यमिक तुलसीकाल – 1646-1670

अंतिम तुलसीकाल – 1671-1680

(मिश्रबंधु विनोद-द्वितीय भाग सं.-1681-1889)

अलंकृत हिंदी

पूर्वालकृंत प्रकरण- 1681-1790

पूर्वालकृंत हिंदी

महाकवि सनापति

सेनापति काल 1681-1706

बिहारी काल 1707-1720

भूषण काल 1721-1750

आदिम देवकाल 1751-1771

माध्यमिक देवकाल 1772-1790

उत्तरालंकृत प्रकरण 1791-1889

उत्तरालंकृत हिंदी

दास काल 1791-1810

सूदन काल 1811-1830

रामचंद्रकाल 1839-1855

बेनी प्रवीन काल 1856-1875

पद्माकर काल 1876-1889

(मिश्रबंधु विनोद – तृतीय भाग 1890-1955)

अज्ञात काल-उन प्राचीन कवियों का अकारादि क्रम से वर्णन, जिनका काल निर्धारण नहीं हो सका।

परिवर्तन प्रकरण 1890-1925

परिवर्तन कालिक हिंदी

द्विजदेव काल 1890-1915

दयानंद काल 1916-1926

वर्तमान काल – 1926

वर्तमान हिंदी एवं पत्रपत्रिकाएं 1926-1945

पूर्व हरिश्चंद्र काल-1926-1935

उत्तर हरिश्चंद्र काल – 1936-1945

(मिश्रबंधु विनोद –चतुर्थ भाग- सं. 1946-1990)

पूर्व नूतन परिपटी 1945-1960

उत्तर नूतन परिपाटी 1961-1994

प्रथम भाग – 1960-1975

द्वितीय भाग आजकल 1976-1994 तक (सभी तिथियाँ विक्रम संवत् हैं।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी निर्धारित सीमा के भीतर रहते हुए मिश्रबंधुओं ने सम्पूर्ण हिंदी साहित्य का एक पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न अवश्य किया था। हालॉकि मिश्रबंधुओं से पूर्व जिस तरह ग्रियर्सन ने अपनी मानसिकता के अनुसार एक काल-विभाजन किया था उसी प्रकार मिश्रबंधुओं ने भी हिंदी की क्रमश: विकसित होती हुई स्वाभाविक चेतना को कालानुसार विभाजित किया। काल-विभाजन की यही चेतना आगे चलकर आचार्य शुक्ल के इतिहास में सर्वमान्य रूप ग्रहण करती है।

2.4.6 एडविन ग्रीव्ज कृत 'इतिहास'

(ए स्केच ऑफ हिंदी लिटरेचर-एड्विन ग्रीव्स,1918) **-** इसके पश्चात् एक अंग्रेज विद्वान एड्विन ग्रीव्ज ने 1918 में 'ए स्केच ऑफ हिंदी लिटरेचर' प्रकाशित किया। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने यथासंभव पिछली सारी साहित्यिक सामग्री से सहायता ली। मूल रूप से यह पुस्तक 112 पृष्ठों की

एक छोटी-सी रचना है। सम्पूर्ण पुस्तक आठ भागों में विभाजित है (मूल रूप से यह पुस्तक नहीं देखी गई है डॉ.किशोरीलाल द्वारा 'हिंदी साहित्य का रेखांकन' नाम से इसका अनुवाद 1995 में हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है।) श्री ग्रीव्ज ने बेहद संक्षिप्तता के साथ इस पुस्तक में हिंदी साहित्य का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया है। श्री ग्रीव्ज ने हिंदी साहित्य के इतिहास को पाँच भागों में विभाजित किया है

1. आदिकाल	-	सन् 1400 तक
2. रचनात्मक काल	-	1400-1580
3. विस्तार काल	-	1580-1700
4. स्थिर काल	-	1700-1800
5. पुनर्जागरण और परिवर्तनकाल	–	1800 से वर्तमान

श्री ग्रीव्ज न केवल भाषा के विषय में बेहद साधारण विचार प्रस्तुत करते हैं अपितु हिंदी साहित्य के जनमान्य महान कवियों विद्यापति, खुसरों, कबीर, सूर और अन्य बड़े कवियों पर बहुत चलते ंग से विचार करते हैं।

2.4.7 एफ.ई. क कृत 'इतिहास'

(ए हिस्ट्री ऑफ हिंदी लिट्रेचर, 1920) - 116 पृष्ठों की यह पुस्तक भूमिका, मानचित्र, संदर्भ ग्रंथ और नामानुक्रमिका के अतिरिक्त हिंदी साहित्य के इतिहास को कुल बारह अध्यायों में प्रस्तुत करती है।

1. हिंदी भाषा और उसकी पड़ोसी भाषाएं
2. हिंदी साहित्य का सामान्य सर्वेक्षण
3. आरम्भिक चारण युग के इतिवृत्त (1150-1400 ई.)
4. आरम्भिक भक्त कवि (1400-1550 ई.)
5. मुगल दरबार और उसका हिंदी साहित्य पर कलात्मक प्रभाव (1550-1800 ई.)
6. तुलसीदास और रामसम्प्रदाय (1550-1800 ई.)
7. कबीर के उत्तराधिकारी (1550-1800 ई.)
8. कृष्ण सम्प्रदाय (1550-1800 ई.)

9. चारण और फुटकल साहित्य (1550-1800 ई.)

10. आधुनिक काल (1800 ई.)

11. हिंदी साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

12. वर्तमान स्थिति और हिंदी साहित्य का भविष्य

अभ्यास प्रश्न

5 . निम्नलिखित कथनों के सामने सत्य/असत्य लिखिए

(क) द मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान के लेखक गार्सां द तासी हैं

(ख) आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित इतिहास ग्रन्थ का प्रकाशन 1902 में हुआ।

6. (लघु उत्तरीय प्रश्न दस पंक्तियों में उत्तर दें)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार साहित्य का इतिहास किसे कहते हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7 . अति लघु उत्तरीय प्रश्न (क)मिश्र बंधुओं ने अपने साहित्येतिहास ग्रन्थ को किस नाम से पुकारा है

8 . निम्नलिखित इतिहास ग्रंथों को कालक्रम के अनुसार लिखिए

(क) द मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान

(ख) तबकातुश्शुअरा

(ग) मिश्रबंधु विनोद

(घ) ए स्केच ऑफ़ हिन्दी लिटरेचर

2.5 हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा (दो)

2.5.1 आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत 'इतिहास'

(हिन्दी साहित्य का इतिहास, 1929)- आचार्य रामचंद्र शुक्ल (1884-1941) की इतिहास दृष्टि को अधिकतर मध्ययुग, विशेषकर भक्तिकाल के परिप्रेक्ष्य में ही महत्वपूर्ण माना जाता है। यह बात अपनी ऐतिहासिकता के साथ सत्य भी है। भक्तिकाल के उदय और उसकी पृष्ठभूमि से लेकर उसकी साहित्यिक आलोचना में आचार्य शुक्ल वस्तुत: अपनी प्रतिभा का समग्र देते प्रतीत होते हैं।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय में 1921 ई. से स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का शुभारंभ हुआ। छात्रों के लिए हिंदी साहित्य के एक इतिहास की आवश्यकता महसूस हुई। आचार्य शुक्ल ने स्वयं स्वीकार किया है कि उस समय उन्होंने छात्रों के उपयोग के लिए कुछ संक्षिप्त नोट तैयार किये थे जिनमें परिस्थिति के अनुसार शिक्षित जन समूह की बदलती हुई प्रवृत्तियों को लक्ष्य करके हिंदी साहित्य के इतिहास के काल विभाग और रचना की भिन्न–भिन्न शाखाओं के निरूपण का एक कच्चा ांचा खड़ा किया गया था। कार्य में गति आई 'हिंदी शब्द सागर' के समापन से। स्वयं आचर्य शुक्ल के अनुसार ''हिंदी शब्द-सागर'' समाप्त हो जाने पर उसकी भूमिका के रूप में भाषा और साहित्य का विकास देना भी स्थिर किया गया। अत: एक नियत समय के भीतर ही यह इतिहास लिखकर पूरा करना पड़ा।'' चन्द्रशेखर शुक्ल के अनुसार आचार्य शुक्ल को 'हिंदी शब्द सागर' की भूमिका के लिए 'हिंदी साहित्य का विकास, लिखकर पूरा करने में पूरे आठ महीने लगे। अन्तत: यह 'विकास' शब्दसागर के साथ जनवरी 1929 ई. में प्राकाशित हुआ "किन्तु इस 'विकास' के कुछ अंशों का प्रकाशन 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में पहले ही 1928 ई. में ही धारावाहिक रूप से हो चुका था।"

अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के बिलकुल आरंभ में वे घोषित तौर पर बता देते हैं कि उनके लिए इतिहास क्या है। आचार्य शुक्ल लिखते हैं : **''जबकि प्रत्यक दश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता ह, तब यह निश्चित ह कि जनता की चित्तवृत्ति क परिवर्तन क साथ-साथ साहित्य क स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता ह। आदि स अंत तक इन्हीं चित्त्वृत्तियों की परम्परा को परखत हुए साहित्य परम्परा क साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता ह। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थति क अनुसार होती ह। अत: कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता ह।''** आचार्य शुक्ल मानते हैं कि साहित्य जनता की चित्त्वृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, जैसे-जैसे चित्तवृत्ति बदलती है वैसे-वैसे साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता जाता है। साहित्य एवं समाज के इन सामान्तर परिवर्तनों का सामंजस्यपूर्ण आकलन ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है। साहित्य के इतिहास की उपेक्षा करने का मतलब है, इन संबंधों को जड़ बना देना,

साहित्यिक यथार्थ के वास्तविक स्वरूप की अनदेखी करना। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रतिपादित हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन निम्न प्रकार है-

आदिकाल	**(वीरगाथाकाल,**	**सं. 1050-1375)**
पूर्व मध्यकाल	**(भक्तिकाल,**	**सं. 1375-1700)**
उत्तर मध्यकाल	**(रीतिकाल,**	**सं. 1700-1900)**
आधुनिक काल	**(गद्यकाल,**	**सं. 1900-1984)**

2.5.2 हिन्दी साहित्यतिहास क अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास (1931)-रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'
2. हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास (1932)- सूर्यकान्त शास्त्री।
3. हिंदी भाषा और साहित्य का विकास (1934)-अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'।
4. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (1938)-डा. रामकुमार वर्मा।
5. हिंदी साहित्य की भूमिका (1940)- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।
6. खड़ी बोली: हिंदी साहित्य का इतिहास (1941)-ब्रजरत्न दास।
7. हिंदी साहित्य (1948)-डा.रामरतन भटनागर।
8. हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास (1952)-गुलाबराय।
9. हिंदी साहित्य (1952)-आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
10. हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास (16 भागों में)-सं.सुधाकर पाण्डेय (1960 से)।
11. हिंदी साहित्य का परिचय (1961)-चतुर सेन शास्त्री।
12. हिंदी साहित्य का प्रमाणिक इतिहास (1962) गंगाधर मिश्र।
13. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास (1964)-डा.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।
14. हिंदी साहित्य का आर्दश इतिहास (1965)-डॉ.रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'।
15. हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष (1954)-शिवदानसिंह चौहान
16. हिंदी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास (1967)-डा.प्रताप नारायण टण्डन।
17. हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (1968)- डा. गणपतिचन्द्र गुप्त।
18. हिंदी साहित्य एक परिचय (1968)-डा.त्रिभुवन सिंह।

19. हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास (1969)-डा.भगवतशरण चतुर्वेदी।

20. हिंदी भाषा का नया इतिहास (1969)-डा.रामखेलावन पाण्डेय।

21. हिंदी साहित्य एक ऐतिहासिक अध्ययन (1969)-डा.रतिभानु सिंह नाहर।

22. हिंदी साहित्य का इतिहास (1970)-डा.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

23. हिंदी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (1971)- डा.रामचन्द्र आनंद।

24. हिंदी साहित्य का अद्यतन इतिहास (1971)- डा.मोहन अवस्थी।

25. हिंदी साहित्य का विकास (1971)-वासुदेव शर्मा।

26. हिंदी साहित्य का मानक इतिहास (1973)-डा.0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय।

27. हिंदी साहित्य का इतिहास (1973) सं.डा.नगेन्द्र।

28. हिंदी साहित्य का अतीत (1960)- विश्वानाथप्रसाद मिश्र

29. हिंदी साहित्य का इतिहास (1973) प्रताप नारायण टण्डन।

30. हिंदी साहित्य का इतिहास (1973) डा.राममूर्ति त्रिपाठी।

31. हिंदी साहित्य का सर्वेक्षण (1977) विश्वंभर नाथ मानव।

32. हिंदी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास (1982)- डा.वासुदेव सिंह।

33. हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास (1985)- डा.रामप्रसाद मिश्र।

34. हिंदी साहित्य का विवेकात्मक इतिहास (1986)- डा.तिलक राज शर्मा।

35. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास (1986)-रामस्वरूप चतुर्वेदी।

36. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास (1996)-बच्चन सिंह।

इन सभी इतिहास-ग्रंथों ने युगीन परिस्थितियों के अनुसार हिंदी साहित्य के इतिहास को जॉचने का प्रयास किया। इन साहित्येतिहासों के अलावा अन्य कई-कई ऐसी साहित्यिक कृतियॉ प्रकाश में आई जिन्होंने साहित्य का समग्र इतिहास तो प्रस्तुत नहीं किया परन्तु अपनी ऐतिहासिक चेतना के बल पर हिंदी समाज को गहन इतिहास -बोध अवश्य प्रदान किया। समय-समय पर लिखे ऐसे ग्रंथ एक तरफ जहाँ हिंदी साहित्य की ऐतिहासकता को प्रस्तुत कर रहे थे वहीं अपने नए निष्कर्षों के आधार पर परम्परागत इतिहास बोध को बदल भी रहे थे। नंददुलारे वाजपेयी, राहुल सांकृत्यायन, डा.नगेन्द्र, अज्ञेय, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, विजयदेवनारायण साही, विद्यानिवास मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, रमेशचन्द्र शाह आदि कुछ प्रमुख नाम इस संबंध में लिए जा सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न

9 . अति लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) मिश्र बंधुओं द्वारा लिखित हिन्दी साहित्येतिहास पुस्तक का क्या नाम है

(ख) हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य की भूमिका का प्रकाशन किस वर्ष हुआ ?

(ग) ग्रियर्सन लिखित हिन्दी साहित्येतिहास विषयक पुस्तक का प्रकाशन किस वर्ष हुआ ?

10 . कालम '1'और '2' का सही मेल कीजिए

(क) रामचंद्र शुक्ल	शिव सिहं सरोज
(ख) रामकुमार वर्मा	हिन्दी साहित्य का इतिहास
(ग) शिव सिंह सेंगर	हिन्दी सहित्य का दूसरा इतिहास
(घ) बच्चन सिंह	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

11. लघु उत्तरीय प्रश्न .

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के पश्चात प्रकाशित दस प्रमुख हिन्दी साहित्येतिहास ग्रंथों एवं उनके लेखकों के नाम लिखिए

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.6 सारांश

इस इकाई को पढ़न क बाद आप यह जान चुक हैं कि -

- हिन्दी साहित्येतिहास की लेखन परम्परा का उदभव एवं विकास कैसे हुआ
- हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परम्परा के विकास के लिए कौन-कौन से साहित्यिक एवं गैरसाहित्यिक स्रोतों की भूमिका महत्वपूर्ण है।
- हिन्दी साहित्येतिहास की परम्परा का आरंभ कब हुआ।

- हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की परम्परा उपनिवेशवादी विचारधारा से किस प्रकार प्रभावित हुई।
- हिन्दी साहित्येतिहास लेखन परम्परा का भारतीय संदर्भ क्या था, हिन्दी लेखकों द्वारा हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में क्या गुणात्मक परिवर्तन किए गए।
- हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की सम्पूर्ण परम्परा का विकास कैसे हुआ।
- वर्तमान तक हिन्दी साहित्येतिहास परम्परा की दशा एवं दिशा क्या है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. हम स्वयं के अतीत के साथ-साथ वर्तमान की पहचान कर सकें. √

2 . रामनरेश त्रिपाठी

3. अनंतदास

4 . हिन्दी साहित्येतिहास लेखन की स्रोत सामग्री पर एक संक्षिप्त टिपण्णी लिखिए
(पांच पंक्तियों में उत्तर दें)

उत्तर : .....
.....
.....
.....
.....

5. (क) (असत्य)
(ख). (असत्य)

6. (लघु उत्तरीय प्रश्न दस पंक्तियों में उत्तर दें)
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार साहित्य का इतिहास किसे कहते हैं ?

उत्तर : .....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

7 . हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन

8 . (क) तबकातुश्शुअरा 1848
(ख) द मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान 1889
(ग) मिश्रबंधु विनोद 1913
(घ) ए स्केच ऑफ़ हिन्दी लिटरेचर 1918

9 . (क) मिश्रबंधु विनोद 1913
(ख) 1940
(ग) 1889

10 . (क) (ख)
(ख) (घ)
(ग) (क)
(घ) (ग)

2.8 शब्दावली

साहित्येतिहास	-	साहित्य का इतिहास
चित्तवृत्ति	-	मन का भाव
औपनिवेशिक	-	उपनिवेश सम्बन्धी
इतिवृत्तात्मक	-	घटना प्रधान
परिप्रेक्ष्य	-	सन्दर्भ
प्रतिपादन	-	किसी भी विषय का सप्रमाण कथन,बोध कराना
संचित	-	एकत्र , जमा किया हुआ
मनो भूमि	-	मन का स्तर

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डेय डॉ.मैनेजर, *साहित्य और इतिहास दृष्टि,* 1981, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।

2. शुक्ल आचार्य रामचंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास*, 2007, लोक भारती प्रकाशन,

3. मौर्य डॉ.देवलाल, *हिंदी साहित्य का इतिहास-दर्शन और रामचंद्र शुक्ल,* 1993, इलाहाबाद।

4. द्विवेदी आचार्य हजारी प्रसाद, *हिंदी साहित्य की भूमिका*, 1940 राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

5. वार्ष्णेय लक्ष्मीसागर, *इतिहास और साहित्येतिहास,* 1984, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ।

6. ठाकुर, समीक्षा, *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास की रचना प्रक्रिया*, 1996, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद।

7. सिंह बच्चन, *हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास,* 1996, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली।

8. डॉ.नगेन्द्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास* 1973, मयूर प्रकाशन नई दिल्ली।

9. चतुर्वेदी रामस्वरूप, *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास* 1986, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

10. तासी गार्सा द, *हिंदुई साहित्य का इतिहास*, भूमिका, 1953, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद।

11. ग्रियर्सन, *हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास*, 1961, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद।

12. राजे, सुमन, *हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास*, 2004, भारतीय ज्ञान पीठ नई दिल्ली।

13. चतुर्वेदी रामस्वरूप, *इतिहास और आलोचक दृष्टि*, 1998, तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली।

14. सिंह त्रिभुवन, *साहित्यिक निबंध*, 1976, हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी।

15. नलिन विलोचन शर्मा – साहित्यिक का इतिहास दर्शन, सं. 2016, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना।

16. बेदी डा.हरमहेन्द्र सिंह, *हिन्दी साहित्येतिहास पाश्चात्य स्रोतों का अध्ययन,* 1985, प्रतिभा प्रकाशन होशियारपुर।

2.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, 1929- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद।
2. हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष (1954)-शिवदानसिंह चौहान, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।
3. हिंदी साहित्य का इतिहास (1973) सं. डा.नगेन्द्र, मयूर प्रकाशन नई दिल्ली।
4. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास (1986)-रामस्वरूप चतुर्वेदी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।
5. हिंदी साहित्य का अतीत (1960)- विश्वानाथप्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
6. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास (1996)-बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली।
7. साहित्य और इतिहास दृष्टि (1981) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

8. हिंदी साहित्य की भूमिका (1940)- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

9. हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास (16 भागों में)-सं.सुधाकर पाण्डेय (1960 से)।

10. साहित्य का इतिहास दर्शन (सं. 2016) नलिन विलोचन शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना।

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

(1) हिन्दी साहित्येतिहास के उद्भव एवं विकास पर एक निबंध लिखिए।

(2) हिन्दी साहित्येतिहास का संक्षिप्त परिचय देते हुए शुक्ल पूर्व हिन्दी के प्रमुख साहित्येतिहासों का परिचयात्मक विवेचन कीजिए।

(3) आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास का विवेचन करते हुए शुक्लोत्तर युग के प्रमुख इतिहास ग्रंथों का परिचय दीजिए।

इकाई 3 हिंदी साहित्येतिहास लेखन एवं नामकरण की समस्या

इकाई का रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 हिंदी साहित्येतिहास: प्रमुख समस्याएं
3.4 हिंदी साहित्येतिहास: नामकरण की समस्या
  3.4.1 नामकरण की समस्या : आदिकाल
  3.4.2 नामकरण की समस्या : भक्तिकाल
  3.4.3 नामकरण : रीतिकाल
  3.4.4 नामकरण की समस्या : आधुनिक काल
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

यह स्नातकोत्तर स्तर प्रथम प्रश्न पत्र, खण्ड एक की 'हिंदी साहित्य के इतिहास का स्वरूप एवं प्रक्रिया' की तीसरी इकाई है। इससे पूर्व के अध्ययन में आपने इतिहास एवं साहित्येतिहास की सम्पूर्ण प्रक्रिया एवं अन्तर्संबंधों की पृष्ठभूमि में हिंदी साहित्येतिहास की सम्पूर्ण परम्परा का परिचय प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में आप हिंदी साहित्येतिहास लेखन प्रणाली की आंतरिक समस्याओं को जान सकेंगे तथा हिंदी साहित्य के इतिहास की युग निर्धारण संबंधी समस्याओं का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् हिंदी साहित्य के इतिहास की महत्वपूर्ण समस्याओं के समाधान को वैचारिक गति मिलेगी जिससे हिंदी साहित्य के सभी युगों एवं उसके साहित्य को समझने में सहायता मिलेगी।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- बता सकेंगे कि हिंदी साहित्येतिहास लेखन की मुख्य समस्याएं कौन-कौन सी हैं।
- बता सकेंगे कि हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में युग निर्धारण क्या महत्व एवं प्रभाव है।
- बता सकेंगे विभिन्न साहित्येतिहासकारों ने युग निर्धारण की समस्या के समाधान एवं इसके सैद्धान्तिक प्रयोग हेतु क्या-क्या सुझाव प्रदान किए।
- युग-निर्धारण की समस्या का विश्लेषण करके साहित्य की ऐतिहासिक प्रक्रिया को सहजता एवं सरलता से समझ सकेंगे।

3.3 हिंदी साहित्येतिहास: प्रमुख समस्याएं

काल विभाजन एवं नामकरण साहित्य के इतिहास की महत्वपूर्ण समस्याएं हैं। इनके आधार सामान्यतः इस प्रकार माने गए है:

1. ऐतिहासिक कालक्रम के अनुसार: आदिकाल, मध्यकाल, संक्रांति-काल आधुनिक काल आदि।
2. शासक और उसके शासन-काल के अनुसार: ऐलिजाबेथ युग, विक्टोरिया-युग, मराठा-युग आदि।

3. लोकनायक और उसके प्रभाव-काल के अनुसार: चैतन्यकाल (बांग्ला) गांधी-युग (गुजराती) आदि।

4. साहित्य नेता एवं उसकी प्रभाव-परिधि के आधार पर: रवीन्द्र युग, भारतेन्दु-युग आदि।

5. राष्ट्रीय, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक घटना या आंदोलन के आधार पर: भक्तिकाल, पुनर्जागरण काल, सुधार-काल युद्धोत्तर काल (प्रथम महायुद्ध के बाद का काल) स्वातन्तयोत्तर काल आदि।

6. साहित्यिक प्रवृत्ति के नाम पर: रोमानी युग, रीतिकाल, छायावाद युग आदि।

इस प्रसंग में पहला प्रश्न तो यही है कि इस प्रकार के विभाजन की आवश्यकता क्या है ? इसका स्तर स्पष्ट है और वह यह है वस्तु के समग्र रूप का दर्शन करने के लिए भी उसके अंगों का ही निरीक्षण करना पड़ता है। हमारी दृष्टि शरीर के विभिन्न अवयवों का अवलोकन करती हुई सम्पूर्ण व्यक्तित्व का दर्शन करती है। अवयवों को पृथक मानकर उनका निरीक्षण करना खण्ड-दर्शन है, किन्तु उनको व्यक्तित्व का अंग मानकर देखना समग्र दर्शन है और यही सहज विधि है क्योंकि निखयव रूप का दर्शन अपने आप में कठिन है। इसके अतिरिक्त जीवन या साहित्य को अखण्ड प्रवाह रूप मानने पर भी इस बात से तो इंकार नहीं किया जा सकता कि उसमें समय-समय पर दिशा परिवर्तन और रूप-परिवर्तन होता रहता है। दृष्टि की अपनी सीमाएं होती हैं। वह सभी कुछ एक साथ नहीं देख सकती, इसलिए अंगों पर होती हुई ही अंगी का अवलोकन करती है। अतः यह बात बराबर ध्यान में रखते हुए कि साहित्य की अखण्ड परम्परा का निरूपण ही इतिहास का लक्ष्य है, समय-समय पर उपस्थित दिशा-परिवर्तनों और रूप-परिवर्तनों के अनुसार विकास-क्रम का अध्ययन करना न सिर्फ गलत नहीं है, बल्कि जरूरी भी है।

यहाँ दूसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि काल-विभाजन का सही आधार क्या हो सकता है ? वर्ग-विभाजन प्रायः समान प्रकृति और प्रवृत्ति के आधार पर किया जाता है। समान प्रकृति के अनेक पदार्थ मिलकर एक वर्ग बनाते हैं और इस प्रकार समप्रकृति के आधार पर किया जाता है। समान प्रकृति के अनेक पदार्थ मिलकर एक वर्ग बनाते है और इस प्रकार समप्रकृति के आधार पर अनेक वर्गों में विभक्त होकर अस्त-व्यस्त समूह व्यवस्थित रूप धारण कर लेता है। जिस प्रकार प्रवाह के अन्दर अनेक धाराएं होती है, उसी प्रकार साहित्य में भी अनेक प्रवृत्तियॉ होती है और इन प्रवृत्तियों का आदि-अन्त या उतार-चढ़ाव ही इतिहास का काल-विभाजन अर्थात् विभिन्न युगों की सीमाओं का निर्धारण करता है यह वर्ग विभाजन परिपूर्ण नहीं हो सकता, इसका रूप प्रायः स्थूल और आनुमानिक होता है, फिर भी समूह का पर्यवेक्षक करने में इससे बड़ी सहायता मिलती है। काल-विभाजन का आधार भी समान प्रकृति और प्रवृत्ति ही होती है। जन जीवन का प्रवृत्तियों व रीति-रिवाजों की समानता के आधार पर सामाजिक इतिहास का काल-विभाजन होता है और राजनीतिक

परिस्थितियों की समानता राजनीतिक इतिहास के काल-विभाजन का आधार बनती है इसी प्रकार साहित्यिक प्रवृत्तियों और रीति-आदर्शों का साम्यवैषम्य ही साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन का आधार हो सकता है। समान प्रकृति और प्रवृत्तियों की रचनाओं का कालक्रम से वर्गीकृत अध्ययन कर साहित्य का इतिहासकार सम्पूर्ण साहित्य-सृष्टि का समवेत अध्ययन करने का प्रयत्न करता है।

इसी प्रकार नामकरण के पीछे भी कुछ न कुछ तर्क अवश्य रहता है अथवा रहना चाहिए। नाम की सार्थकता इसमें है कि वह पदार्थ के गुण अथवा धर्म का मुख्य तथा द्योतन कर सके। इस तर्क से किसी कालखण्ड का नाम ऐसा होना चाहिए जो उसकी मूल साहित्य चेतना को प्रतिबिम्बित कर सके। शासक के नाम पर भी कालखण्ड का नामकरण तभी मान्य हो सकता है या हुआ है जब उस शासक-विशेष के व्यक्तित्व ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से साहित्य की गतिविधि को प्रभावित किया है। उधर साहित्यिक नेता भी युग विशेष की साहित्यिक चेतना का प्रतिनिधि होने पर ही इस गौरव का अधिकारी होता है। शेक्सपियर, रवीन्द्रनाथ या भारतेन्दु व्यक्ति न होकर संस्था थे युग निर्माता थे, जिनके कृतित्व ने अपने-अपने युग की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों को प्रभावित किया था। राष्ट्रीय महत्व की घटना जैसे महायुद्ध, भारतीय स्वतन्त्रता की घोषणा-अथवा किसी व्यापक आन्दोलन या प्रवृत्ति के अनुसार नाम की सार्थकता और भी अधिक स्पष्ट है: भक्ति, पुनर्जागरण अथवा राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव जितना समाज पर था उतना साहित्य पर भी। और अंत में साहित्यिक प्रवृत्ति के विषय में तो कहना ही क्या ? उनके अनुसार नामकरण की सार्थकता स्वतः सिद्ध है। कहने का अभिप्राय यह है कि साहित्य के इतिहास में नामकरण का मूल आधार है - काल विशेष की साहित्यिक चेतना का प्रतिफलन, जिसका माध्यम सामान्यतः उस युग की सर्वप्रमुख साहित्यिक प्रवृत्ति ही हो सकती है। काल विभाजन एवं नामकरण में एकरूपता अनिवार्य नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि काल-विभाजन विवके सम्मत हो, जो साहित्य की परम्परा को सही रूप में समझने में सहायक हो। साथ ही, नाम भी ऐसा होना चाहिए जो युग की साहित्य चेतना का सही ढ़ग से प्रतिफलन करता हो, यदि साहित्यिक नामकरण से भ्रान्ति उत्पन्न होती हो तो अन्य उचित आधार ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इस सम्पूर्ण संक्षिप्त विश्लेषण के आधार पर अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं को प्रस्तुत किया जा सकता है -

1. काल-विभाजन साहित्यिक प्रवृत्तियों और रीति-आदर्शों की समानता के आधार पर होना चाहिए।

2. युगों का नामकरण यथासंभव मूल साहित्य चेतना को अधार मानकर साहित्यिक प्रवृत्ति के अनुसार करना चाहिए किन्तु जहॉ ऐसा नहीं हो सकता वहाँ राष्ट्रीय-सांस्कृतिक प्रवृत्ति को आधार बनाया जा सकता है या फिर कभी-कभी विकल्प न होने पर निर्विशेष

कालवाचक नाम को भी स्वीकार किया जा सकता है। नामकरण में एकरूपता काम्य है, किन्तु उसे सायास सिद्ध करने के लिए भ्रांतिपूर्ण नामकरण उचित नहीं है।

3. युगों का सीमांकन मूल प्रवृत्तियों के आरम्भ और अवसान के अनुसार होना चाहिए जहाँ साहित्य के मूल स्वर अथवा उसकी मूल चेतना में परिवर्तन लक्षित हो और नए स्वर एवं चेतना का उदय हो, वहॉं युग की पूर्व-सीमा और जहॉं वह समाप्त होने लगे, वहॉं उत्तर सीमा माननी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न -

(क) सही विकल्प चुनिए -

1. चैतन्य युग का संबंध है -

   (क) बंगाल से (ख) महाराष्ट्र से (ग) कश्मीर से (घ) इनमें से किसी से नहीं

2. किसी व्यापक आंदोलन पर आधारित साहित्यिक युग है -

   (क) शुक्लोत्तर युग (ख) चारण युग (ग) भक्ति युग (घ) तीनों सही है।

(ख) सही अथवा गलत निशान लगाएं -

1. 'छायावाद' साहित्यिक प्रवृति के आधार पर किया गया नामकरण है।

2. हिंदी साहित्य का प्रथम युग आदिकाल नाम से जाना जाता है।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी साहित्येतिहास लेखन की दो प्रमुख समस्याओं पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

3.4 हिंदी साहित्येतिहास: नामकरण की समस्या

आचार्य शुक्ल ने हिंदी-साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभाजित किया।

1. वीरगाथा काल
2. भक्ति काल
3. रीतिकाल
4. आधुनिक काल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ''जार्ज ग्रियर्सन और मिश्रबंधुओं से कुछ संकेत अवश्य ग्रहण किए हैं, परन्तु काल विभाजन और नामकरण की अन्तिम तर्क पुष्ट व्याख्या उनकी अपनी है। इनमें से भक्तिकाल और आधुनिक काल को तो यथावत् स्वीकार कर लिया गया है, परन्तु वीरगाथाकाल और रीतिकाल के विषय में विवाद रहा है। 'वीरगाथा-काल' नाम के विरूद्ध अनेक आपत्तियॉ की गई हैं जिनमें प्रमुख यह है कि जिन वीरगाथाओं के आधार पर शुक्ल जी ने यह नामकरण किया है, उनमें से कुछ अप्राप्य है और कुछ परवर्ती काल की रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त जो साहित्य इस कलावधि में लिखा गया है उसमें सामन्तीय और धार्मिक तत्वों का प्राधान्य होने पर भी कथ्य और माध्यम के रूपों की ऐसी विविधता और अव्यवस्था है कि किसी एक प्रवृत्ति के आधार पर उसका सही नामकरण नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में आदिकाल-जैसा निर्विशेष नाम, जो भाषा और साहित्य की आरम्भिक अवस्था मात्र का द्योतक करता है, विद्वानों को अधिक मान्य है - और मैं समझता हूँ कि इसका कोई विकल्प नहीं है। 'रीतिकाल' के विषय में मतभेद की परिधि सीमित है। वहॉ विवाद का विषय इतना ही है कि उस युग के साहित्य में रीति-तत्व प्रमुख है या श्रंगार-तत्व प्राचुर्य दोनों का ही है, पर इन दोनों में भी अधिक महत्व किसका है ?हमारा विचार है कि जिस युग में रीति-तत्व का समावेश श्रंगार में ही नहीं, भक्तिकाव्य और वीर-काव्य में भी हो गया था - अथवा यह कहें कि जीवन का स्वरूप ही बहुत-कुछ रीतिबद्ध हो गया था- उसका नाम 'रीतिकाल' ही अधिक समीचीन है। इसके विकल्प 'श्रंगारकाल' में अतिव्याप्ति है, क्योंकि श्रृंगार का प्राधान्य तो प्रायः सभी युगों में रहा है: वह काव्य का एक प्रकार से सार्वभौम तत्व है, अतः उसके आधार पर नामकरण अधिक संगत नहीं होगा। इस युग का श्रृगांर रीतिबद्ध था, अतः रीति ही यहॉ प्रमुख है।

आधुनिक काल को शुक्ल जी ने तीन चरणों में विभाजित किया है और उन्हें प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय उत्थान कहा है। प्रथम और द्वितीय उत्थान के विषय में उन्होंने यह संकेत भी कर दिया है कि इन्हें क्रमशः 'भारतेन्द्र-काल' और 'द्विवेदी काल' भी कहा जाता है। तीसरे उत्थान को कदाचित उसके प्रवाहमय रूप के कारण, उन्होंने कोई नाम नहीं दिया। पहला काल खण्ड जीवन और साहित्य में पुनर्जागरण का युग था, जब अतीत की गौरव-भावना के परिप्रेक्ष्य में नवजागरण की चेतना विकसित हो रही थी अतः इसे 'पुनर्जागरण-काल' नाम दिया जा सकता है और चूंकि भारतेन्दु के व्यक्तित्व और कृत्तिव में, जिन्होंने अपने जीवन-काल में इस युग का नेतृत्व किया और जिनका प्रभाव मरणोपरांत भी बना रहा, यह चेतना सम्यक प्रतिफलित हो रही थी, इसलिए इसका नामकरण उनके नाम पर करने पर भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती। प्रायः इसी पद्धति और युक्ति से द्वितीय उत्थान का नामकरण भी किया जा सकता है: उसे हम औचित्यपूर्वक 'जागरण-सुधार काल या विकल्पतः 'द्विवेदीयुग' कह सकते हैं। तीसरे चरण की सर्वप्रथम साहित्य प्रवृत्ति है - छायावाद, अतः उसका उचित नाम छायावाद-काल ही हो सकता है। उसका परवर्ती काल हमारे अत्यन्त निकट है और उसकी मूल चेतना इतनी जल्दी-जल्दी बदल रही है कि किसी एक स्थिर आधार को लेकर उसका नामकरण नहीं किया जा सकता। आरम्भ में प्रगतिवाद का दौर था जो कुछ ही वर्षों में समाप्त

हो गया। इसके कुछ बाद प्रयोगवाद का आविर्भाव हुआ जो थोड़े समय तक इसके समानान्तर चलकर 1953 के आसपास नवलेखन में परिणत हो गया।

हिंदी साहित्य का इतिहास नवलेखन के आगे भी अपनी प्रवृत्ति के आधार पर विकसित होता रहा। समसामयिक साहित्य, नई कविता, अकविता, समानांतर कविता एवं कहानी नाम से अनेक आंदोलन निरंतर चलते रहे। समकालीन साहित्य एवं उत्तर आधुनिक साहित्य जैसे नामकरण भी प्रयोग में आते रहे हैं। अध्ययन की सामान्य धारा को ध्यान में रखते हुए डॉ.गणपति चंद्र गुप्त ने हिंदी साहित्य के सम्पूर्ण इतिहासचक्र के निम्नलिखित नामकरण सरणी के रूप में प्रस्तुत किया है।

आदिकाल - सातवीं शती के मध्य से चौदहवीं शती के मध्य तक

भक्तिकाल - चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक

रीतिकाल - सत्रहवीं शती के मध्य से उन्नीसवीं शती के मध्य तक।

आधुनिक काल - उन्नीसवीं शती के मध्य से अब तक:

1. पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु काल) 1987-1900 ई0
2. जागरण सुधार काल (द्विवेदी काल) 1900-1918 ई0
3. छायावाद काल (1918-1938 ई0)
4. छायावादोत्तर काल

(क) प्रगति-प्रयोग काल 1938-1953 ई0

(ख) नवलेखन-काल 1953 ई0 से अब तक

अभ्यास प्रश्न 2 -

(क) सही अथवा गलत लिखिए -

1. हिंदी साहित्य का द्वितीय काल वीरगाथ काल है।
2. हिंदी साहित्य का अद्यतन युग आधुनिक काल हैं।
3. द्विवेदी युग को 'जागरण-सुधार काल' भी कहा जा सकता है।

(ख) सही विकल्प चुनिए -

1. आचार्य शुक्ल से पहले भारतीय हिंदी साहित्येतिहास लेखक हैं -

(क) ग्रियर्सन (ख) ई0एफ0 के

(ग) मिश्रबंधु (घ) इनमें से कोई नहीं

2. 17वीं सदी से 19वीं सदी के मध्य तक के काल को कहते हैं -

(क) रीतिकाल (ख) मध्यकाल

(ग) आधुनिक काल (घ) इनमें से कोई नहीं

3. लघु उत्तरीय प्रश्न -

(क) हिंदी साहित्येतिहास में नामकरण की समस्या पर एक सार गर्भित टिप्पणी लिखिए।

(ख) हिंदी साहित्य का क्रमबद्ध नामकरण एवं काल विभाग प्रस्तुत कीजिए।

3.4.1 नामकरण की समस्या: आदिकाल

14वीं शताब्दी तक के अपभ्रंश साहित्य तथा अपभ्रंश प्रभावित कुछेक हिंदी रचनाओं की चर्चा हिंदी साहित्येतिहासिक की पूर्वपीठिका के रूप में होनी चाहिए ताकि हिंदी साहित्य के उद्भव तथा उसकी काव्य-परंपराओं पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार संभव हो सके, किन्तु इस काल को हिंदी साहित्येतिहासिक के एक स्वतंत्र युग के रूप में मान्यता देना तर्क संगत दिखाई नहीं देता। हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में जिस युग को हिंदी साहित्य का आदिकाल अथवा वीरगाथाकाल अथवा चारणकाल माना गया है, वह वस्तुतः अपभ्रंश भाषा के इतिहास का युग है। जनभाषा हिंदी (संस्कृतनिष्ठ हिंदी की बोलियां) में साहित्य लेखन के छिटपुट प्रयत्न अवश्य होने लगे थे। डा. शिवकुमार ने सुझाव दिया है - यह युग हिंदी साहित्य के इतिहास की पूर्वपीठिका है न कि अपने आप में हिंदी साहित्य का एक दीर्घ युग। इसलिए इसको किसी नाम से संबंधित करने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। यदि फिर भी कुछ विद्वान इन चार शताब्दियों के साहित्य को हिंदी का साहित्य मानने चाहें तो भी उन्हें इसे पुरानी हिंदी का साहित्य मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। उस दृष्टि से भी उस काल का विवेचन पुरानी हिंदी का साहित्य नामक शीर्षक के अन्तर्गत हिंदी साहित्य के इतिहास की भूमिका के रूप में ही होना चाहिए। इसके बावजूद इतिहासकारों ने हिंदी साहित्येतिहास के इस प्राथमिक उत्थान को आदिकाल कहना पसंद किया है।

हिंदी साहित्य के प्रथम युग, जिसे हम आदिकाल वीरगाथाकाल आदि नामें से जानते है - का नामकरण एक विवादपूर्ण प्रश्न रहा है। सदैव ही साहित्येतिहासकार एवं अन्य विद्वान इस जटिल विवादपूर्ण प्रश्न अन्य विद्वान इस जटिल विवादपूर्ण प्रश्न को हल करते रहे हैं।

''भाषा के विद्वानों तथा इतिहासकारों ने जितना इस समस्या पर विचार किया है, उतना ही उलझाव पैदा किया है। कुछ विद्वानों ने अपभ्रंश साहित्य को पुरानी हिंदी का साहित्य मानकर साहित्येतिहास के प्रथम युग का आरम्भ सातवीं अथवा आठवीं शताब्दी से मान लिया है। दूसरे वर्ग के विद्वान 1000 ई0 के लगभग इस युग का आरम्भ मानने के पक्ष में हैं। तीसरा वर्ग उन विद्वानों का है जो खड़ी बोली को ही हिंदी के नाम से अभिहित करना चाहते हैं, और ब्रजभाषा आदि के साहित्य को हिंदी साहित्येतिहास में स्थान देने के औचित्य की कटु आलोचना करते हैं। शिवदान सिंह चौहान ने विस्तार से इस समस्या पर विचार करते हुए सिद्ध करना चाहा कि हिंदी (सांस्कृतिनिष्ठ खड़ी बोली) साहित्य का इतिहास भारतेन्दु हरिशचंद्र के पहले मौलिक प्रहसन वैदिकी हिंसा न भवति से आरम्भ होता है। वे लिखते हैं इस दृष्टि से देखे तो समूचे हिंदी (खड़ी बोली) साहित्य का इतिहास अभी तक एक शताब्दी भी पार नहीं कर पाया।

इस प्रकार हिंदी के स्वरूप विस्तार का प्रश्न काफी टेढ़ा हो गया है। डा. नगेन्द्र ने ब्रज, अवधी, आदि भाषाओं को हिंदी, साहित्येतिहास के व्यापक रूप में प्रयुक्त किया है। उनके विचारानुसार हिंदी के विद्वान और अन्य भाषाविद प्रारम्भ से ही यह स्वीकार करते हुए आए हैं कि भारतवर्ष के जितने भू-भाग में वर्तमान हिंदी या खड़ी बोली हिंदी सामाजिक व्यवहार अर्थात् पत्राचार, शिक्षा-दीक्षा, सार्वजनिक आयोजन विचार-विनिमय तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति आदि माध्यम भाषाहै, वह सब का सब हिंदी प्रदेश है और उसके अन्तर्गत बोली जाने वाली सभी भाषाएं हिंदी की उपभाषाएं है।

हिंदी साहित्य के विभिन्न इतिहास-ग्रंथों में इस साहित्यिक परम्परा के प्राथमिक युग के नामकरण के बारे में कई मत प्रचलित हैं। सबसे अधिक विवाद आदिकाल के नामकरण के बारे में हैं। विभिन्न इतिहासकारों द्वारा प्रस्तावित नामकरण इस प्रकार है -

1.	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	-	वीरगाथाकाल
2.	डॉ. रामकुमार वर्मा	-	चारणकाल
3.	महावीर प्रसाद द्विवेदी	-	बीजवपनकाल
4.	राहुल सांकृत्यायान	-	सिद्ध सामंतकाल
5.	डॉ. रामखेलावन पाण्डेय	-	संक्रमणकाल
6.	मोहन अवस्थी	-	आधार काल
7.	डॉ. पृथ्वीनाथ कमल कुलश्रेष्ठ	-	अंधकार काल
8.	डॉ. गणपति चंद्र गुप्त	-	प्रारंभिक काल

9.	डा. रामशंकर शुक्ल 'रसाल'	-	बाल्यकाल
10.	डा. शंभुनाथ सिंह	-	प्राचीनकाल
11.	डा. वासुदेव सिंह	-	उद्भव काल
12.	डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी	-	आदिकाल
13.	डा. रामप्रसाद मिश्र	-	संक्रांति काल
14.	डा. शैलेश जैदी	-	आविर्भावकाल

इस सब व्यवस्थित नामावली के अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने भी हिंदी साहित्य के प्रथम युग के नामकरण की समस्या को हल करने का प्रयत्न किया है किन्तु सभी विश्लेषकों के प्रस्तावित नामों में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा विश्लेषित नाम 'आदिकाल' सर्वमान्य है।

3.4.2 नामकरण की समस्या: भक्तिकाल

हिंदी साहित्येतिहास में 14वीं शताब्दी के जिस कालखण्ड को पूर्व मध्यकाल या भक्तिकाल कहा गया है, उसकी सम्पूर्ण दार्शनिक, रचनात्मक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, मध्यकालीन भक्ति आंदोलन में विद्यमान है। भक्तिकाल में पृष्ठभूमि के रूप में भक्ति आंदोलन के प्रादुर्भाव का मूलभूत कारण न तो हिन्दू जनता की पराजित मनोवृत्ति में विद्यमान है और न इस्लाम के प्रभाव के कारण ही भक्ति का ऐसा विस्तार साकार हुआ। यह ऐ ऐसा आंदोलन था, जिसने सम्पूर्ण भारत को प्रभावित किया और वह अधिकांशतः भारतीय धार्मिक और आध्यात्मिक परम्परा में ही विकसित हुआ।

''भारतीय इतिहास के जिस कालखण्ड में भक्ति आन्दोलन के परिणाम स्वरूप निर्गुण और सगुण भक्ति का समानान्तर प्रवाह हिंदी साहित्य की उपलब्धियों का साक्षी बना, उसे हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग भी कहा जाता है। डा. श्यामसुंदर दास के अनुसार - जिस युग में कबीर, जायसी, मीरा, तुलसी, सूर जैसे रससिद्ध कवियों और महात्माओं की दिव्य धाती उनके अन्तःकरण से निकलकर देश के कोने-कोने में फैली थी, उसे साहित्येतिहास में सामान्यतः भक्ति युग कहते हैं। ''इस कालखण्ड में भक्ति के अतिरिक्त अन्य विषयों और रसों की रचनाएं भी स्फुट तौर पर मिलती हैं, लेकिन निर्विवाद तौर पर भक्त्यात्मकता ही इस कालखण्ड की अन्यतम उपलब्धि है। इतिहासकारों ने पूरी सावधानी के साथ अपने इतिहास ग्रंथों में भक्ति-भावना से आपूरित इस कालखण्ड को भक्तिकाल की संज्ञा दी है और अधिकांशतः यही संज्ञा स्वीकारी गई।

''हिंदी साहित्येतिहास लेखन में भक्तिकाल संबंधी शुक्ल जी के काल निर्धारण को विशेष स्वीकृति मिली है तथा उनके द्वारा किया गया अन्तर्विभाजन प्रायः सभी इतिहासकारों द्वारा अपना लिया गया है। उन्होंने ही सर्वप्रथम हिंदी साहित्येतिहास के पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल का नाम दिया तथा

इसकी कालावधि संवत 1375 से सं. 1700 तक मानी है। इसके अन्तर्गत उन्होंने चार भक्ति काव्याधाराओं की स्थिति मानी है। वे हैं -

1.	निर्गुणधारा	:	ज्ञानाश्रयी शाखा
2.	निर्गुणधारा	:	प्रेमाश्रयी शाखा (सूफी शाखा)
3.	सगुणधारा	:	रामभक्ति शाखा
4.	सगुणधारा	:	कृष्णभक्ति शाखा।

''हमारे देश में इस युग के नवजागरण की प्रकृति धार्मिक है तथा तत्कालीन हिंदी साहित्य भक्त कवियों की देन है। वे पहले भक्त थे और बाद में कवि। इसलिए इस युग के काव्य में भक्ति का स्वर प्रधान रहा है। युग के अन्तर्विभाजन की दृष्टि से भी इस युग को भक्तिकाल कहना अधिक उचित है। भक्तिकाल के नामकरण और उसकी काल सीमा के बारे में विवाद बहुत कम है। डा. ग्रियर्सन ने 15वीं शताब्दी को धार्मिक पुनर्जागरण का काल घोषित कर जो स्थापना दी थी, उसी जमीन पर आचार्य शुक्ल ने भक्तिकाल नाम की प्रस्तावना की। अपने इतिहास में उन्होंने संवत् 1375 से सं. 1900 तक के काल को मध्यकाल कहा हैं

''शुक्ल जी के इस विभाजन से मतभेद बहुत कम प्रकट किया गया है।

''यह स्वीकार लेने में किसी भी इतिहासकार को कोई आपत्ति नहीं हुई है कि भक्ति इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति थी और इसके आधार पर 15वीं शताब्दी के अंतिम भाग से लेकर 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक रची गई काव्य-परम्परा के समूचे कालखण्ड को भक्तिकाल से बेहतर संज्ञा नहीं दी जा सकती।

3.4.3 नामकरण : रीतिकाल

''हिंदी साहित्येतिहासकारों ने जिस उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल की संज्ञा दी है, उसके नामकरण के बारे में इतिहासकारों के बीच पर्याप्त मतवैमिन्य रहा हैं आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रीतिकाल नामकरण की प्रासंगिकता सिद्ध करते हुए रीति शब्द की विस्तृत व्याख्या की है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि रीति शब्द अपनी बहुआयामी गरिमा के कारण पर्याप्त व्यंजक तथा अर्थपूर्ण है. डा. शिवमूर्ति शर्मा के अनुसार हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल में रीति संबंधी ग्रंथों की प्रमुखता को देखते हुए शुक्ल जी ने इसका नामकरण रीतिकाल किया था।

''उत्तर मध्यकाल के जिस कालखण्ड को रीतिकाल कहा जा रहा है, उसे उपलब्ध सामग्री और संदर्भों के आधार पर रीतिकाल कहने में इधर के इतिहासकारों ने संकोच का अनुभव किया है सच

तो यह है कि रीतिकाल के कई नामकरणों और सीमाओं का उल्लेख इतिहासकार करते आए है। जैसे -

1.	मिश्रबंधु	-	अलंकृतकाल
2.	एफ.ई. के	-	चारणीकाल
3.	जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन	-	रीतिकाल
4.	रामचंद्र शुक्ल	-	रीतिकाल
5.	श्यामसुंदर दास	-	रीतिग्रंथ काल
6.	सूर्यकांत शास्त्री	-	लालित्य युग
7.	रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'	-	कलाकाल
8.	डा. रामकुमार वर्मा	-	रीतिकाल
9.	डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी	-	रीतिकाल
10.	चतुरसेन शास्त्री	-	अलंकृतकाल
11.	डा. रामअवध द्विवेदी	-	रीतिशाखाकाल
12.	डा. शम्भुनाथ सिंह	-	ह्रासकाल
13.	डा. रामखेलावन पाण्डेय	-	संवर्धनकाल
14.	डा. नगेन्द्र	-	रीतिकाल
15.	डा. गणपतिचंद्र गुप्त	-	अपकर्षकाल
16.	सत्यकाम वर्मा	-	काव्य विलास युग

रीतिकाल के इन विभिन्न नामों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्तरमध्यकाल के इस काल-खण्ड के नाम 'रीतिकाल' पर विद्वान एकमत नहीं है परन्तु फिर भी आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तावित नाम रीतिकाल अब भी सर्वाधिक प्रचलित एवं मान्य रद्य है।

3.4.4 नामकरण की समस्या: आधुनिक काल

''हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का प्रथम चरण पुनर्जागरणकाल या हरिश्चन्द्रकाल है। पुनर्जागणकाल नव सर्जना की स्फूर्ति का युग था। ब्रिटिश शासन के साथ पश्चिम के ज्ञान विज्ञान तथा संस्कृति-साहित्य का भी आयात इस देश की भूमि पर हो रहा था, जिसके संघात से एक नवीन चेतना का जन्म हुआ और भारत के प्रबुद्ध मनीषी नए दृष्टिकोण से अपने सांस्कृतिक रिक्थ का पुनर्विचार करने लगे। अतीत के प्रति नया आकर्षण और उसके द्वारा वर्तमान को समृद्ध करने की एक नवीन स्पृहा उनके चित्त में उत्पन्न हो गई हिंदी साहित्य के क्षेत्र में इस चेतना का प्रतिनिधित्व भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने किया और उनके नेतृत्व में हिंदी के कविलेखक बड़े उत्साह से अतीत के परिपार्श्व में वर्तमान युग के भाव-बोध की अभिव्यक्ति देने का प्रयास कर रहे थे।

''हिंदी साहित्य का आधुनिककाल अन्य साहित्यिक युगों में कालावधि की दृष्टि से जितना सीमित है, उतना ही साहित्यिक विविधता तथा विस्तार के कारण अत्यन्त जटिल है। अतः आधुनिक साहित्य को जो अपेक्षाकृत जटिल, दुर्बोध, संशयग्रस्त, समाधानहीन जीवन को अंकित करता है, इतिहास की सीमाओं में बॉंध पाना एक कठिन कर्म है। फिर भी हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने इस युग के अनेक रूप साहित्य का व्यवस्थित रूप से वर्गीकण रकने का प्रयत्न किया हैं तेजी से बदलते हुए दस काल के साहित्य को भिन्न-भिन्न युगों में विभाजित करके उन युगों का नामकरण किया है।

''समसामयिक युग में कहा जा सकता है कि रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में आधुनिककाल आश्चर्यजनक रूप से कमजोर और तारतम्यहीन है, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि सर्वप्रथम उन्होंने ही आधुनिक-काल के इतिहास का सुविख्यात वर्गीकरण और उपविभाजन करने का प्रशंसनीय कार्य किया है। उन्होंने आधुनिक-काल को दो खण्डों में विभाजित करके गद्य और पद्य के विकास का निम्नलिखित रूप में उपविभाजन किया है।

क आधुनिक काल: गद्य खण्ड (सं. 1900 स 1980)

1. प्रकरण 1 - गद्य का विकास
2. प्रकरण 2 - गद्य साहित्य का अविर्भाव
3. आधुनिक गद्य साहित्य: परम्परा का प्रवर्तन प्रथम उत्थान (सं. 1925 से 1950)
4. गद्य साहित्य का प्रसार: द्वितीय उत्थान (सं. 1950 से 1975)
5. गद्य साहित्य की वर्तमान गति: तृतीय उत्थान (सं. 1975 से.....)

ख आधुनिक काल: काव्यखण्ड (सं. 1900 स)

1. पुरानी धारा (1900 से 1925)
2. नई धारा: प्रथम उत्थान (1925 से 1960)
3. नई धारा: द्वितीय उत्थान (1950 से 1975)
4. नई धारा: तृतीय उत्थान (1975 से.....)

इस विवेचन से एक तरफ जहाँ हिंदी साहित्य के सबसे नवीन युग की क्रमशः साहित्य प्रवृत्ति का परिचय मिलता है वही दूसरी तरफ इस कालखण्ड के नामकरण की सार्थकता का भी आभास मिलता है। 'आधुनिक' शब्द न केवल हिंदी साहित्य के चौथे कालखण्ड का द्योतक है अपितु वह (आधुनिक) साहित्य की आंतरिक प्रवृत्ति मौलिकता एवं विशेषता को भी इंगित करता है। हालाकि अनेक इतिहासकारों ने इस चौथे कालखण्ड के लिए अन्यान्य नामों को प्रस्तावित किया है परन्तु आचार्य शुक्ल द्वारा प्रदत्त 'आदिकाल नाम' समीचीन हैं

बोध प्रश्न

(ग) अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी साहित्य के प्रथम युग को किन दो प्रमुख नामों से जाना जाता है।
2. पूर्व मध्यकाल का दूसरा नाम क्या है।
3. सगुण भक्तिधारा की दोनों शाखाओं के नाम लिखिए।
4. हिंदी साहित्य के रीतिकाल को डा. नगेन्द्र किस नाम से द्योतित करते है।

(घ) लघु उत्तरी प्रश्न - (शब्द सीमा 150 शब्द)

1. नामकरण की समस्या के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य के 'आधुनिक काल' नाम का विवेचन कीजिए।

3.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- ❖ आप हिंदी साहित्य के चारों कालखण्डों से परिचित हो चुके होंगे।
- ❖ आप विवेचित चारों युगों की प्रवृत्तिगत साहित्य धारा एवं उनके नामों की सार्थकता को जान चुके होंगे।

- ❖ आप हिंदी साहित्येतिहासकारों के पारस्परिक विवेचन, उनकी सीमाओं और हिंदी साहित्य के क्रमबद्ध विकास का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।
- ❖ आप विभिन्न इतिहासकारों द्वारा हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों के लिए प्रस्तावित नामों एवं उनके महत्व को जान चुके होंगे।

3.6 शब्दावली

1.	स्वातन्त्रयोत्तर	-	स्वतन्त्रता के पश्चात्
2.	पर्यवेक्षण	-	जांच -परख
3.	प्रवृत्ति	-	आदत
4.	साम्य	-	बराबर, समान
5.	वैषम्य	-	विपरीत, अलग
6.	प्रतिफल	-	परिणाम
7.	काम्य	-	जिसकी कामना की जाए
8	अतिव्याप्ति	-	बहुत अधिक सीमा
9.	समसामयिक	-	वर्तमान काल से संबंधित

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.3 क अभ्यास प्रश्नों क उत्तर

(क) सही विकल्प चुनिए -

1. बंगाल से
2. भक्ति युग

(ख) सही अथवा गलत निशान लगाए -

1. सही
2. सही

3.4 क अभ्यास प्रश्नों क उत्तर

(क) सही अथवा गलत लिखिए

1. गलत
2. सही
3. सही

(ख) सही विकल्प चुनिए

1. मिश्रबंधु
2. रीतिकाल

(ग) अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. वीरगाथा काल, आदिकाल
2. भक्तिकाल
3. (क) रामभक्ति शाखा (ख) कृष्ण भक्ति शाखा
4. रीतिकाल

3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डा.नगेन्द्र ,हिंदी साहित्य का इतिहास 2004 मयूर पेपर बैक्स नोएडा पृष्ठ 38-40
2. उपरोक्त , पृष्ठ 41
3 उपरोक्त पृष्ठप 44
4 उपरोर्क्त पृष्ठा 44.45
5 अग्रवाल,सुधा,हिंदी साहित्येतिहास में युग निर्धारण,1989, साहित्य प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ-139
6 उपरोक्त,पृष्ठ,129-130
7 उपरोक्त,पृष्ठ ,140

8 उपरोक्त, पृष्ठ, 151

9 उपरोक्त, पृष्ठ,165-166

10 उपरोक्त पृष्ठ 167-169

11 उपरोक्त, पृष्ठ,184

12 उपरोक्त,पृष्ठ ,199-200

3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1 रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास काशी नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी

2 हजरी प्रसाद द्विवेदी,हिंदी साहित्य की भूमिका राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली

3 डा. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा

4 सुधा अग्रवाल, हिंदी साहित्य में युग निर्धारण, साहित्य प्रकाशन दिल्ली

5 शिवकुमार हिंदी साहित्य का इतिहास,दर्शन मैकमिलन कम्पनी ऑफ इंडिया दिल्ली

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

क. हिंदी साहित्येतिहास लेखन की प्रमुख दो समस्याएं कौन सी हैं ? किसी एक का विवेचन कीजिए।

ख. हिंदी साहित्येतिहास के संबंध में नामकरण की समस्या से आप क्या समझते है ? विस्तृत विवेचन कीजिए।

इकाई 4 हिंदी साहित्येतिहास लेखन : काल – विभाजन की समस्या

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 साहित्येतिहास एवं काल-विभाजन
4.4 हिंदी साहित्येतिहास एवं काल – विभाजन
  4.4.1 ग्रियर्सन द्वारा प्रतिपादित काल – विभाजन
  4.4.2 मिश्रबंधुओं द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन
  4.4.3 आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन
  4.4.4 डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा प्रस्तावित काल –विभाजन
  4.4.5 डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन
  4.4.6 अन्य विद्वानों द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन
4.5 सुविधाजनक और उपयोगी काल-विभाजन
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.10 सहायक पाठ्यसामग्री
4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

यह स्नातकोत्तर स्तर, प्रथम प्रश्न पत्र की चौथी इकाई है। इसके पूर्व के अध्ययन में आपने इतिहास एवं साहित्येतिहास की प्रक्रिया एवं स्वरूप के साथ-साथ हिंदी साहित्येतिहास लेखन की संपूर्ण परम्परा एवं हिंदी साहित्येतिहास की समस्याओं के बारे में विस्तार से ज्ञान प्राप्त किया। इससे पूर्व की इकाई में आपने हिंदी साहित्येतिहास के परिप्रेक्ष्य में नामकरण की समस्या का अध्ययन किया।

प्रस्तुत इकाई में आप हिंदी साहित्येतिहास के परिप्रेक्ष्य में काल-विभाजन की समस्या एवं उसके विभिन्न रूपों तथा समय-समय पर हिन्दी साहित्येतिहासकारों द्वारा इस समस्या पर दिए गए निष्कर्षों का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप हिंदी साहित्य के काल-विभाजन की प्रकृति, प्रक्रिया एवं वर्गीकरण के परिप्रेक्ष्य में संपूर्ण हिंदी साहित्य का अध्ययन कर सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- साहित्यितिहास तथा काल-विभाजन के अन्तर्सबंधों को समझ सकेंगे।
- काल-विभाजन की प्रक्रिया तथा स्वरूप को जान सकेंगे।
- हिंदी साहित्येतिहास के विभिन्न इतिहासकारों द्वारा प्रदत्त काल-विभाजन को जान सकेंगे।
- हिंदी साहित्येतिहास के क्रमिक विकास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- साहित्येतिहास के अंतर्गत काल-विभाजन के आधार एवं महत्व को समझ सकेंगे।

4.3 साहित्येतिहास एवं काल-विभाजन

''इतिहास एक व्यक्ति की नहीं, मानव के समग्र जीवन की खोज है। इसलिए मानव-जीवन के निरंतर प्रवाह में काल विभाजन कोई अर्थ नहीं रखता। उसका यह प्रवाह पूर्णत: बदल जाता हो, ऐसा नहीं है। किन्तु इतिहास के अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से यादृच्छिक रूप में उसे विभिन्न कालों में विभाजित कर लिया जाता है ताकि एक काल विशेष में उसके जीवन में आरोह-अवरोह का और उसके कारणों का पता लगाया जा सके। समान साहित्यिक आदर्शों, मानकों, रू‍ यों के उद्भव, विकास और लोप के कारणों का, पता लगाने की चेष्टा करते हैं। 'काल' एक निरंतर प्रवहमान

ऐतिहासिक प्रक्रिया में निहित आदर्शों का पता लगाता है। कृतियों का अध्ययन उस काल की अवधारणा निश्चित करने के लिए किया जाता है न कि टाइप या वर्ग के रूप में। काल-विशेष आदर्शों की एक व्यवस्था से अनुप्राणित रहता है और कोई एक कला-कृति उसे उभारने में असमर्थ रहती है। इसलिए साहित्येतिहास का प्रणयन करते समय काल-विभाजन भी एक महत्वपूर्ण समस्या है और इस संबंध में हिंदी साहित्य के विद्वानों की उपलब्धियॉं सर्वविदित हैं। हिंदी साहित्य के प्रमुख कालों को लेकर ऐसा विवाद चलता रहा है जो संभवत: कभी समाप्त ही न हो। 'आदिकाल', 'मध्यकाल' (भक्ति और रीतिकाल, आधुनिक काल या ब्रिटिश काल, पूर्व-प्रसाद काल, प्रगतिवादी काल, प्रयोगवादी काल, स्वतंत्रता काल) आदि नामों को लेकर विवाद चलता रहता है और इन शब्दों की व्याख्याएं और पुनर्व्याख्याएं होती रहती हैं। हिंदी में इतिहास, प्रसिद्ध साहित्यकारों विधाओं, प्रवृत्तियों, राष्ट्रीय गतिविधियों, साहित्यिक आंदोलनों आदि के आधार पर विभिन्न कालों का नामकरण किया गया है जो सर्वमान्य नहीं है। वास्तव में काल-विभाजन का कोई आधार होना चाहिए। ''काल-विभाजन को आत्मपरक दृष्टि से देखना उचित नहीं और विभिन्न कालों के बीच विभाजन-रेखा खींचना उसी प्रकार दुस्तर कार्य है जिस प्रकार जल प्रवाह जल प्रवाह के बीच खींचना। तब भी अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से अथवा किसी योजना के अनुसार हम काल विभाजन करते ही हैं और शताब्दियों, दशकों या वर्षों के हिसाब से विश्लेषणात्मक इतिहास लिखे जाते रहे हैं और लिखे जाते रहेंगे।''

अभ्यास प्रश्न –

(क) सही अथवा गलत लिखिए –

क . इतिहास व्यक्ति जीवन की खोज है –

ख . साहित्येतिहास के अन्तर्गत काल विभाजन एक महत्वपूर्ण समस्या है –

ग . हिंदी साहित्य में मध्यकाल का अर्थ 'भक्ति तथा रीतकाल' होता है -

घ . काल-विभाजन आत्मपरक होता है –

4.4 हिंदी साहित्येतिहास एवं काल – विभाजन

हिंदी साहित्य के इतिहास की एक लंबी परंपरा देखने को मिलती है। इस लंबी परम्परा का एक साथ अध्ययन न केवल असुविधाजनक है, अपितु असंभव-सा भी लगता है। यही कारण है कि साहित्य के विकास में समय-समय पर जो परिवर्तन हुए और उन परिवर्तनों हुए और इन परिवर्तनों के समानान्तर जो जो धाराएं विकसित हुई, उनका विभाजन अध्ययन को सुगम बना देता है। काल-विभाजन की आवश्यकता इसलिए भी है कि ऐसा करके हिंदी साहित्य के विकास की परंपरा को

भली-भांति समझा जा सकता है और यह भी जाना जा सकता है कि कब कौन सी धारा किन कारणों से विकसित हुई और उसकी परिणति किस रूप में हुई यह तथ्य है कि कोई भी काव्यधारा एकदम समाप्त नहीं होती, उसके थोड़े बहुत चिन्ह बराबर दिखते रहते हैं, किंतु प्रमुख प्रवृत्तियों में परिवर्तन आ जाता है। हिंदी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहास लेखकों में गार्सां द तासी, शिवसिंह सेंगर, आदि के नाम लिये जाते हैं, किन्तु इन्होंने काल-विभाजन की ओर ध्यान नहीं दिया। सर्वप्रथम इस ओर ध्यान देने वाले विद्वानों में डॉ.ग्रियर्सन का नाम आता है। उन्होंने अपने ग्रंथ 'द मॉडर्न वर्नाक्यूलर ऑफ हिन्दुस्तान' में काल-विभाजन का एक प्रयास किया है। उनके ग्रंथ में दिए गए अध्याय काल विशेष के सूचक हैं, किन्तु विडम्बना यह रहीं कि उनके बाद के इतिहास लेखकों पश्चात् मिश्र बन्धुओं ने 'मिश्रबंधु विनोद' में हिंदी साहित्य की लंबी परंपरा को पहले पाँच भागों में विभाजित किया और बाद में उन्हें नौ कालखण्डों में विभक्त कर दिया। मिश्रबंधुओं का यह प्रयास बाद के लेखकों को स्वीकार नहीं हुआ, क्योंकि यह अव्यवस्थित, अप्रामाणिक और आवश्यकता से अधिक लंबा माना गया। ऐसी स्थिति में आचार्य शुक्ल सामने आए और उन्होंने पहली बार एक व्यवस्थित काल-विभाजन प्रस्तुत करने का प्रयास किया। यद्यपि उनके काल-विभाजन में कतिपय त्रुटियाँ प्राप्त किए हुए है। काल-विभाजन की आवश्यकता और महत्ता इस दृष्टि से भी है कि ऐसा करके ही हम हिंदी साहित्य की लंबी परंपरा का सम्यक् तथा तटस्थ मूल्यांकन करने की ओर प्रवृत्त हो सकते हैं। काल-विभाजन कोई भी हो, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि किसी भी प्रामाणिक कहे जाने वाले काल-विभाजन में कोई त्रुटि नहीं होगी। अध्येता के सामने अध्ययन की समस्या होती है। वह विकास की लंबी परंपरा को स्पष्ट रूप से जानना और समझना चाहता है। उसकी यह इच्छा तभी पूर्ण हो सकती है जबकि एक सुविधाजनक, सरल प्रमुख बिन्दुओं को उभारने वाला काल विभाजन सामने हो। यह तो नहीं कहा जा सकता कि कोई भी काल-विभाजन अपने आप में पूर्ण होगा और उसके बाद किसी और काल-विभाजन की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, किन्तु यह तो माना ही जा सकता है कि काल-विभाजन ऐसा होना चाहिए जो परिस्थिति, प्रवृत्ति और रचनाकारों की स्थिति को उजागर करता हो। इन्हीं सब कारणों से काल-विभाजन की आवश्यकता और महत्ता है और हमेशा रहेगी।''

काल विभाजन क आधार – काल-विभाजन के अनेक आधार संभव हैं। कर्त्ता के नाम पर, प्रवृत्ति के नाम पर, शासक के नाम पर, साहित्यिकार के प्रभाव के नाम पर और एक जैसी प्रवृत्ति की बहुलता के आधार पर नामकरण और काल-विभाजन किया जा सकता है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि साहित्य की धारा में युगानुरूप प्रवृत्तिगत वैमिन्य भी पाया जाता है। डॉ.हुकुमचन्द राजपाल का कथन है कि विभिन्न प्रवृत्तियों का एक साथ अध्ययन वैज्ञानिक भी बन जाता है। इसलिए साहित्यधारा को विभिन्न कालों में विभाजित करके नामकरण करने की आवश्यकता होती है। अत: यह बात बराबर ध्यान में रखते हुए कि साहित्य का अखण्ड परम्परा का निरूपण ही साहित्य का लक्ष्य है, समय-समय पर उपस्थित दिशा परिवर्तनों और रूप परिवर्तनों के अनुसार विकास क्रम का

अध्ययन करना एक अनिवार्य आवश्यकता बन जाती है। इस आवश्यकता के अनुरूप हिंदी साहित्येतिहास के काल-विभाजन की परंपरा विकसित हुई। हिंदी इतिहास लेखन परंपरा में काल विभाजन के विभिन्न आधारों ऐतिहासिक काल क्रम तथा आदिकाल आदि, शासक और उनके शासनकाल क्रम यथा ऐलिजाबेथ, मराठा आदि, लोक नायक और उनके प्रभाव कालक्रम अनुसार यथा चैतन्य काल, गांधी काल आदि साहित्य नेता एवं उसकी प्रभाव परिधि के अनुसार यथा भारतेन्दु, द्विवेदी, प्रसाद युग आदि, राष्ट्रीय सामाजिक अथवा सांस्कृतिक आंदोलन आदि के अनुसार यथा- भक्तिकाल, पुनर्जागरण काल आदि, साहित्यिक प्रवृत्ति के अनुसार यथा रीतिकाल, छायावाद, प्रगतिवाद आदि में से समान प्रकृत्ति और प्रवृत्ति के मुख्य आधार स्वीकारा गया है। इसके अनुसार साहित्यिक प्रवृत्तियों और रीति-आदर्शों का स्तम्भ वैषम्य ही साहित्य के काल-विभाजन का आधार हो सकता है। समान प्रकृति और प्रवृत्ति की रचनाओं का कालक्रम से वर्गीकृत अध्ययन कर साहित्य का इतिहासाकार सम्पूर्ण साहित्य सृष्टि का समवेत अध्ययन करने का प्रयास करता है। फलत: हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में विभिन्न आधारों को लेकर एक परंपरा विकसित हुई।''

इकाई दो में आपने हिंदी साहित्येतिहास लेखन की सम्पूर्ण परम्परा का अध्ययन किया था तथा जाना था कि हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन का प्रारम्भ पारसी विश्वविद्यालय में उर्दू के प्रोफसर गार्सां द तासी के फ्रेंच भाषा में लिखे ग्रंथ 'द इस्तवार द ल लितेरेत्यूर ऐंदुई ए ऐंदूस्तानी' के 1839 ई0 में प्रकाशित प्रथम भाग से हुआ था। 1847 ई0 इसी ग्रंथ का दूसरा भाग प्रकाशित हुआ तथा द्वितीय संस्करण के अंतर्गत तीसरा संस्करण 1870 ई0 में प्रकाशित हुआ। गार्सां द तासी के सम्पूर्ण इतिहास ग्रंथ को देखने के पश्चात् यह बात स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है कि यह ग्रंथ अपनी भीतरी बुनावट के आधार पर इतिहास ग्रंथ नहीं माना जा सकता। गार्सां द तासी का यह ग्रंथ कालक्रमानुसार न होकर लेखकों के वर्णानुक्रम से है।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि हिंदी साहित्येतिहास के प्रथम ग्रंथ में लेखक काल-विभाजन की समस्या से नहीं जूझा था। इसके पश्चात् आए दो महत्वपूर्ण इतिहास ग्रंथ (1) 'ए हिस्ट्री ऑफ उर्दू पोएम्स चीफली ट्रांसलेटेड फ्राम इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी' वाई0एफ0 फैलेन एण्ड मौलवी करीमुद्दीन विथ ऐडिशन्स। देहली कॉलेज, 1848'' एवं (2) शिवसिंह सेंगर कृत शिवसिंह सरोज (1878) भी इतिहास दृष्टि एवं काल-विभाजन के संदर्भ में अनुल्लेखनीय ग्रंथ कहे जा सकते हैं।

4.4.1 ग्रियर्सन द्वारा प्रतिपादित काल – विभाजन

इन ग्रंथों के पश्चात् सर्वप्रथम अंग्रेजी में अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ सर **जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन** (जनवरी, 1851-मार्च, 1941) द्वारा लिखित **'द मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिट्रचर ऑव हिन्दुस्तान' (1889)** है। यह ''पहला इतिहास ग्रंथ है जिसमें हमें काल-विभाजन मिलता है – भले ही हम उस विभाजन से सहमत न हों। किन्तु काल-विभाजन की दृष्टि से उसका बीजवपन करने वाला ग्रंथ होने की दृष्टि से,

उसका ऐतिहासिक महत्व है। उसे कोरा कवि-नामावली ग्रंथ कहना लेखक के साथ अन्याय करना होगा। कुछ बातों की दृष्टि से हमें इस ग्रंथ का ऋण स्वीकार करने में संकोच नहीं करना चाहिए। वैसे भी सर जॉर्ज ग्रियर्सन का नाम आधुनिक भारतीय साहित्य और भाषाओं के इतिहास में अमर रहेगा। 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' उनकी कीर्ति का जाज्वल्यमान स्तम्भ है। क्या हम भारतवासी कोई दूसरा लिंग्विस्टिक सर्वे दे सके हैं ? इस समय उनके इतिहास ग्रंथ में दिया गया काल-विभाजन विचारणीय है। स्वयं उन्हीं के शब्दों में :

"The work is divided into chapters, each roughly representing a period. The Sixteenth and Seventeenth Centuries, the Augustan age of Indian Vernacular poetry, occupy six chapters, not strictly divided according to groups of poets, commencing with the romantic poetry of Malik Muhammad and including amongst others the Krishna Cult of Braj, the works of Tulsi Das (To whom a special chapter has been allotted) and the technical School of poets founded by Kesab Das" (भूमिका, पृ0 XV)

उनके अध्यायों का क्रम एवं काल-विभाजन इस प्रकार है :

अध्याय 1. The Bardic Period 700-1300 A.D, (वीरगाथा काल 700-1300 ई.)

अध्याय 2. The Religious Revival of the fifteenth Centuary, (15वीं शताब्दी का धार्मिक जागरण)

अध्याय 3. The Romantic Poetry of Malik Muhammad 1540 A.D, (मलिक मुहम्मद जायसी का प्रेमकाव्य, 1540 ई.)

अध्याय 4. The Kishna Cult of Braj 1500-1600 A.D, (ब्रजभाषा का कृष्ण सम्प्रदाय,1500-1600 ई.)

अध्याय 5. The Mugal Court (मुगल दरबार)

अध्याय 6. Tulsi Das (तुलसीदास)

अध्याय 7. The Ars Poetica 1580-1692 A.D. (रीति काव्य, 1580-1692 ई.)

अध्याय 8. Other Successors of Tulsi Das 1600-1700 A,D. Part I Religious Poets (तुलसीदास के परवर्ती कवि, 1600-1700 ई. भाग-1 धार्मिक कवि), Part II other Poests (भाग-2, अन्य कवि)

अध्याय 9. The Eighteenth Century (अठारहवीं शताब्दी)

अध्याय 10. Hindustan under the company 1800-1857 A.D. (कम्पनीकालीन हिन्दुस्तान, 1800-1857 ई.)

अध्याय 11. Hindustan Under the Queen 1857-1887 A.D (साम्राजीकालीन हिन्दुस्तान, 1857-1887 ई.)''

''वास्तव में ग्रियर्सन ने शताब्दी-क्रम को अपने विभाजन और साहित्यिक प्रगति का मुख्य आधार माना है और उससे न तो विभिन्न युगों की मुख्य प्रवृत्ति स्पष्ट हो पाती है और न उस युग का समवेत रूप ही उभर पाता है1 उसमें बिखराव है।''

4.4.2 मिश्रबंधुओं द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन

जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन के पश्चात् मिश्रबंधुओं (गणेश बिहारी मिश्र, रावराजा राय बहादुर श्यामबिहारी मिश्र, रायबहादुर शुकदेवबिहारी मिश्र) द्वारा लिखित सर्वप्रसिद्ध ग्रंथ **'मिश्रबंधु विनोद** (हिंदी साहित्य का इतिहास तथा कवि कीर्तन) के पहले तीन भागों का प्रकाशन 1913 में हुआ। 1934 ई. में इस ग्रंथ के अंतिम भाग का प्रकाशन हुआ। 1934 ई. में इस ग्रंथ के अंतिम भाग का प्रकाशन हुआ। ''मिश्रबंधुओं ने कवियों की आलोचनाओं तथा जीवनी आदि विवरणों के उपकरण इकट्ठे किये; किन्तु हिंदी का साहित्यिक इतिहास लिखने की महत्वकांक्षा रखने वाले इन विद्वानों ने इन उपकरणों से इतिहास का स्थापत्य नहीं तैयार किया।''

मिश्रबंधुओं द्वारा प्रदत्त काल-विभाजन निम्न प्रकार है –

आदि प्रकरण

प्रारम्भिक एवं पूर्व माध्यमिक हिंदी

हिंदी की उत्पत्ति और काव्य लंक्षण

वैदिक समय से सं. 700 तक

पूर्व प्रारम्भिक हिंदी

(सं. 700 से 1347 तक)

(1) चंद पूर्व की हिंदी

(सं. 700 से 1200)

(2) रासो काल (1201-1347)

उत्तर प्रारम्भिक हिंदी

(सं. 1348-1444)

पूर्व माध्यमिक हिंदी

(सं. 1445-1560)

प्रौढ़ माध्यमिक प्रकारण

प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी

(सं. 1561 से 1680)

अष्टछाप (सं. 1561-1630)

सौर काल

(सं. 1561 से 11630 तक)

गोस्वामी तुलसीदास तथा तुलसी-काल की हिंदी

(सं. 1631-1680)

पूर्व तुलसी काल

(सं. 1631-1645)

माध्यमिक तुलसी-काल

(सं. 1646-1670)

अन्तिम तुलसीकाल (सं. 1670-1680)

अलंकृत प्रकरण (सं. 1681-1790)

पूर्वालंकृत हिंदी

महाकवि सेनापत

सेनापति-काल (सं. 1681 से 1706)

बिहारी-काल (सं. 1707 से 1720)

भूषण-काल (सं. 1721 से 1750)

आदिम देव-काल (सं. 1751 से 1771

माध्यमिक देव-काल (सं. 1771 से 1790)

घनआनन्द

उत्तरालंकृत प्रकरण (सं. 1791 से 1889 तक)

उत्तरालंकृत हिंदी

दास-काल (सं. 1791 से 1810)

सूदन-काल (सं. 1811 से 1830)

रामचद्र-काल (सं. 1831 से 1855)

बेनी प्रवीन-काल (सं. 1856-1875)

पद्माकर-काल (सं. 1876-1989)

अज्ञात-कालिक प्रकरण

अज्ञात काल (जिन कवियों का काल-निरूपण न हो सका)

परिवर्तन प्रकरण (1890-1925)

परिवर्तनकालिक हिंदी

द्विजदेव-काल (1890-1915)

दयानन्द-काल (1916-1925)

''मिश्रबंधुओं के इस वर्गीकरण में भी तथ्य संबंधी अनेक असंगतियाँ हैं। इन्होंने जॉर्ज ग्रियर्सन की भाँति 'अपभ्रंश काल' को हिंदी साहित्य के साथ जोड़ दिया है। दो सौ वर्ष के माध्यमिक काल का

दो भागों में विभाजन यह दर्शाता है कि सौ वर्ष के अनन्तर ही साहित्य प्रौढ़ हो गया जबकि पहले विभाजन में सात आठ वर्ष तक वह एक-सा रहा। अलंकृत काल के बाद 35 वर्ष की अवधि परिवर्तन काल की रही। प्रत्येक काल के बाद दूसरे काल के बीच की कुछ अवधि परिवर्तन काल के रूप में ही रहती हैं। यदि इस प्रकार परिवर्तनकाल का विभाजन किया जाए तो प्रत्येक काल के बाद 'परिवर्तन या संक्रमण काल' होगा जो कि अनावश्यक और अव्यावहारिक है। अलंकृत काल का नामकरण साहितय की आंतरिक प्रवृत्ति पर आधारित है। जबकि अन्य नामकरण साहित्य में विकास का सूचक है। इन्होंने नामकरण में एक-सी पद्धति नहीं अपनाई है। लेकिन इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि मिश्रबंधुओं का इतिहास निरर्थक अथवा महत्वहीन है। वास्तव में अगर इन चंद दोषों को छोड़ दिया जाये तो मिश्रबंधुओं के प्रौढ़ और सुलझें हुए प्रयासों की सराहना करनी चाहिए।''

4.4.3 आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन

हिंदी साहित्येतिहास परम्परा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं इतिहास-दृष्टि सम्पन्न रचना आचार्य रामचंद्र शुक्ल (4 अक्टूबर, 1884-2 फरवरी, 1941) कृत हिंदी साहित्य का इतिहास (सन् 1929) है। अपने इतिहास के आरम्भ में ही आचार्य शुक्ल अपनी इतिहास-दृष्टि का परिचय देते हुए लिखते हैं, ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्ततक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अत: कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित् दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।'' इसी संदर्भ को विकसित करते हुए आचार्य शुक्ल हिंदी साहित्य के 900 वर्षों के विकासात्मक कालखण्ड को सर्वमान्य विभाजन के रूप में निम्नलिखित 4 काल-खण्डों में विभाजित करते हैं, ''उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार हम हिंदी साहित्य के 900 वर्षों के इतिहास को चार कालों में विभक्त कर सकते हैं –

आदिकाल (वीरगाथाकाल, संवत् 1050-1375)

पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् 1375-1700)

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, संवत् 1700-1900)

आधुनिक काल (गद्यकाल, संवत् 1900-1984)

प्रस्तुत काल विभाजन को व्याख्यायित करते हुए आचार्य ने लिखा, ''यद्यपि इन कालों की रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही उनका नामकरण किया गया है, पर यह न समझना चाहिए कि किसी

विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही उनका नामकरण किया गया है, पर यह न समझना चाहिए कि किसी विशेष प्रवृत्ति के अनुसार ही उनका नामकरण किया गया है, पर यह न समझना चाहिए कि किसी विशेष काल में और प्रकार की रचनाएं होती ही नहीं थीं। जैसे, भक्तिकाल या रीतिकाल को लें तो उसमें वीररस के अनेक काव्य मिलेंगे जिनमें वीर राजाओं की प्रशंसा उसी ंग की होगी जिस ंग की वीरगाथाकाल में हुआ करती थी। अत: प्रत्येक काल का वर्णन इस प्रणाली पर किया जाएगा कि पहले तो उक्त काल की विशेष प्रवृत्तिसूचक उन रचनाओं का वर्णन होगा जो उस काल के लक्षण के अंतर्गत होगी, पीछे संक्षेप में उनके अतिरिक्त और प्रकार की ध्यान देने योग्य रचनाओं का उल्लेख होगा। इस प्रकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'स्वयं के द्वारा किए गए आचार्य रामचंद्र शुक्ल के द्वारा प्रदत्त काल-विभाजन का विश्लेषण करते हुए डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि आचार्य शुक्ल द्वारा किए गए काल-विभाजन के दो आधार थे। वाह्य परिस्थितियों के कारण बदली हुई चित्तवृत्ति के फलस्वरूप एक विशेष काल में विशेष ंग की रचनाओं की प्रचुरता के अतिरिक्त अन्य प्रकार की रचनाएं भी हो सकती हैं। किन्तु प्रचुर मात्रा में हुई रचनाएं ही ध्यान में रखी जाएंगी। एक विशेष काल में एक विशेष ंग के ग्रंथों की प्रसिद्धि जिनसे उस काल की लोक-प्रवृत्ति प्रतिध्वनित होती हो।''

''आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जो काल-विभाजन प्रस्तुत किया है, वह न केवल प्रौढ़ है, अपितु आजकल भी एक सीमा तक मान्य है। इसमें केवल एक ही त्रुटि नजर आती है और वह भी इसिलए कि नये अनुसंधानों ने उस त्रुटि की ओर इशारा कर दिया है। वह त्रुटि यह है कि शुक्ल जी ने अपने अपभ्रंश युग को हिंदी साहित्य का आदिकाल माना है. यह तथ्य वर्तमान अनुसंधानों के परिप्रेक्ष्य में तर्कसंगत नहीं लगता है। यद्यपि यह सत्य है कि शुक्ल जी ने आदिकाल की सीमा 1050 से प्रारंभ मानकर यथार्थ से अधिक निकट जाने का प्रयास किया है। आचार्य शुक्ल ने जो काल-विभाजन प्रस्तुत किया है, उसके संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कुछ मौलिकताएं प्रस्तुत की हैं। द्विवेदी जी ने प्राचीन परम्पराओं के सातत्य की खोज की और इसी आधार पर शुक्ल जी की कतिपय मान्यताओं में संशोधन किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी की ऐतिहासिक दृष्टि के स्थान पर परम्परा का महत्व प्रतिपादित किया और उन मान्यताओं का खण्डन किया जो एकांगी दृष्टिकोण पर टिकी हुई थीं। इसी कारण द्विवेदी जी ने भक्ति आंदोलन के स्रोतों की खोज की तथा दक्षिण भारत के सातवीं-आठवीं शताब्दी से चल रहे वैष्णव भक्ति आंदोलन पृष्ठभूमि की विस्तार से चर्चा की। उन्होंने इस धारणा को निर्मूल बतलाया कि भक्ति आंदोलन इस्लामी आतंक की प्रतिक्रिया का परिणाम था। द्विवेदी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि ''मैं इस्लाम के महत्व को नहीं भूल रहा हूँ लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता, जैसा आज है।'' द्विवेदी जी ने संत, काव्य परम्परा को सिद्धों नाथों से तथा प्रेमाख्यानों को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश को काल परंपरा से जोड़ा। इस संदर्भ में उन्होंने 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास तथा 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' जैसी रचनाओं में अपने विचारों

को व्यवस्थित रूप देकर प्रस्तुत किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि आचार्य द्विवेदी पहले विद्वान थे, जिन्होंने आचार्य शुक्ल की मान्यताओं को चुनौती दी और पुष्ट प्रमाणों के आधार पर हिंदी साहित्य अध्येताओं के निमित्त एक व्यापक और संतुलित इतिहास दर्शन की पीठिका तैयार की। यह भी निर्विवाद है कि शुक्ल जी ने जहॉ युग की स्थिति पर जो दिया, वहीं आचार्य द्विवेदी जी ने परम्परा पर ऐसी स्थिति में दोनों के मत एक-दूसरे के पूरक लगते हैं। डॉ. हुकुमचंद्र राजपाल का यह कथन उचित है कि ''आचार्य द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल द्वारा प्रतिपादित प्रथम तीन कालखण्डों को पूर्णत: झकझोर देने के बाद भी अपनी ओर से उनमें परिवर्तन का कोई प्रयास नहीं किया। वस्तुत: उन्होंने अपनी धारणाओं को आचार्य शुक्ल द्वारा प्रतिपादित मूल ॉंचे के अंतर्गत ही रखा। इसी कारण उनके इतिहास की रूपरेखा काल-विभाजन पद्धति व काव्यधारा की नियोजना में आचार्य शुक्ल के अनुरूप रही''

''आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति के साहित्य को निर्गुण और सगुण दो धाराओं में विभाजित किया साथ ही निर्गुण धारा का अध्ययन और मूल्यांकन ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखाओं के रूप में प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं, आधुनिक काल को भी उन्होंने पहले तो गद्य-खण्ड और पद्य-खण्ड में विभाजित किया, फिर प्रत्येक खण्ड को तीन-तीन उपखण्डों में विभाजित कर प्रथमोत्थान काल, जिसकी सीमा संवत् 1925 से 1950 तक द्वितीय उत्थान-जिसकी सीमा संवत् 1950 से 1975 तक, तृतीय उत्थान-संवत् 1975 के बाद तक । पहले और दूसरे उत्थान के विषय में शुक्ल जी ने यह भी संकेत किया है कि इन दोनों उत्थानों को क्रमश: भारतेन्तु युग और द्विवेदी युग भी कहा जा सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि आचार्य शुक्ल ने जो काल-विभाजन प्रस्तुत किया, उसमें जो असंगतियाँ थी उन्हें दूर करने का यथासंभव प्रयास आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कुशलतापूर्वक किया।

4.4.4 डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा प्रस्तावित काल –विभाजन

''आचार्य रामचंद्र शुक्ल के पश्चात् डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'हिंदी साहितय का आलोचनातम्क इतिहास' में काल विभाजन को एक नयी दिशा प्रदान करने की चेष्टा की। उनके द्वारा किया गया काल विभाजन निम्नांकित है – संधिकाल (संवत् 700 से 1000 वि0 तक), चारण काल (संवत् 1000 से 1375 वि0 तक), भक्तिकाल (संवत् 1375 से 1700 वि0 तक), रीतिकाल (संवत् 1700 से 1700 वि0 तक), आधुनिक काल संवत् (1900 से अब वि0 तक), डॉ. गणपितचंद्र गुप्त ने लिखा है कि ''डॉ. रामकुमार वर्मा के काल-विभाजन के अंतिम चार कालखण्ड तो आचार्य शुक्ल के ही विभाजन के अनुरूप हैं, केवल वीरगाथाकाल के स्थान पर चारणकाल नाम अवश्य दे दिया गया है, किन्तु इसमें एक विशेषता संधिकाल की है, जो वस्तुत: गुण वृद्धि का सूचक कम एवं दोष वृद्धि का द्योतक अधिक है।'' कुछ विद्वानों ने चारणकाल नामकरण को भी असंगत बतलाया है। उनके अनुसार उस युग के काव्य रचयिता चारण नहीं, वरन् भाट, भट्ट अथवा ब्रह्मभट्ट थे। इस प्रकार

संधिकाल नामकरण के द्वारा रूढ़ि त्याग एवं नवीनता ग्रहण का साहस अवश्य दिखाया गया है, किन्तु उसमें भ्रामकता अधिक है, निश्चयात्मकता कम।''

4.4.5 डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन

''डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने हिंदी साहित्य का सैद्धान्तिक इतिहास लिखा है। डॉ.गुप्त ने अपने इतिहास में काल विभाजन का एक नवीन प्रयास किया है। उनके द्वारा किए गए विभाजन का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

प्रारम्भिक काल (सन् 1184 से 1350 तक)

मध्यकाल (सन् 1350 से 1857 तक)

क. पूर्व मध्यकाल (उत्कर्षकाल सन् 1350 से 1500 तक)

ख. मध्यकाल (चरमोत्कर्षकाल सन् 1500 से 1600 तक)

ग. उत्तरमध्यकाल (अपकर्षकाल सन् 1600-1857 तक)

आधुनिक काल (सन् 1857 से 1965 तक)

क. भारतेन्दु युग (सन् 1857 से 1965 तक)

ख. द्विवेदी युग (सन् 1857 से 1965 तक)

ग. छायावाद युग (सन् 1920 से 1937 तक)

घ. प्रगतिवादी युग (सन् 1937 से 1945 तक)

ड. प्रयोगवादी युग (सन् 1945 से 1965 तक)

यद्यपि डॉ. गुप्त ने काल-विभाजन की वैज्ञानिक बनाने का भरपूर प्रयास किया, तथापि स्वयं उन्होंने अपने 'आधुनिक काल' को अनेक दृष्टियों से त्रुटिपूर्ण स्वीकार किया है, यथा- ''भारतेन्दु युग एवं द्विवेदी युग में विकसित होने वाली काव्य परम्परा एक ही है, दो नहीं, जैसाकि इस युग विभाजन से भ्रम होता है। सन् 1920,1937,1945 में नयी परम्पराएं भी उनके साथ अग्रसर रहती हैं। आदर्शवादी उनके साथ अग्रसर रहती हैं। आदर्शवादी, छायावादी, प्रगतिवादी, पयोगवादी परम्पराएं अन्तत: समानान्तर बहने वाली परम्पराएं हैं, यह दूसरी बात है कि उनका उदय क्रमश: होता है।''

4.4.6 अन्य विद्वानों द्वारा प्रस्तावित काल – विभाजन

काल विभाजन के जितने प्रयास किए गए हैं, उनमें प्रमुख का उल्लेख किया जा चुका है। अब कुछ ऐसे काल विभाजन भी हैं जो सम्पादित ग्रंथों में दिए गए हैं। हम चाहें तो इन्हें सामूहिक प्रयास भी कह सकते हैं। ऐसे काल विभाजन भी हैं जो सम्पादित ग्रंथों में दिए गए हैं। हम चाहें तो इन्हें सामूहिक प्रयास भी कह सकते हैं। ऐसे प्रयासों में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित हिंदी साहित्य विशेष उल्लेखनीय है। इस ग्रंथ में सम्पूर्ण हिंदी साहित्य को तीन कालों में विभाजित किया गया है – आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल। ऐसा करके इस ग्रंथ में प्रत्येक काल की काव्य परम्पराओं का विवरण प्रस्तुत कर दिया गया है। नागरी प्रचारिणी सभी द्वारा 'हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास' भी इसी प्रकार की विशाल योजना का परिणाम है जो सोलह खण्डों में प्रस्तुत हुआ है। डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित हिंदी साहित्य का इतिहास' भी सामूहिक लेखन का ही परिणाम है, जो इतिहास सामूहिक लेखन के रूप में सामने आए हैं, उनकी अपनी दुर्बलताएं हैं। सबसे बड़ी दुर्बलता इन ग्रंथो में यह देखने को मिलती है कि प्रत्येक काल खण्ड के विवेचन में संतुलन से काम नहीं लिया गया है। लेखकों ने अपनी रूचि के अनुकूल कहीं अधिक विस्तार दे दिया है तो कहीं सामग्री को संक्षेप में समेट कर चलता कर दिया है। दूसरी दुर्बलता यह मिलती है कि अलग-अलग लेखकों ने अपनी मान्यताओं को महत्व दिया है, इसलिए अन्तर्विरोध भी साफ झलकते हैं। अब प्रश्न है कि ऐसी स्थिति में क्या किया जाए ? हमारी दृष्टि में काल-विभाजन न केवल सुविधाजनक होना चाहिए, अपितु वह स्पष्ट और व्यवहारिक भी होना चाहिए। यह सत्य है कि कोई भी काल विभाजन अपने आप में सम्पूर्णता का दावा नहीं कर सकता है, फिर भी ऐसा प्रयास तो किया ही जा सकता है जो सुविधाजनक हो और कम से कम आपत्तिजनक हो।''

अभ्यास प्रश्न –

(अ) अति लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. हिंदी साहित्य के प्रथम इतिहास लेखन कौन थे।

2. ग्रियर्सन की हिंदी साहित्येतिहास विषयक पुस्तक का नाम बताइये।

3. शिवसिंह सरोज का प्रकाशन कब हुआ।

4. आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के प्रथम युग को किस नाम से चिन्हित किया।

(ख) सही/गलत बताइए –

1. गार्सां द तासी के साहित्येतिहास के प्रथम भाग का प्रकाशन 1939 ई. में हुआ –

2. ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य के प्रथम काल को 'The Bardic Period' कहा –

3. आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के इतिहास को पॉच प्रमुख कालों में विभाजित किया है।

4. 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' पुस्तक के लेखक डॉ. श्याम सुंदर दास हैं।

(ग) लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. हिंदी साहित्य के इतिहास के संदर्भ में काल विभाजन की समस्या पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रदत्त काल-विभाजन की संक्षिप्त व्याख्या अपने शब्दों में कीजिए।

4.5 सुविधाजनक और उपयोगी काल-विभाजन

''आचार्य शुक्ल ने जो काल-विभाजन प्रस्तुत किया है, वह बावजूद कतिपय असंगतियों के आज भी अपना औचित्य बनाए हुए है। सुविधाजनक काल विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है –

1. आदिकाल (सन् 650 से 1350 तक) 2. भक्तिकाल (सन् 1350 से 1650 तक)

3. रीतिकाल (सन् 1650 से 1857 तक) 4. आधुनिक काल (सन् 1857 से आज तक)''

4.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- ❖ हिंदी साहित्य की प्रमुख समस्याओं में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या-काल विभाजन, की समस्या से परिचित हो चुके होंगे।
- ❖ साहित्येतिहास, हिंदी साहित्येतिहास एवं काल-विभाजन के पारस्परिक अन्तर्संबधों का ज्ञान प्रात कर चुके होंगे।
- ❖ विभिन्न साहित्येतिहासकारों द्वारा प्रदत्त काल-विभाजन की प्रक्रिया एवं उसकी महत्ता से परिचित हो चुके होंगे।
- ❖ काल-विभाजन के संदर्भ में सम्पूर्ण हिंदी साहित्य की विकासात्मक प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

4.7 शब्दावली

1. परिप्रेक्ष्य – संदर्भ
2. क्रमिक – क्रम से
3. युगानुरूप – समय के अनुरूप
4. वर्णानुक्रम – वर्णों के क्रम से
5. जाज्वल्यमान – चमकदार
6. माध्यमिक – बीच का
7. दिग्दर्शन – दिशा का ज्ञान

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.3 क अभ्यास प्रश्नों क उत्तर –

(क) सही अथवा गलत लिखिए –

1. गलत।
2. सही।
3. सही।
4. गलत।

4.4 क अभ्यास प्रश्नों क उत्तर –

(अ) अति लघु उत्तरीय

1. गार्सां द तासी
2. द मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्तान
3. 1878 ई. में।
4. वीरगाथाकाल

(ख) सही गलत बताइय –

1. सही

2. सही

3. गलत

4. गलत

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर, इतिहास और साहित्येतिहास, 1984, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ 101-102
2. शर्मा, हरिचरण, हिंदी साहित्य का आधुनिक काल, 2007, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, पृष्ठ 8-9
3. उपरोक्त, पृष्ठ, 8-9
4. सिंह, त्रिभुवन, साहित्यिक निबंध, हिंदी प्रचारक संस्थान, 1976, पृष्ठ 04
5. पूर्वोक्त, पृष्ठ 05
6. पूवोक्त, पृष्ठ 07
7. वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर, पूर्वोक्त, पृष्ठ, 116-117
8. वार्ष्णेय लक्ष्मीसागर, पूर्वोक्त, पृष्ठ, 117
9. शर्मा, नलिन विलोचन, साहित्य का इतिहास-दर्शन, सं. 2016, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृष्ठ-85
10. शर्मा, हरिचरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ-11
11. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, 2010, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, पृष्ठ-21
12. पूर्वोक्त, पृष्ठ- 21
13. पूर्वोक्त, पृष्ठ
14. वार्ष्णेय, पूर्वोक्त, पृष्ठ ,123
15. शर्मा, हरिचरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ,11,13

16. शर्मा, हरिचरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ ,13-14

17. शर्मा, हरिचरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ ,14

18. शर्मा, हरिचरण, पूर्वोक्त, पृष्ठ ,14

4.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

साहित्य का इतिहास-दर्शन, नलिन विलोचन शर्मा, सं. 2016, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल, डा. हरिचरण शर्मा, 2007, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर।

इतिहास और साहित्येतिहास, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, 1984, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ।

हिंदी साहित्य में युग निर्धारण, सुधा अग्रवाल साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।

हिंदी साहित्य का इतिहास-दर्शन, शिवकुमार मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया, दिल्ली।

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

(क) हिंदी साहित्येतिहास के परिप्रेक्ष्य में साहित्य की प्रमुख समस्याओं पर एक वृहद् निबंध लिखिए।

(ख) काल-विभाजन की समस्या से आप क्या समझते हैं ? हिंदी साहित्य के संदर्भ में काल-विभाजन पर विभिन्न विद्वानों के मतों का विश्लेषण कीजिए।

इकाई 5 हिन्दी साहित्य का आदिकालः उद्भव एव विकास

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 आदिकाल की अवधारण और सीमा निर्धारण
  5.3.1 आदि काल या वीरगाथा काल
  5.3.2 नामकरण वैविध्य
  5.3.3 आदिकालः सीमा निर्धारण
5.4 आदिकाल आधारभूत समाग्री
  5.4.1 आदिकाल की नव्य सामग्री
  5.4.2 आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएं
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 सहायक पाठ्य सामग्री
5.8 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम से सम्बंधित है। इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने हिन्दी साहित्येतिहास की सम्पूर्ण परम्परा एवं साहित्येतिहास की विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में आप हिन्दी साहित्य से प्रथम काल खण्ड आदिकाल के उद्भव एवं विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अंतर्गत आप यह भी जानेंगे की हिन्दी साहित्येतिहासकारों को आदिकाल से सम्बंधित कौन -कौन सी समस्याओं का सामना करना पड़ा है। आदिकालीन कविता के उदय की पृष्ठभूमि तथा आदिकालीन कविता के नामकरण तथा सीमांकन का अध्ययन भी इस इकाई में किया गया है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- काल निर्धारण की आधार सामग्री पर विद्वानों का मतान्तर क्यों रहा है, इसे समझ सकेंगे।
- आदिकाल की पृष्ठभूमि क्या थी, यह जान सकेंगे।
- आदिकालीन सामान्य प्रवृत्तियों को जान पायेंगे तथा साथ हि साथ यह भी जान सकेंगे कि आदिकाल के विकास का स्वरूप क्या है।
- विभिन्न साहित्येतिहासकारों के मत-मतान्तरों की समीक्षा कर सकेंगे।

5.3 आदिकाल की अवधारणा और सीमा निर्धारण

5.3.1 आदिकाल या वीरगाथा काल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा हिन्दी साहित्य के काल-विभाजन में प्रथम काल -खण्ड को वर्गीकृत करते हुए नाम दिया गया था - वीरगाथा काल (आदिकाल- सं0 1050-1350)। विकल्प रूप में उन्होंने वीरगाथा काल को आदिकाल भी कहा क्योंकि बारह आधार ग्रन्थों में से चार अपभ्रंश भाषा की रचनाएँ थी। उन्होंने बताया कि जयचन्द्र प्रकाश, जयमंयक जसचंद्रिका (भट्ट केदार और मधुकर कवि) सूचना (नोटिस) मात्र है। हम्मीर रम्सो (शारंगधर कवि) का आधार प्राकृत-पैगंलम् में आगत कुछ पद्य हैं और वह काव्य आधा ही प्राप्त है। विजयपाल रासो के सौ छन्द ही प्राप्त हुए है, इस प्रकार यह ग्रन्थ भी अधूरा और वीसलदेव रासो की भाँति प्रेमगाथा काव्य है। वीरगाथा नहीं। अमीर खुसरो की पहेलियाँ भी वीरगाथा के अंतर्गत ग्राह्य नहीं है। पृथ्वीराज रासों की प्रामाणिकता

जितनी संदिग्ध है उतनी ही परमाल रासो की क्योंकि वह लोक (श्रुत) काव्य आल्हा है। मूल पाठ का निर्धारण असंभव है।

आचार्य शुक्ल के पास जो अन्य सामग्री स्त्रोत उपलब्ध होते थे, वे उन्होनें धार्मिक एवं सांप्रदायिक मूलक बताए थे, पर परवर्ती शोध कार्यों से यह विदित होता है कि ये धार्मिक और सम्प्रदाय मूलक ग्रन्थ साहित्यिक उदारता से शून्य नहीं थे। तभी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था कि - धार्मिक प्रेरणा या आध्यत्मिक उपदेश होना काव्य का बाधक नहीं समझा जाना चाहिए अन्यथा हमें रामायण, महाभारत, भागवत एवं हिन्दी के रामचरित मानस, सूरसागर आदि साहित्यिक सौन्दर्य संवलित अनुपम ग्रंथ-रत्नों को भी साहित्य की परिधि से बाहर रखना पड़ जाएगा। (हिन्दी साहित्य का आदिकाल, प्रथम व्याख्यान,पृष्ठ 49)

साहित्य का इतिहास न तो इतिहास के वृत्ति प्रस्तुति का निरूपण है और न प्रशस्ति मूलक सम्वेदना। उसमें साहित्येतिहासकार के भीतर साहित्यकार की सम्वेदना का समाहार अनिवार्य है। तभी वह साहित्यिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों की संरचना से ही काल विशेष की संज्ञा प्राप्त कर सकता है।

5.3.2 नामकरण ववविध्य और आधार

हिन्दी साहित्य के इस आदिकाल विकल्प की उपेक्षा करते हुए रामचन्द्र शुक्ल से पूर्ववर्ती मिश्रबन्धु (मिश्रबन्धु विनोद) ने उसे प्रारम्भिक काल, महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उसे बीजवपन काल, रामकुमार वर्मा ने उसे संधिकाल एवं चारण काल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने वीरकाल एवं बच्चन सिहं ने अपभ्रंशकाल नाम दिया है । काल विभाजन और नामकरण प्रवृत्तिपरक होता है। यह आप समझ चुके हैं, पर यह भी समझना उचित होगा कि ये दो अलग प्रश्न नहीं है, मूलतः एक ही है। जिस प्रकार रचना की प्रवृत्ति काल-विभाजन का आधार है, उसी प्रकार वह नामकरण का भी महत्वपूर्ण आधार है। नामकरण के निर्मिति में तद्विषयक रचना कृतियों की बहुलता है और उन रचनाओं में प्रवृत्ति मूलक प्रतिशत निकालकर काल खण्ड विशेष का नामकरण किया जाता है। परिवर्ती हिन्दी साहित्येतिहाकारों में सभी एकमत से स्वीकार करते हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास सर्वमान्य है . कुछ मूल प्रश्नों को छोड़ कर शेष सम्पूर्ण ांचा लगभग सर्वमान्य है .

5.3.3 आदिकाल: सीमा निर्धारण

हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल पर विद्वानों में पर्याप्त मत-भेद है। इस के मूल में महत्वपूर्ण कारण अपभ्रंश भाषा की हिन्दी में स्वीकृति या हिन्दी से बहिष्कृति की मानसिकता है। पूर्व खण्ड के अध्ययन के बाद आप यह अवश्य ही जान गए हैं कि सम्पूर्ण भारतीय वाङमय में अपभ्रंश भाषा प्रचलित थी। उसमें कौन से परिवर्तनकारी बिंब कब आरंभ हुए इसको सहज रूप में कह पाना संभव नहीं है, किन्तु यह तो स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा में ये परविर्तन सहज ही उभरते गए है। वास्तव में

अपभ्रंश भाषा जब परिनिष्ठित और साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हुई, तब तक वह जनभाषा से दूर हो गई और उस अपभ्रंश से इतर जनभाषा से ही हिन्दी का विकास होता है। उस समय यह अपभ्रंश ही एक नई भाषा (या पुरानी हिन्दी) के रूप में विकसित हो रही थी। हिन्दी के आरंभिक रूप का परिचय बौद्ध तांत्रिकों की रचनाओं में मिलता है। तभी गुलेरी ने लिखा है कि "अपभ्रंश या प्राकृतभास हिन्दी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिकों और योगमार्गी बौद्धों की सांप्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है।"

जार्ज ग्रियर्सन आदिकाल को 'चारण काल' कहते हैं और इसका आरंभ 643 ई0 से मानते हैं जबकि चारण काव्य परम्परा का विकास तब नहीं हुआ था क्योंकि वह काल-खण्ड नाथों-सिद्धों का सर्जन काल था। चारण काल एवं साहित्य का आविर्भाव दसवीं शताब्दी के बाद ही होता है। इसलिए ग्रियर्सन के विचार त्याज्य है। मिश्रबंधुओं ने आदिकाल का नामकरण करते हुए प्रवृत्ति का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। डॉ.रामकुमार वर्मा ने इस काल खण्ड को 'संधिकाल' और 'चारण काल' कहा है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. वीरगाथाकाल नामकरण क्यों अस्वीकार है ?
2. आदिकाल के विकल्प का चयन क्यों आवश्यक समझा गया ?

5.4 आदिकाल की आधारभूत सामग्री

5.4.1 आदिकाल की नव्य सामग्री

अभी तक के अध्ययन के उपरान्त आज यह भली भाँति जान चुके हैं कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा आदिकाल के लिए गृहीत बारह पुस्तकों की विषय-सामग्री वीरगाथा काल के नाम की सार्थकता सिद्ध नहीं कर पाती कुछ मात्र नोटिस या सूचना मात्र थीं कुछ वीर गाथात्मक प्रवृत्तिमूलक नहीं थीं, कुछ अपूर्ण और प्रेमपरक थी। अतः विकल्प के रूप में आदिकाल को ही आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने समर्थन दिया है। इस प्रकार आदिकाल नामकरण के निर्धारण में आधारभूत सामग्री निम्नांकित है।

1.	स्वयंभू	-	पउम चरिउ (पद्म चरित-रामचरित) रिट्णेमि चरिउ (अरिष्टनेमि चरित)
2.	पुष्पदन्त	-	पाय कुमार चरिउ (नागकुमार चरित)
3.	हरिभद्र सूरि	-	णेमिनाथ चरिउ (नेमिनाथ चरित)
4.	धनपाल	-	भविष्यतकथा, करकंड चरिउ, जसहर चरिउ
5.	जोइन्दु	-	परमात्मा प्रकाश

6. रामसिंह	-	पाहुड़ दोहा
7. सरहपा	-	दोहाकोश
8. अद्दहमाण	-	संदेश रासक
9. हेमचन्द्र	-	प्राकृत व्याकरण (दोहा काव्य)
10. दलपति विजय	-	बीसलदेव रासो
11. चन्दबरदाई	-	पृथ्वीराज रासो
12. कुशल शर्मा	-	ोला मारूरा दूहा (लोककाव्य)
13. अज्ञात	-	वसंत विलास फागु
14. विद्यापति	-	कीर्तिलता, कीर्ति पताका
15. अमीर खुसरो	-	पहेलियां

5.4.2 आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाएं

अभी तक आप आदिकाल की उपलब्ध नव्य सामग्री से परिचित हो चुके हैं। इकाई के इस भाग में आप आदिकाल की प्रतिनिधि रचनाओं से परिचित हो सकेंगे। इतना तो आप जान ही चुके हैं कि इस युग में शौर्य युक्त प्रवृत्तियों ही नहीं थी अपितु अन्य अनेक प्रवृत्तियों भी एक साथ उभरी थीं। परिणाम स्वरूप वीररसात्मक काव्य धारा के साथ श्रंगार रस सिक्त रचनाओं का प्रणयन भी हुआ। लोक कथाओं पर आधारित प्रेमकथाएं भी लिखी गई। लौकिक काव्य (पहेली और मुकरी) की भी रचना हुई। यही नहीं इस काल खण्ड में अगर अपभ्रंश भाषा कृतियों प्राप्त हुई हैं तो ब्रज-राजस्थानी मिश्रित भाषा और मैथिली में साहित्य सर्जना हुई थी साथ ही साथ खड़ी बोली में रचनाएँ प्राप्त हुई हैं.

1. पृथ्वीराज रासो
2. बीसलदेव रास
3. ोल मारू रा देहा
4. विद्यापति काव्य
5. अमीर खुसरो की पहेलियाँ
6. प्राकृत व्याकरण
7. सन्देश रासक
8. भाविसत्त कहा
9. पाहुड़ दोहा

पृथ्वीराज रासो - रासोकाव्य परम्परा में अनेकशः रचनाएँ हुई हैं और इनमें स्वरूप वैविध्य भी हैं. पृथ्वीराज रासो आदिकाल की प्रतिनिधि कृति है। पृथ्वीराज रासो का रचयिता चन्द बरदाई

पृथ्वीराज चौहान का दरबारी कवि था तथा दरबारी काव्य परम्परा की प्रशस्ति मूलक रू ियों से भरे अपने आश्रय दाता के यशगान हेतु रासो की रचना की है।जैसा कि अभी संकेत किया जा चुका है कि पृथ्वीराज रासो प्रशस्ति काव्य है। कविचंदबरदाई ने अपने आश्रय दाता का प्रशस्ति परक वर्णन किया है तथा उसे ईश्वर तक कहा है और तत्कालीन राजनीति , धर्म,योग, कामशास्त्र, शकुन, नगर ,युद्ध ,सेना की सज्जा, विवाह, संगीत,नृत्य, फल,फूल, पशु,पक्षी, ऋतु-वर्णन, संयोग, वियोग, श्रंगार, बसंतोत्स्व इत्यादी सभी का वर्णन भारतीय काव्य शास्त्रीरय परम्परा के अनुरूप किया है। परिणामस्वरूप ऐतिहासिकता अनैतिहसिकता प्रामाणिकता अप्रमाणिकता के अनेक प्रश्नों के रहते हुए पृथ्वीराज रासो साहित्य और तत्कालीन समाज दोनों की चित्तवृत्तियों का प्रतिबिम्ब हैं ।पृथ्वीराज रासो के वर्ण्य-विषय पर विचार करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- पृथ्वीराज रासो ऐसी ही रस,भय,अलंकार, युद्धबद्ध कथा थी जिसका मुख्य विषय नायक की प्रेमलीला, कन्याहरण और शत्रु-पराजय था।

बीसलदव रास - काल खण्ड के नाम के विकल्प - आदिकाल- के चयन और वीरगाथाकाल नाम के व्याज्य के निकर्ष पर देखा जाए तो पृथ्वीराज रासो में जहाँ वीर एवं श्रृंगार की प्रधानता है वहीं वीसल देव रास मूलतः श्रृंगार रस प्रधान ;विशेषकर वियोग श्रृगांर काव्य है । इसके रचयिता नरपति नाल्ह है और रचनाकाल 1155 ईस्वी माना जाता है।

वीसलदेव रास एक विरह काव्य है। जिसमें वीसल देव की रानी का विरह वर्णन किया गया है . भोज परमार की पुत्री राजमती से विवाह के तुरन्त बाद राजमती की गर्वोक्ति सुनकर वीसलदेव उड़ीसा चला जाता है। बारह वर्ष तक राजमती वियोग की ज्वाला में जलती रहती है। इसके बाद राजमती अपने राज पुरोहित से अपने पति के लिए सन्देश भिजवाती है। जब तक राजा लौटता है तब तक राजमती अपने पिता के घर जा चुकी होती है। बीसलदेव उड़ीसा से लौटकर अपनी ससुराल जाकर अपनी पत्नी को घर ले आता है।

ढोला मारू रा दूहा - अभी तक आपने आदिकाल की दो महत्वपूर्ण कृतियों का परिचय प्राप्त कर लिया है जो अपभ्रंश भाषा से इतर आदिकाल की तत्कालीन भाषा प्रवाह का परिनिष्ठित भाषा रूप लेकर रची गई है जो राजस्थान एवं ब्रज भाषा के साथ विविध भाषाओं की शब्दावली से युक्त हैं . इस बार आप लोकाश्रित एवं तत्कालीन लोक भाषा काव्य का परिचय पायेंगे। यह ोला मारू रा दूहा नाम से प्रसिद्ध लोक गाथा काव्य है। लोक कथा या लोक गाथा का रचयिता व्यक्ति न होकर लोक ही होता हो और उसके पाठ में समयानुसार भिन्नता की सम्भवना होती है। ोला मारू रा दूहा का रचयिता कुशल शर्मा कहे जाते हैं तथा इसका रचना काल ग्याहरवीं शताब्दी है।

विद्यापति काव्य - विद्यापति हिन्दी और आदिकाल के प्रमुख कवि हैं चौदहवी-पंद्रहवी शताब्दी के मध्य विद्यापति तिरहुत के राजा कीर्ति सिंह के दरबारी कवि थे और उनकी शौर्यता का चित्रण ही

कवि ने अपनी कीर्तिलता नामक पुस्तक में किया है। दूसरी ऐसी ही प्रशस्ति कथा कीर्तिपताका में है। इन दोनों काव्यों की भाषा को उन्होंने अवहटठ् ,अपभ्रंशद्ध कहा है

अमीर खुसरो पहलियाँ - अमीर खुसरो आदिकाल के ऐसे प्रमुख कवि हैं जो अपने समय से आगे की खड़ी बोली के सूत्र-प्रसारक कहे जा सकते हैं। आचार्य रामचन्द्र के अनुसार उनका लेखन 1293 ई के आसपास आरम्भ हो गया था। उन्होंने तेरहवीं शताब्दी के आरंभ में दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली भाषा में कविता की। लेकिन आप यह भी जान लीजिए कि अमीर खुसरो ने ब्रजभाषा में भी कविता लेखन किया था पर उस पर खड़ी बोली का स्पष्ट प्रभाव था यथा-

उज्जवल बरन अधीन तन एक चित्र दो ध्यान।

देखत में साधु है निकट पाप की खान।।

खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग।

तन मोरो मन पीउ को दोउ भए एकरंग।।

गारी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।

चल खुसरो घर आपनै रैन भई यह देस ।।

अमीर खुसरो ने पहेलियों को देखकर ऐसा नहीं लगता कि ये आठ से आठ सौ से अधिक वर्ष पूर्व लिखी गई होंगी । यथा- एक थात मोती भरा सबके सिर आँधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे। मोती उससे एक न गिरे।

अमीर खुसरो अरबी फारसी,तुर्की,ब्रज और हिन्दी के विद्वान कवि थे। साथ ही उन्हें संस्कृत भाषा का भी थोड़ा ज्ञान था। सूचना के स्तर पर आपको बताया जा सकता है कि उन्होंने 99 पुस्तकें लिखी थी । लेकिन इनके बीस,बाईस ग्रन्थ ही प्राप्त होते हैं।

प्राकृत व्याकरण - आदिकाल के अपभ्रंश काव्य के रूप में अब आप ऐसी कृति का परिचय पाऐंगे जो दसवीं शताब्दी में रचित सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन के नाम से प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ है और उसके रचयिता हेमचन्द्र हैं। इस कृति में हेमचन्द्र ने संस्कृत,प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का समावेश किया है किन्तु विशेष बात यह है कि अपभ्रंश का उदाहरण देते हुए उन्होंने पूरा दोहा ही उद्धृत किया है परन्तु उनके रचयिताओं के विषय में कोई संकेत नहीं किया है हेमचन्द्र के इस प्राकृत व्याकरण को आदिकाल की निर्णायक कृतियों के रूप में उल्लेख किया जाना आपको सहज ही आश्चर्य में डाल सकता है क्योंकि यह शब्दानुशासन यानी व्याकरण की पुस्तक ही प्रतीत होती लेकिन व्याकरण कृति होते हुए भी इसमें प्रयुक्त दोहों का चयन हेमचन्द्र ने पूर्ववर्ती या तद्युगीन

रचनाकारों की रचनाओं से किया है। ये दोहे व्याकरण से अधिक तत्कालीन समय एवं परिवेश का यथार्थ प्रस्तुत करते हैं क्योंकि ये दोहे उस काल की लोक भावनाओं से परिपूर्ण है।

सन्दश रासक - संदेशरासक अहद्द्माण या अब्दुर्रहमान रचित खण्ड काव्य है। अहद्दमाण कबीर की भाँति जुलाहा परिवार से थे तथा मुल्तान निवासी थे। उन्होंन स्वयं लिखा है - मैं मलेच्छ देशवासी तंतुवाय भीर सेन का पुत्र हूँ। उनकी कृति सन्देश रासक जो एक सन्देश काव्य है . इसके रचना काल के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है अतः इसे ग्यारहवी से चौदहवीं के मध्य की रचना माना जाता है।सन्देश रासक वियोग, विरह, श्रृंगार की रचना है । इसकी विषय-वस्तु के सम्बन्ध में इतना कहा जा सकता है कि प्रिय के परेदश जाने और वहाँ से लौटने में विलम्ब होने के कारण प्रियतमा पत्नी-नायिका का हृदय विरहकातर हो उठता है। अहद्द्माण ने इस कृति के बीच-बीच में प्राकृत गाथाएं संजोयी हैं। इसमें विरहिणी नायिका एक पथिक से पति को सन्देश भिजवाती है । कवि ने दो सौ तेईस छन्दों में कथा प्रस्तुत करते हुए प्रत्येक छन्द को स्वयं में स्वतंत्र रखा है क्योंकि कवि को विरहाभिव्यक्ति का उल्लेख करना है कथा कहना मात्र उसका उद्देश्य नहीं है . सन्देश रासक तीन प्रक्रमों में विभाजित और 223 छन्दों में रचित ऐसा सन्देश काव्य है जिसका अध्ययन करके आप यह विधिवत् जान पायेंगे कि इसका प्रथम प्रक्रम मंगलाचरण, कवि का व्यक्तिगत परिचय , ग्रन्थ रचना का उद्देश्य तथा आत्मनिवेदन से अनुपूरित है। दूसरे प्रक्रम से मूल कथा आरंभ होती है पर कथा सूत्र इतना ही है कि विजय नगर की एक प्रोषितपतिका अपने प्रिय के वियोग में रोती हुई एक दिन राजमार्ग से जाते हुए एक बटोही को देखती है और दौड़कर उसे रोकती है। उसे जब यह पता चलता है कि वह बटोही साभांर से आ रहा है और स्तंभ तीर्थ को जा रहा है तो वह पथिक से निवेदन करती है कि अर्थलोभ के कारण उसका प्रिय उसे छोड़ कर स्तम्भ तीर्थ चला गया है इसीलिए कृपा करके मेरा सन्देश को ले जाओ पथिक को संदेश देकर नायिका ज्यों ही उसे विदा करती है कि दक्षिण दिशा से उसका प्रिय आता हुआ दिखाई देता है। तीसरे प्रक्रम में अब्दुर्रहमान कृतिका समापन करता है जिसे पढ़कर निश्चित आप जान पायेंगे कि नायिका का कार्य अचानक सिद्ध हो जाता है .उसी प्रकार पाठकों को भी यह अनुभव होता है कि कवि को कथा से कोई भी मतलब नहीं था उसका उद्देश्य साम्भर नगर के जीवन, पेड़-पौधों तथा ऋतु वर्णन के साथ प्रोषितपतिका की विरह भावना का वर्णन करना था .काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से सन्देश रासक अपभ्रंश साहित्य में विशेष स्थान रखता है।

भविस्यत्त कहा - जैन कवि धनपाल रचित भविस्यत्त कहा अपभ्रश में लिखित दसवीं शती की ऐसी काव्य कृति है जिसमें तीन प्रकार की कथाएँ बाईस संधियों में जुड़ी हुई है। अभी तक आप यही जानते रहे हैं कि जैन काव्य धार्मिक है और आचार्य शुक्ल ने उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन के निमित्त आधार ग्रंथ के रूप में गणनीय तक नहीं माना था। यद्यपि जैन साहित्य में धर्म से विलग साहित्यिक कृतियों का अभाव नहीं था। उन्ही में से एक कृति भविस्यत्त कहा है। यह वर्णन हृदयग्राही है जिसमें श्रृंगार एवं वीररस के साथ शान्त रस का परिपाक होता है।

आपके ज्ञानवर्द्धन के लिए यह उल्लेखनीय है कि कवि धनपाल का यह काव्य शुद्ध घरेलू ंग की कहानी पर आधारित है जिसमें दो विवाहों का दुःखद पक्ष उभरता है। कणिक पुत्र भविष्यदत्त की कथा अपने सौतेले भाई बंधुदत्त द्वारा कई बार छले जाने ,जिन महिमा ,जैन चिन्तन के कारण सुखद परिणति तक पहुंचती है। यह प्रमुख कथा चौदह सन्धियों तक विस्तार पाती है।

पाहुड़ दोहा - राजस्थान के रामसिंह द्वारा लिखित दो सो बाईस दोहो ,छन्दों में लिखित लघुकाव्य पाहुड़ दोहा का संपादन परवर्ती काल में हीरालाल जैन द्वारा किया गया है। उनके अनुसार जैनियों में पाहुड शब्द का प्रयोग किसी विजय के प्रतिपादन के लिए किया जाता है। अब आप यह जान लीजिए कि इस कृति का रचना काल में वास्तव में ऐसा युग था जिसमें प्रत्येक धर्म के भीतर इसके उदारमना चिन्तक कवि पैदा हुए थे जो अपने मत और समाज की रूि यों का विरोध करते हुए मानवता की सामान्य भावभूमि पर एक साथ खडे थे। इसका अन्य मतों से कोई विरोध नहीं था। वे सबके प्रति सहिष्णु थे और उनका विश्वास था कि सभी मत एक ही दिशा की ओर ले जाते हैं और एक ही परमतत्व को विविध नामो से पुकारते हैं।

बोध प्रश्न . 2

1. आदिकाल की आधारभूत सामग्री क्या है ? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

2. **सुमलित कीजिए**

पृथ्वीराज रासो	अब्दुर्रहमान
ोला मारू रा दूहा	धनपाल
वीसलदेव रास	हेमचन्द्र
विद्यापति का काव्य	रामसिंह
पहेलियाँ	कुशलशर्मा
प्राकृतव्याकरण	चंद्रबरदाई
सन्देशरासक	नरपति नाल्ह
भविस्यत्त कहा	विद्यापति
पाहुड़ दोहा	अमीर खुसरो

5.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप -

- हिंदी साहित्येतिहास के अंतर्गत काल-निर्धारण की प्रक्रिया को जान चुके होंगे
- आदिकाल की पृष्ठभूमि एवं उसकी सामान्य प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे
- आदिकाल के उद्भव एवं क्रमिक विकास को समझ चुके होंगे
- आदिकाल की प्रमुख पुस्तकों से परिचित हो चुके होंगे

5.6 शब्दावली

वैविध्य	-	विविधतापूर्ण , भिन्न-भिन्न
परवर्ती	-	बाद के समय का
वाङमय	-	साहित्य
आविर्भाव	-	पैदा होना
रस सिक्त	-	रस से भरा हुआ
इतर	-	अलग
सहिष्णु	-	उदार

5.7 उपयोगी पाठ्य सामग्री

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

(2) हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

(3) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ0 रामकुमार वर्मा,लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

(4) सांकृत्यायन, राहुल, हिन्दी काव्य-धारा, किताब महल, इलाहाबाद 1945

5.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. हिन्दी साहित्य के आदिकाल के उद्भव एवं विकास पर एक विस्तृत निबंध लिखिए
2. आदिकाल की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए आदिकाल की प्रमुख रचनाओं का परिचय दीजिए

इकाई 6 हिंदी साहित्य का आदिकाल : स्वरूप और प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 आदिकाल:अर्थ एवं स्वरूप
6.4 आदिकालीन परिस्थितियाँ
  6.4.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ
  6.4.2 धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ
  6.4.3 सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ
  6.4.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ
6.5 आदिकाल:प्रमुख प्रवृत्तियां
  6.5.1 धर्म संबंधी साहित्य
  6.5.2 सिद्ध काव्य
  6.5.3 नाथ काव्य
  6.5.4 जैन काव्य
  6.5.5 चारण काव्य
  6.5.6 लौकिक काव्य
6.6 आदिकालीन काव्य प्रक्रिया
6.7 सारांश
6.8 शब्दावली
6.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आप हिन्दी साहित्य के आदिकाल के उद्भव और विकास के संबंध अध्ययन कर चुके हैं। जिससे आप यह भी जान चुके हैं कि हिन्दी साहित्य का व्यवस्थित इतिहास लिखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने युगीन परिस्थितियों के संदर्भ में साहित्य के विकास क्रम की व्याख्या करते हुए साहित्येतिहास का काल विभाजन करते हुए प्रारंभिक काल का नाम वीरगाथा काल (आदिकाल) किया था और जनता की चित्तवृत्तियों के साथ जोड़कर नामकरण का प्रयास करते हुए आधार ग्रंथों या सामग्री के आधार पर अपना संशय भी व्यक्त किया था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी के संशय का निराकरण करते हुए उनके दृष्टिकोण के समानांतर अपना नवीन दृष्टिकोण स्थापित कर युगीन परिस्थितियों के सम्यक मूल्यांकन के पश्चात हिन्दी साहित्य के प्रथम काल को आदिकाल के नाम से अभिहित किया।

प्रस्तुत इकाई में आप हिन्दी साहित्य के प्रथम कालखण्ड आदिकाल के सम्बन्ध में विभिन्न अधिकारी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत निष्कर्षों के आधार पर किये गए विश्लेषणों का सार पढ़ेंगे . इस इकाई में आप आदिकाल के उद्भव एवं विकास , उस कालखंड की सम्पूर्ण प्रक्रिया का विस्तार से अध्ययन करेंगे

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप बता सकेंगे कि -

- आदिकाल का सामान्य अर्थ क्या है ?
- आदिकाल का स्वरूप क्या है ?
- आदिकाल की विभिन्न परिस्थितियाँ किस प्रकार आदिकाल का स्वरूप निर्माण करने में सहयोगी रही हैं।
- हिन्दी साहित्य के आदिकाल की प्रमुख प्रवृतियाँ एवं प्रक्रिया क्या रही हैं ?

6.3 आदिकाल : अर्थ एवं स्वरूप

अब तक के अध्ययन के पश्चात आप भली-भांति समझ चुके हैं कि हिन्दी साहित्य के आदिकाल का अर्थ साहित्य का प्रारंभिक काल ही है जिसे विभिन्न विद्वानों के मत-मतांतर के बाद आदिकाल के रूप में स्वीकार किया जा चुका है, यथा –

1.	जार्ज ग्रियर्सन	-	चारणकाल
2.	मिश्रबंधु	-	आरंभिक काल
3.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	-	आदिकाल

4.	राहुल सांकृत्यायन	-	सिद्ध सांमत युग
5.	महावरी प्रसाद द्विवेदी	-	बीज-वपन काल
6.	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	-	वीर काल
7.	रामकुमार वर्मा	-	संधिकाल-चारण काल
8.	गणपति चंद्र गुप्त	-	संक्रमण काल
9.	हरिश्चन्द्र वर्मा	-	प्रारंभिक काल

आज हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन स्वमान्य हो चुका है। अत: आप भी एक बार पुन: दुहरा लीजिए –

(क) आदिकाल	(दसवीं-चौदवीं शती)
(ख) पूर्वमध्यकाल	(चौदहवीं- सत्रहवीं शती)
(ग) उत्तर मध्य काल	(सत्रहवीं-उन्नीसवीं शती)
(घ) आधुनिक काल	(उन्नीसवीं – वर्तमान काल तक)

हिन्दी साहित्य के आदिकाल को यदि आप स्मरण कर पायें तो स्वयं यह अनुभव करेंगे कि उस समय राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अस्थिरता थी। आदिकाल की राजनीतिक अस्थिरता का सीधा प्रतिफलन वीरगाथाएं ही थी, क्योंकि भारतीय राजा आपस में लड़ते रहते थे विदेशी आक्रमण हो रहे थे या भारतीय राजाओं द्वारा अपने प्रतिपक्षी को पदावनत कराने के लिए भारत से वाह्य शासकों को आमंत्रण भी दिए जाते थे। देखा जाए तो भारतीय राजाओं का अधिकांश समय युद्ध क्षेत्र में ही बीतता था।

यही नहीं, आप यह भी पायेंगे कि बड़े भारतीय राज्यों को अपनी वरिष्ठता सिद्ध करने तथा प्रतिस्पर्धात्मक रूप में अपनी प्रशंसा और प्रशस्ति के विस्तार हेतु शायद यही एकमात्र उपाय रह गया था। उस आकांक्षा को उनके दरबारी कवियों ने भली प्रकार पहचाना था और देशी राजा दरबार में अनेकानेक अवसरों पर अपने आश्रय प्राप्त कवियों से विरुदावली (प्रशस्ति गायन) सुनने का सुख पाते थे। युद्धारंभ में उन्हीं आश्रय प्राप्त राजाओं की अपने प्राण देकर अपने आश्रयदाता के प्राणों की रक्षा के लिए प्रेरणा भी देते थे। पृथ्वीराज रासो में संयम्राव द्वारा घायल पृथ्वीराज की प्राणरक्षार्थ हेतु अपने घायल अंगों को काट-काटकर गिद्धों को खिलाने का उल्लेख चंद बरदाई द्वारा स्वामिभक्ति के व्यापक प्रभाव का संकेत करता है।

दरबारी कवि अथवा कवियों द्वारा जहां अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता और शौर्य का अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन भी व्यापक प्रवृत्ति थी वही वीर रस के संचरण के समानांतर श्रृंगार रस का व्यापक काव्यशास्त्रीय निरूपण करने और उस स्थिति में अपने-अपने आश्रयदाता के श्रृंगारिक

उत्प्रेरण का चित्रण ही उन कवियों का एकमात्र उद्देश्य था। लेकिन इनमें कई ऐसी गाथाएं भी है, जहां आश्रय प्राप्त दरबारी कवि केवल लेखनी का ही कमाल नहीं दिखाते थे, युद्ध क्षेत्र में वे तलवार का हस्त कौशल भी दिखाने में पीछे नहीं थे।

आपको यह भी जान लेना क्यों उचित होगा कि इस काल को वीर गाथा काल का नाम देना क्यों अनुपयुक्त था ? पिछली इकाई के अध्ययन में आप यह जान चुके हैं कि इस काल विशेष में वीसलदेवरास और विजयपालरासो जैसे काव्य भी उपलब्ध होते हैं जिनका विषय वीर गाथा परक नहीं है, अपितु प्रेमगाथा काव्य परक है, विजयपाल रासो अभी तक अपूर्ण है तथा वीसलदेवरास विरहकाव्य है। जिसे अब्दुल रहमान कृत **सन्देश रासक** की परम्परा की प्रतिनिधि कृति कहा जा सकता है। पिछली इकाई में आप यह भी पढ़ चुके हैं कि आदिकाल की आधार सामग्री में जहाँ अपभ्रंश भाषा की रचनाएं भी सम्मिलित हैं, वही विद्यापति पदावली की भाषा मैथिली है और अमीर खुसरो की भाषा खड़ी बोली हिन्दी का प्रारंभिक रूप तो लिए ही है, उसके साथ उक्त कालखण्ड में **ढोला मारु रा दूहा** जैसा लोककाव्य भी रचा गया था। यद्यपि उसे आदिकाल की आधार सामग्री के रूप में अग्राहय मान लिया गया था। आप पिछली इकाई में यह भी भली प्रकार जान चुके हैं कि उल्लिखित अपभ्रंश की कतिपय महत्वपूर्ण काव्य रचनाओं को भी इस काल के नाम निर्धारण के निमित्त ग्रहण किया जाना एक महत्त्वपूर्ण कदम है । जिनमें अपभ्रंश भाषा में रचित जैन संतों द्वारा चरित काव्य जसहर चरिउ , करकंडु चरिउ , णायकुमार चरित (नागकुमार चरित), पउम चरिउ (पद्म चरित), पाहुडा दोहा आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार आचार्य शुक्ल द्वारा धार्मिक अथवा संप्रदायगत रचनाएं कहकर नाथो-सिद्धों और बौद्ध सम्प्रदायों की कृतियाँ भी स्वीकार नहीं की थी। कालान्तर में साहित्येतिहासकारों ने इन रचनाओं को तत्कालीन समाज की चित्तवृत्तियों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति माना है।

6.4 आदिकालीन परिस्थितियाँ

आदिकालीन परिस्थितियों की चर्चा करने से पूर्व आपको आदिकाल के स्वरूप को समझने का संकेत ऊपर किया जा चुका है। जिससे आप भलीभॉति जान चुके हैं कि आदिकालीन साहित्य सर्जना के लिए किस प्रकार की परिस्थितियाँ थीं जो तत्कालीन दरबारी कवियों को काव्य रचना के लिए बाध्य करती थी। आपके समक्ष इन परिस्थितियों की निमांकित चार वर्गों में रखा जा रहा है।

6.4.1 राजनीतिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य का यह प्रथम काल खण्ड तत्कालीन राजनीतिक अस्थिरता एवं अव्यवस्था, गृह-कलह और पराजय और आंतरिक हताशा का कालखण्ड था। दूसरी ओर विदेशी आक्रमण राज्यों की स्वतंत्रता पर हावी हो रहे थे। सम्राट हर्ष वर्धन (सन् 606-643) के निधन के बाद उत्तर भारत में केन्द्रीय शक्ति का क्षय और राजसत्ता अस्थिर हो गई थी, दक्षिण भारत में राष्ट्रकूटों का साम्राज्य

स्थापित हो चुका था। मुहम्मद बिन कासिम के सिंध पर आक्रमण पर वहां का राजा दाहिर की पराजय का कारण वहां के जाट और ब्राहमण राजाओं के सहयोग का अभाव रहा है। आप इतिहास पर दृष्टि डालें तो इस कालखण्ड में अनेक छोटे-छाटे राज वंश-गुर्जर, तोमर, राठौर, चौहान, चालुक्य, चंदेल, परमार, गाहड़वार आदि सत्ता प्राप्ति के लिए पारस्परिक युद्ध, गृह कलह और विघटन के कारण सामन्तवाद को प्रोत्साहित कर रहे थे तथा देश एकतंत्र-व्यवस्था में न रहकर अनेक राज्यों में बट गया था। राष्ट्रीयता या देशभक्ति की भावना सर्वथा लुप्त थी। राज-भक्ति, आश्रयदाता का शौर्य-गान एवं प्रशंसा तथा अनुचित कार्यों के समर्थन का प्रचलन बढ़ चला था।

सन् 800 से 1020 ई० तक के पाल शासकों ने गजनवी के तुर्कों का सामाना केवल व्यक्तिगत वीरता, शौर्य, आत्मबल और देश-हित में प्राणोत्सर्ग करने के लिए ही रहा, सामूहिक रूप से गजनी के आक्रमणों से लोहा लेना नहीं। आपसी फूट, कलह तथा विलासिता के कारण भारतीय शक्ति ध्वस्त होती रही और इस्लाम का आगमन, उनकी बढ़ती सत्ता-भूख के सामने दोषपूर्ण राजनीति अपनी चेतना खो चुकी थी। दसवीं से 1026 की अवधि में महमूद गजनवी ने सत्रह बार भारत पर आक्रमण क्रिया और अनेक भारतीय शक्तिशाली राजपूतों को अपने बीच कर लिया। मोहम्मद गौरी की मृत्यु के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक ने भारत के पूरे हिन्दी भाषी क्षेत्र पर राज्य स्थापित किया।

अधिकांश आदिकालीन साहित्य में हिंदु शासकों के या तो पारस्परिक युद्धों का या फिर तुर्क-अफगानों से किए गए युद्धों अव्यवस्थाओं, लूट-मार तथा भारतीय राजतंत्र के पराजय के वातावरण में दरबारी कवियों द्वारा अपने आश्रयदाताओं के यश-प्रशस्त शौर्यका गान उपलब्ध होता है लेकिन उससे अधिक पराजित हिन्दुओं को जैन एवं बौद्ध धर्म से संबंधित साहित्य के माध्यम से चित्रित किया गया है। चंद बरदाई, विद्यापति, अमीर खुसरो, स्वयंभू, पुष्पदंत, हरिभ्रदसूरि, रामसिंह के अतिरिक्त कण्हपा सरहपा ने तत्कालीन परिवेश को शब्द दिए हैं।

6.4.2 धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य के आदिकाल धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी अस्थिर, एक दूसरे को प्रभावित करने तथा परिस्परिक आदान-प्रदान का था। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आठवीं से लेकर बारहवीं शती तक भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्त लगभग अपरिवर्तनीय हैं, किन्तु उनका बाह्य आकार परिवर्तित होता हुआ प्रतीत होता है। आपके समक्ष धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का पृथक रूप से उल्लेख अधिक उपयुक्त है।

धार्मिक परिस्थितियां :- ईसा की सातवीं शती यानी हर्षवर्धन के समय में ब्राहमण और बौद्ध धर्मों में समान आदर भाव था। हर्ष स्वयं बौद्ध मतावलंबी थे और बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार काफी मात्रा में था फिर भी उदार एवं धार्मिक सहिष्णुता के परिणाम स्वरूप विभिन्न धर्मों में पारस्परिक सौहार्द्र था तथा समन्वय की प्रवृत्ति की झलक भी मिलती थी। हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरांत केन्द्रीय सत्ता के

अभाव से देश खण्ड राज्यों में विभाजन हुआ तो धार्मिक अराजकता के विस्तार के साथ वैदिक विधि-विधान और कर्मकाण्ड के चलते ब्राहमण और बौद्ध धर्म संप्रदाय अपनी पवित्रता खो चुके थे। आम जन सिद्धियों की दिग्भ्रांतता का शिकार हो रहा था। हीनयान-वज्रयान, महायान, सहजयान में बिखरा बौद्ध धर्म तंद्ध-मंत्र, हठयोग जैसे पंचमकारों (मांस, मैथुन, मत्स्य, मद्य तथा मुद्रा) को भी विशेष स्थान प्राप्त होता जा रहा था। इनके बिना साधना अधूरी मानी जाती थी। वास्तव में बौद्धमत वाममार्गी हो चुका था। दूसरी ओर धर्म-नियम संयम और हठयोग द्वारा साधना के कठिन मार्ग से बढ़ने वाले नाथसिद्ध के रूप में जाने गए। डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने लिखा है- ''इस काल के हिन्दी प्रदेश और उसकी सीमाओं के आस-पास जैन धर्म, बौद्ध धर्म के वज्रयानी रूप, तांत्रिक मत, रसेश्वर-साधना, उमा-महेश्वर-योग साधना, सोम सिद्धांत, वामाचार, सिद्ध और नाथ-पंथ शैवमत, वैष्णवमत, शाक्त मत आदि विभिन्न मत प्रचलित थे। जैन-वैष्णव, शैव , शक्ति आदि संप्रदायों की प्रतिद्वन्द्विता राष्ट्रीय शक्ति का ह्रास कर रही थी। भीतरी विद्वेष से जर्जर देश में इतिहास से टकराने वाला संकल्प न रह गय। दुर्भाग्यवश ये धर्म मनुष्य की सामाजिक और राजनीतिक मुक्ति के साधन बनने के स्थान पर विच्छेद-भाव उत्पन्न करने के साधन बने।

काल में वैदिक,बौद्ध एवं जैन धर्मसाथ-साथ प्रचलित थे और वैदिक धर्मका कभी-कभी बौद्ध या जैन धर्म से संघर्ष भी हो जाता था, पर धीरे-धीरे वैदिक या ब्रहमण धर्म बल पकड़ता गया तथा बौद्ध एवं जैन धर्म कमजोर पड़ते गए। इसका प्रमुख कारण यह है कि युद्धों के उस काल में अहिंसा पर आधारित बौद्ध-जैन धर्म सीमाओं की मनोवृत्ति के अनुकूल नहीं हो सकते थे, इसलिए शैव मत का प्रभाव भी बढ़ता गया। निस्संदेह इस काल खंड में अनेक मत-मतांतरों से परिपूर्ण प्रतिद्वन्द्वी धार्मिकदल, इस्लाम की बढ़ती शक्ति, ब्राहमणविरोध , वैदिक और बौद्ध धर्मो का अत: संघर्ष तथा सांप्रदायिक विद्वेष कई रूपों में देखने को मिलता है।

सांस्कृतिक परिस्थितियाँ – सम्राट हर्षवर्धन के समय तक भारत सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय दृष्टि से सम्पन्न और संगठित था। उस समय की सांस्कृतिक उत्वर्ष को संगीत, चित्र , मूर्ति तथा स्थापत्य आदि कलाओं के रूप में आंका जा सकता था। जातीय एवं राष्ट्रीय गौरव का यह भाव सर्वत्र देखा जा सकता था। हिन्दी साहित्य यह काल दो संस्कृतियों के संक्रमण एवं ह्रास-विकास का काल था जिसके एक छोर पर भारतीय संस्कृति का उत्कर्ष था तो दूसरे छोर पर आदिकाल के समापन काल में मुस्लिम संस्कृति की संस्थापना थी। तभी तो कहा गया है कि – भारत में मुस्लिम संस्कृति के समय में दीर्घ काल से चली आती हुई समन्वय की एक व्यापक प्रक्रिया पूर्णता को पहुँच रही थी। (हिंदी साहित्य का इतिहास-सं. नगेन्द्र,)

ईसा की ग्यारवीं शती में इस्लामिक संस्कृति के प्रवेश से भारत की दोनों संस्कृतियों (हिंदू-मुस्लिम) का एक दूसरे से प्रभावित होना सहज-स्वाभाविक था। प्रारंभ में ये दोनों संस्कृतियाँ परस्पर प्रतिद्वन्द्वी के रूप में आमने-सामने थी, पर सत्ता में बढ़ते मस्लिम प्रभाव के कारण मुस्लिम संस्कृति एवं कला का प्रभाव भारतीय जन-जीवन पर पड़ने लगा था। इस्लाम मूर्ति-विरोध सर्वविदित है।

लेकिन इसमें दो मत नहीं है कि दोनों संस्कृतियाँ परस्पर किसी न किसी रूप में एक समान प्रभाव ग्रहण करती है।

6.4.3 सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य के आदिकाल से समाज विभिन्न वर्णों तथा जातियों में विभाजित तथा असंगठित समाज-व्यवस्था का शिकार था। भारतीय राजसत्ता समाज के हित को भूलकर आपसी फूट और झगड़ों में डूबी थी । यद्यपि वीसल देव व राणा सांगा जैसे राष्ट्रीय भावना युक्त क्षत्रिय भी इस समाज का अंग थे, पर अधिसंख्य लोगों में इस भावना का अभाव था। आप इसे दो स्तर पर भली प्रकार समझ सकते हैं –

सामाजिक परिस्थितियाँ - आदिकाल में समाजिक रीतिरिवाजों और विधि विधान की कट्टरता का प्रचलन पहले से ही विद्यमान था तथा जनता शासनऔर धर्म दोनों ही ओर से निराश्रित और निरतंर युद्धों के झेलने के कारण बुरी तरह त्रस्त थी। ईश्वर के प्रति अनास्था का भाव विकसित हो रहा था। समाज का उच्चवर्ण भोग विलासिता में लीन था और निर्धन या निम्न वर्ण शोषण का शिकार था। नारी भोग की वस्तु रह गई थी। सती प्रथा तथा अंधविश्वासों के अभिशाप से पूरा समाज ग्रस्त था। साधु-सन्यासी शाप और वरदानों के बीच जनसामान्य पर आतंक जमाए थे। आदिकालीन कवियों ने अपने परिवेश और वातावरण से ही अपनी काव्य रचनाओं की सामग्री जुटायी है।

सामाजिक संकीर्णता अपने अनेक प्रतिबन्धों के रूप में आम व्यक्ति को सता रही थी। तभी लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि ,इस काल के समाज में विभिन्न वर्गों के विविध प्रकार के उत्सव और वस्त्राभूषणों के प्रति प्रेम प्रचलित था। अरिवेट, मज्ज युद्ध, घुड़सवारी, द्यूत-क्रीड़ा, संगीत-नृत्य आदि मनोरंजन के साधन थे और कवियों का विशेष आदर था....शक्ति और शैवों को छोड़कर शेष लोग खान-पान में सात्त्विकता बरतते थे। (हिन्दी साहित्य का इतिहास,)

आर्थिक परिस्थितियाँ – आदिकाल के इस काल खण्ड में समाज अपनी आर्थिक परिस्थितियों से भी जूझ रहा था, आर्थिक परिस्थितियों की अस्थिरता का मूल कारण तद्युगीन युद्ध ही कहे जा सकते हैं। विदेशी आक्रांताओं का मुख्य उद्देश्य भारतीय संपत्ति को क्षति पहुँचाना या फिर धन, स्वर्ण आदि लूट कर अपने देश ले जाना था. यही नहीं, समय-समय पर यवन आक्रमणकारी देश में प्रविष्ट होकर हमारे खेतों में खड़ी फसलों को रौंद कर, जलाकर नष्ट कर देते थे। नगरों, गांवों , मंदिरों तथा संग्रहांलयों को तोड़कर लूट कर के हमारी ज्ञान संपदा भी नष्ट करते थे। लगातार युद्धों एवं आक्रमणों का दुष्परिणाम अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक व्यवस्था पर व्यापक रूप से पड़ा । जनता निर्धनता और लूटमार से आक्रांत एवं त्रस्त हो चुकी थी और उसको जीवन यापन के साधन जुटाना भी दुर्लभ हो गया था। साहूकारों और सामंत आम निर्धन जनता को ऋण ग्रस्त कर बेहाल किए हुए थे। सत्ता जनता के प्रति गहरी निरपेक्ष थी वह उनके कल्याण और आर्थिक उद्धार करने के स्थान पर उनका शोषण ही कर रही थी। यह स्पष्ट है कि यह काल खण्ड सामाजिक एवं आर्थिक अराजकता का ही

था। जमींदार, सेना नायक, शासक जागरूक थे. कर्तव्य-पालन के प्रति उदास थे। अत: आर्थिक अनुदारता के सत्ता पक्ष के इस स्वरूप से जनता निर्धन, आश्रयहीन एवं कमजोरअर्थ साधनों के कारण उच्च वर्गीय शोषण का भी शिकार थी।

6.4.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ

त्रिभाषात्मक साहित्यिक सर्जना - आदिकालीन हिन्दी साहित्य का विवेचन करते हुए आपके सामने यह प्रस्तुत किया जा चुका है कि तत्कालीन समय में परंपरागत संस्कृत साहित्य धारा में प्राकृत और अपभ्रंश की साहित्य सर्जना मूलकधारणा और जुड़ गई थी। इसीलिए आदिकाल की साहित्यिक परिस्थिति, साहित्य एवं भाषा के स्वरूप तथा स्थिति विशेष के अध्ययन की अपेक्षा रखती है। आदिकाल की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थितियों की अस्थिरता और अराजकताका अध्ययन अभी तक आप कर ही चुके हैं। अब आप आदिकालीन साहित्य एवं भाषा की परिस्थितियाँ कैसी थीं यह भी जान लीजिए। नवीं से ग्यारहवी शती ईस्वी तक कन्नौज और कश्मीर संस्कृत साहित्य के मुख्य केन्द्र थे और इस काल खण्ड में एक ओर संस्कृत साहित्य धारा के आनन्दवर्धन, अमिनव गुप्त, कुन्तक, क्षेमेन्द्र, भोजदेव, मम्मट, राजशेखर तथा विश्वनाथ जैसे काव्यशास्त्री तो दूसरी ओर शंकर, कुमारिल भट्ट, एवं रामानुज जैसे दर्शनिकों और भवभूति , श्री हर्ष ,जयदेव जैसे साहित्यकारों का सर्जनात्मक सहयोग था ।

इसी काल खण्ड में प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं की साहित्य सर्जना भी हो रही थी। स्वयंभू, पुष्पदंत तथा धनपाल जैसे जैन कवियों ने अपनी प्राकृत एवं अपभ्रंश तथा पुरानी हिन्दी की मिश्रित रचनाएं भी प्रस्तुत की थीं। सरहपा, शबरपा, कणहपा, गोरखनाथ, गोपीचंद जैसे नाथ सिद्धों ने अपभ्रंश तथा लोकभाषा हिंदी में अपनी रचनाएं प्रस्तुत की। राजशेखर की कर्पूरमंजरी, अमरूक का अमरूशतक तथा हाल की आर्यासप्तशती, अपभ्रंश की उत्तम कृतियों इसी कालखण्ड की देन हैं। वास्तव में यह काल मीमांसा-साहित्य सर्जना की प्रवृत्तियों का रहा हैं। आप ये जान लें कि संस्कृत भाषी साहित्य तत्कालीन राज प्रवृत्ति सूचक है तो प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य धर्म ग्रंथ मूलक भाषा की प्रवृत्ति का परिचालक है और हिंदी जन मानस की प्रवृत्ति की रचनात्मक वृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है।

आदिकालीन साहित्य का विशिष्ट स्वरूप –सामान्यत: इसमें अतिश्योक्ति ही है कि आदिकाल वीरगाथात्मक काव्य में आश्रयदाताओं के शौर्य गान, प्रशस्ति प्रकाशन और अतिरंजना पूर्ण अमिसिकतताका काल है। भावगत इकाई में यह अध्ययन कर चुके हैं कि इसी भ्रम के कारण इस काल खण्ड को वीरगाथा काल कहने के लिए आचार्य शुक्ल को दुविधा में डाला था। अब आप अध्ययन कर यह अवश्य ही अनुभव करेंगे कि दसवीं से चौदहवीं शताब्दी ईस्वीं का यह काल खण्ड साहित्य और भाषा की दृष्टि से विकास का काल था। युद्धों की निरंतरता और वैदेशिक आक्रांताओं द्वारा इस देश को तहस-नहस करने के बीच भी आश्रयदाताओं की साहित्यिक अभिरूचि की

सशक्तता के परिणाम स्वरूप इस काल में निम्न प्रकार से भाषा एवं साहित्य के स्वरुप का अववाहन किया जा सकता है-

आदिकालीन भाषा एवं साहित्य

क .संस्कृत साहित्य 1 . वैदिक संस्कृत साहित्य 2 .लौकिक संस्कृत साहित्य

ख . प्राकृत साहित्य 1 . संस्कृतेतर साहित्य 2. अपभ्रंश साहित्य 3 . देशभाषा साहित्य

ग . धर्म संप्रदाय गत साहित्य - स्फुट साहित्य **,** बौद्ध साहित्य , जैन साहित्य

घ . देश भाषा साहित्य

विषम परिस्थितियों में भी आदिकाल में वीरगाथा, भक्ति एवं श्रंगार के साथ धार्मिक, लौकिक और नीतिपरक आध्यात्मिक रचनाएं लिखी गई हैं। संकेत रूप में आप पुन: जान लीजिए कि इस युग और परिवेश में चंद बरदाई,विद्यापति, अमीर खुसरों, स्वयंभू, पुष्पदंत, रामसिंह, सरहपा, कण्हपा, गोरखनाथ, अब्दुर्रहमान, नरपति नाल्ह तथा जगनिक आदि ने राष्ट्रीय भावना से दूर रहकर आश्रयदाताओं के प्रशस्ति-गायन, शौर्य-वर्णन की अतिशयता, ऐतिहासिक विसंगतियों के बीच विकसित काव्यधारा में भक्ति, नीति और प्रकृति का चित्रण भी किया गया है। उक्त साहित्य सर्जना के आधार पर आचार्य शुक्ल का यह कथन अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है – ''आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अत: कारण-स्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है (रामचंद्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, भूमिका,)

बोध प्रश्न 1 :-

1. आदिकाल की राजनीतिक परिस्थितियाँ क्या थी ?
2. आदिकालीन धार्मिकएवं सांस्कृतिक परिस्थितियों की समीक्षा कीजिए।
3. आदिकाल की साहित्यिक परिस्थितियों का विवेचन कीजिए।
4. आदिकालीन सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ कैसी है ?

6.5 आदिकाल : प्रमुख प्रकृतियाँ

आप अभी आदिकालीन परिस्थितियों का अध्ययन कर चुके हैं और निश्चित ही आपके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि इन परिस्थितियों में किस प्रकार के साहित्य की रचना हुई। अत: इकाई के इस अंश में आपको इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियों के विषय में विस्तृत जानकारी देंगे। आपकी सुविधा के लिए प्रमुख आदिकालीन प्रवृत्तियों का वर्गीकरण तीन स्तर पर किया जा रहा है- धर्म संबंधी साहित्य, चारण काव्य और लौकिक साहित्य। अब क्रमश: हम इन्हीं बिन्दुओं के आधार पर आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख करेंगे -

6.5.1 धर्म संबंधी साहित्य

धर्म संबंधी साहित्य के अंतर्गत उस साहित्य का उल्लेख किया जा रहा है जो किसी मत विशेष के प्रचार-प्रसार करने हेतु लिखा गया जैसे – सिद्ध संप्रदाय, नाथ संप्रदाय, जैन संप्रदाय आदि। यद्यपि आचार्य शुक्ल ने इन्हें साहित्यिक रचनाओं के रूप में स्वीकार नहीं किया था। लेकिन आप जान सकते हैं कि ये धर्मसंबंधी रचनाएं केवल धर्म प्रचार मात्र नहीं थी, अपितु इन्हें उत्तम काव्य की कोटि में रखा जा सकता है । इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि , इधर जैन, अपभ्रंश चरित काव्यों की जो विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है, वह सिर्फ धार्मिक संप्रदाय के मुहर लगने मात्र से अलग कर दी जाने योग्य नहीं है, अपभ्रंश की कई रचनाएं, जो मूलत: जैन धर्म भावना से प्रेरित होकर लिखी गई हैं, निस्संदेह उत्तम काव्य हैं। यह बात बौद्ध सिद्धों की कुछ रचनाओं के बारे में भी कहीं जा सकती हैं। (हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग 1)

6.5.2 सिद्ध काव्य

सिद्ध संप्रदाय को बौद्ध धर्म की परंपरा का हिन्दू धर्म से प्रभावित एवं धार्मिक आन्दोलन माना जाता है। तांत्रिक क्रियाओं में आस्था तथा मंत्र द्वारा सिद्धि चाहने के कारण इन्हें सिद्ध कहा जाने लगा। इन सिद्धों की संख्या 84 मानी गई है। राहुल सांकृत्यायन ने तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है, जिनमें सरहया, शबरपा , कण्हपा, लुइपा, डोम्मिपा, कुक्कुरिपा आदि प्रमुख हैं। केवल चौदह सिद्धों की रचनाएं ही अभी तक उपलब्ध हैं ।

सिद्धों द्वारा जनभाषा में लिखित साहित्य को सिद्ध साहित्य कहा जाता है। यह साहित्य वस्तुत: बौद्धधर्म के वज्रयान का प्रचार करने हेतु रचा गया। अनुमानत: इस साहित्य का रचनाकाल सातवीं से तेरहवीं शती के मध्य है। इन सिद्ध कवियों की रचनाएं दोहाकोश और चर्यापद के रूप में उपलब्ध होती है सिद्ध साहित्य में स्वाभाविक सुख-भोगों की स्वीकृति और गृहस्थ जीवन पर बल दिया गया है तथा पाखण्ड एवं बाह्य अनुष्ठानों का विरोध तथा स्व-शरीर में परमात्मा का निवास माना है। यही नहीं गुरू का विशेष महत्व प्रतिपादित किया गया है। आचार्य द्विवेदी का कथन है कि

इन रचनाओं में प्रधान रूप से नैराश्य भावना, काया योग, सहज शून्य की साधना और भिन्न प्रकार की समाधि आदि अन्य अवस्थाओं का वर्णन है।

यद्यपि सिद्ध सम्प्रदाय का अभीष्ट काव्य लेखन नहीं था। वो तो केवल अपने विचारों एवं सिद्धांतों की अभिव्यक्ति के लिए जनभाषा में साहित्य रचते थे और उनकी भाषा शैली में जो अक्खड़पन और प्रतीकात्मकता है उसकी प्रभाव परवर्ती हिंदी साहित्य पर पड़ा है। आप देखेंगे कि वे सिद्ध कवि अपनी बात सीधे ंग से न कहकर तंत्र-मंत्र के अंतर्गत प्रयोग किए जाने वाले विशिष्ट शब्दों के माध्यम से ही प्रकट करते थे। राहुल सांकृत्यायन ने परवर्ती हिंदी कवियों पर उनके प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहा है कि ''यही कवि हिंदी काव्य धारा के प्रथम सृष्टा थे। नये-नये छन्दों की सृष्टि करना इनका ही कार्य था उन्होंने दोहा, सोरणा, चौपाई, छप्पय आदि कई छन्दों की सृष्टि की जिन्हें हिंदी कवियों ने बराबर अपनाया है। (हिंदी काव्य धारा, पृ०-36)

सरहपा या राहुलभ्रद का समय 769 ई० के लगभग माना जाता है। इनके ग्रंथों की संख्या 32 है। जिनमें कायावाश, दोहाकाश, सरहपाद गीतिका को प्रमुख माना जाता है। वे कहते हैं –

पडित सअल सत्य वक्टवाण्अ।

देहहिं बुद्ध बसन्त या जाणअ।।

अर्थात् पडित सभी शास्त्रों का व्याख्यान करते हैं, किन्तु देह बसने वाले बुद्ध (ब्रहम) को नहीं जानते। सरहपा के अतिरिक्त शबरपा ,लुइप , कण्इपा आदि हैं। जिनके ग्रंथों की अनुमानित: संख्या 16 है । कण्हपा की रचनाओं की संख्या 74 मानी जाती है, पर कण्हपा गीतिका तथा दोहाकांश प्रमुख है। आप जान पायेंगे कि इन ग्रंथों में दर्शन तथा तम-विद्या है। उन्होंने मनुष्य के जीवन का मूल उद्देश्य सहजानंद की प्राप्ति को माना है,जो मात्र मोह के त्यागने पर शरीर के अंदर ही प्राप्य है जिसका मार्गदर्शक गुरू है। यही साधना मार्ग परवर्ती कवियों के लिए भी मार्ग दर्शक है।

6.5.3 नाथ काव्य

नाथ संप्रदाय को सिद्धों की परंपरा का विकसित रूप माना जाता है। नाथ संप्रदाय में नाथ शब्द का अर्थ मुक्ति देनेवाला है। यह मुक्ति सांसारिक आकर्षण एवं भाग विलास से होती है तथा निवृत्ति मार्ग का दर्शक गुरू होता है। दीक्षा के उपरांत गुरू वैराग्य की शिक्षा देकर इन्द्रिय निग्रह, कुण्डलिनी जागरण, प्राण-साधना, नारी विरति के साथ हठयोग की प्रक्रिया अपनाता है। इनके साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक सूर्य, चंद्र, गगन, कमल आदि है जो सूर्य 'ह' और चन्द्र 'ठ' के प्रतीक है और इनका मिलन हठ योग कहा गया है। आचार्य शुक्ल ने इन ग्रंथों की भाषा देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश या पुरानी हिंदी मानी है।

नाथ योगियों की संख्या नौ मानी गई है – नागार्जुन, जडभरत, हरिशचन्द्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरखनाथ, चर्पटनाथ, जलंधरनाथ और मलयार्जुन है। इस संप्रदाय का आचार्य गोरखनाथ

को माना जाता है तथा मत्स्येन्द्रनाथ उनके गुरू थे। गोरखनाथ के ग्रंथों की संख्या चालीस मानी जाती है, परन्तु हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा पीताम्बरदत्त बडथ्वाल आदि ने प्रमुखत: चार ग्रंथ ही माने हैं – सदी, पद, प्राण-संकल्पी, शिष्यादर्शन । इनमें संयम, साधना तथा ब्रहमचर्य पर जोर दिया गया है तथा गुरू की महत्ता का बखान किया गया है। गोरख नाथ कहते हैं –

जाणि के अजाणि होय बात तूं ले पशाणि।

चेलेहोइआं लाभ होइगा गुद होइआं हागि।।

अर्थात् तू जानबूझकर अनजान मत बन और यह बात पहचान ले या जान ले कि शिष्य बनने में लाभ ही लाभ है और गुरू बनने में हानि है।

नाथ योगियों ने आचरण-शुद्धि और चरित क्षमता पर बहुत जोर दिया है। उनके योग में संयम और सदाचार का बड़ा महत्व था। कबीर तथा अन्य भक्ति कालीन संत कवियों के साहित्य में प्राप्त कुंडलिनी जागृत करने की क्रिया का आधार भी नाथ योगियों का हठयोग है। आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि नाथपंथ ने ही अनजाने परवर्ती संतों के लिए श्रृद्धाचारण प्रधान पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। (हिंदी साहित्य की भूमिका)

6.5.4 जन काव्य

जैन का अर्थ होता है सांसारिक विषय वासनाओं पर विजय प्राप्त करने वाला। यह शब्द 'जिन' से बना है यानी विजय पाने वाला। जो सांसारिक आकर्षण पर प्राप्त की जाती है। बौद्ध संप्रदाय से पूर्व ही जैन संप्रदाय का अम्युदय हो चुका था और उसके प्रवर्त्तक भी महावीर स्वामी थे जिनका अविर्भाव भी महात्मा बुद्ध से पहले आया था। जैन संप्रदाय में दया, करूणा, त्याग तथा अहिंसा, इंद्रिया निग्रह, सहिष्णुता, व्रतोपवास आदि को महत्व दिया गया है। जैन कवियों एवं मुनियों ने अपने धर्म-प्रचार के लिए लोकभाषा ही अपनाई जो अपभ्रंश से प्रभावित हिंदी है। इनकी अधिसंख्य रचनाएँ धार्मिक हैं जिनमें जैन संप्रदाय की नीतियों, अध्यात्म और आगमों का विवेचन है और कुछ चरितकाव्य हैं। इनकी कृतियाँ रास, फागु, चरित, चउपई आदि काव्यरूपों में उपलब्ध है तथा अधिकतर उपदेशात्मक है। रस काव्यों में प्रेम-विरह एवं युद्ध आदि का वर्णन है। लौकिककाव्य होने के कारण इनमें धार्मिक तत्वों का समावेश भी हो गया है। अपभ्रंश काव्य परंपरा में प्रथम जैन कवि स्वयंभू हैं जिनका आविर्भाव सातवीं शती में हुआ था। इनकी प्रमुख कृतियाँ है – रिट्ठनेमि चरिउ (अरिष्टनेमि चरित), पउम चरिउ (पद्म चरित) तथा स्वयं भूछन्दस। इनमें से पउम चरिउ में राम कथा है जो जैन धर्मानुसार रूप ग्रहण करती है तथा पांच खण्डों में विभक्त है। अरिष्टनेभि चरित में महाभारत और कृष्ण कथा चारकाण्डों में वर्णितहैतथा कौरव-पाण्डव युद्ध का वर्णन भी मिलता है लेकिन वह भी जैन धर्म की रीतिके अनुसार कृष्ण चरित में उभरते परिवर्तन के रूप में ही है।

दूसरे महत्वपूर्ण कवि पुष्पदंत हैं जिनका आदिर्भाव दसवीं शती के आरंभ माना जाता है। पुष्पुदंत पहले शैव थे, बाद में जैन दीक्षा ग्रहण की थी। इनकी कृतियाँ हैं – तिसट्ठि मही , पुरिसगुणालंकार, महापुराण और णायकुमार चरिउ इसमें से प्रथम कृति दो भागों- आदि पुराण एवं उत्तर पुराण जो तीन खण्डों में विभक्त हैं तथा तेईस तीर्थंकरों एवं भरत का चरितोल्लेख लिए हुए है। नागकुमार चरित में नौ संधियों में विभक्त चरितकाव्य है जो मूलत: श्रुत पंचमी के व्रत की महिमा लिए हुए है तथा अपभ्रंश भाषा में लिखी गई है। यह व्रतानुष्ठानिक कथा है। नागकुमार ने व्रतानुष्ठान के आधार पर 24 कामदेवों में से एक के रूप में जन्म लिया था। यह अपभ्रंश भाषा में लिखित नागकुमार के अलौकिक एवं चमत्कारिक कार्यों का वर्णन है। यही नहीं, आदिकालीन आधार सामग्री हेतु इसके अतिरिक्त मेरूतुंग की 'प्रबंध चिंतामणि, मुनि रामसिंह की पाहुड़ दोहा, धनपाल की **भविसयत्तकहा** भी जैन साहित्य की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं।

6.5.5 चारण काव्य

आदिकाल की विशेष प्रवृत्ति रही हैं कि कवियों आश्रयदाता राजा के राज्याश्रित कवियों द्वारा उनकी प्रशस्ति एवं वीरता तथा शौर्य का गायन किया है तथा युद्धों का सजीव चित्रण भी। ऐसे कवियों को चारण कवि या दरबारी कवि कहा जाता था। ये चारण कवि अपने आश्रयदाता के यश, शौर्य, गुण में और वीरता की अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने में कुशल स्वामी भक्ति कवि थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि , निरन्तर युद्धों के लिए प्रोत्साहित करने को भी एक वर्ग आवश्यक हो गया था। चारण इसी श्रेणी के लोग थे। उनका कार्य ही था हर प्रसंग से आश्रयदाता के युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देने वाली घटनाओं का अविष्कार (हिंदी साहित्य की भूमिका) चारण कवियों ने अपने काव्य का प्रणयन अधिकतर डिंगल भाषा (राजस्थानी) में ही किया है : बोलचाल की राजस्थानी भाषा के साहित्यिक रूप को डिंगल कहा जाता है जो वीरगाथात्मक काव्य के लिए सर्वथा उपयुक्त है। चारण काव्यकारों में चंद बरदाई, दलपति विजय, जगनिक, नरपतिनाल्ह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें प्राय: सभी ने रासो काव्य परंपरा में अपनी काव्य कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। चंद बरदाई ने पृथ्वीराजरासो , नरपति नाल्ह ने वीसलदेवरास , दलपति विजय ने खुमाणरासो तथा जगनिक ने परमालरासो (आल्हा खण्ड) की रचनाएं की .जगनिक ने परमात्मा रासों में क्षत्रिय जीवन का युद्ध के लिए ही अभीष्ट माना है –

बारह बरस लौ कूकर जिए औ तेरह लै जिए सियार।

बरस अठारह सभी जीये, आगे जीवन को धिक्कार।।

नरपति नाल्ह ने विग्रह राज (बीसल देव) का चरित वर्णन किया ।

यहीं पर आपको यह बताना भी अधिक उपयुक्त होगा कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल वीरगाथा काल की आधार सामग्री में गृहीत पुस्तक भट्ट केदारकृत जयचंद प्रकाश तथा मधुकर कवि रचित जयमयंकजस चंद्रिका आज भी अनुपलब्ध हैं और उनका उल्लेख दयालदास कृत **राठौड री ख्यात**

में ही मिलता है। अनुमान किया जा सकता कि ये दोनों कृतियाँ महाराजा जयचंद के प्रताप और पराक्रम की गाथा से परिपूर्ण हो सकती हैं।

6.5.6 लौकिक काव्य

जनता की चित्तवृत्तियों का सर्वाधिक सटीक वर्णन लौकिक या लोक साहित्य परक कृतियों में मिलता हैं। ये प्रमुख रचनाएं ऐसी होती हैं जो कभी कवि विशेष द्वारा रची गई होती हैं, पर कालान्तर में वे लोक कंठाश्रित हो जाती हैं और जो उनका गायन वाचन करते हैं उनकी अपनी काव्यात्मक सम्वेदना कब कितना योगदान करती हैं, उसकी कोई पहचान संभव नहीं होती है। दूसरी ओर ऐसी भी लौकिक परंपरा की काव्य कृतियाँ सामने आती हैं जिसमें विशेष विषयों से संबंध जुड़ा होता है जिसका साहित्येतर प्रवृत्ति के रूप में जनता के मनोरंजन हेतु प्रस्तुत किया जाता है। इसमें अमीर खुसरों द्वारा मुकारियों तथा पहेलियों का सृजन किया गया है। दूसरी ओर भक्ति एवं श्रृंगार की प्रकृति को लेकर विद्यापति ने साहित्य (पदावली) की रचना की धनपाल जैसे जैन कवि ने सामान्य व्यक्ति को नायक बनाकर काव्य सृजन की नई प्रवृत्ति आरंभ की।

अमीर खुसरों का आविर्भाव तेरहवीं शती (सन् 1255 ई.) में हुआ और उन्होंने लगभग सौ ग्रंथ की रचना की। उनमें से बीस ग्रंथ ही उपलब्ध होते हैं। उनकी काव्य कृति में पहेलियाँ, दो सुखन, मुकरियाँ, कोसला आदि संग्रहित हैं। उनकी रचनाएं प्राय: खड़ी बोली हिंदी का प्रारम्भिक किंतु ऐतिहासिक रूप है। कुछ उद्धाहरण द्रष्टव्य है –

एक थाल मोती से भरा।

सब के सिर औंधा धरा।

चारों ओर वह थाल फिरे

मोती उससे एक न गिरे (पहेली उत्तर : तारों भरा आकाश)

मुकरी का उदाहरण –

मेरा मोसे सिंगार करावत

आगे बैठ के मान ब ावत

वासं चिक्कन ना कोउ हीसा

ऐ सखि सजन ना सखि सीसा

विद्यापति बिहार (दरभंगा) निवासी कवि हैं जिन्होंने मैथिली भाषा में श्री कृष्ण एवं राधा विषयक प्रेम विरह भावों को अभिव्यक्ति दी है। विद्यापति के प्रथम आश्रयदाता राजा कीर्ति सिंह और बाद में मैथिली नरेश शिव सिंह थे। विद्यापति ने अपने अधिकांश ग्रंथों की रचना संस्कृत में की। इनमें

शैव सर्वस्वसार, प्रमाणभूत पुराण संग्रह ,भू-परिक्रमा, पुरूष परीक्षा, लिखनवली, गंगा वाक्यावली, दान वाक्यावली, विभागसार, दुर्गाभक्ति तरंगिनी प्रमुख हैं। हिंदी साहित्य के अंतर्गत विद्यापति के तीन ग्रंथ उल्लेखनीय हैं – कीर्तिलता, कीर्तिपताका तथा पदावली. कीर्तिलता और कीर्तिपताका चरित काव्य है, पदावली श्रृंगारिक एवं भक्ति परक रचना है। कीर्तिलता राजा कीर्ति सिंह चरित विषयक रचना है जो कवि द्वारा अवहट्ठ (अपभ्रंश) की प्रथम रचना है और जिसे सुनने से पुण्य प्राप्ति होती है। भृंग-भृंगी संवाद द्वारा कहानी आगे बढ़ाई गई है। पृथ्वीराज रासो में शुक-शुकी सम्वाद है। इस रूप में दोनों कृतियों में साम्य है। पदावली पद संग्रह है जो मैथिली (भाषा) में रची गई है। वस्तुत: इस विद्यापति पदावली के गीतों का सर्वाधिक प्रचार चैतन्य महाप्रभु ने किया है। वे भाव विभोर इन नीतियों का गायन करते थे। इन पदों (82) में राधाकृष्ण प्रेम का श्रंगारिक चित्रण है। राधा के अप्रतिम सौन्दर्य का चित्रण विद्यापति करते है-

लोल कपोल ललित मनि-कुण्डल

अधर बिम्ब अध आई।

भौह भमर नासा पुट सुन्दर

देखि कीर लजाई

विद्यापति के इस गीत काव्य के नायक राधा-कृष्ण हैं, परन्तु यह केवल भक्ति रचना नहीं है। वास्तव में विद्यापति ने राधा-कृष्ण की प्रणय-लीला से सम्बद्ध पदों की रचना श्रृंगार चित्रणको ध्यान में रखकर की है। डॉ रामकुमार वर्मा कहते हैं कि, उन्होंने (विद्यापति ने) श्रृंगार पर ऐसी लेखनी उठाई है जिससे राधा और कृष्ण के जीवन का तत्व प्रेम के सिवाय कुछ नहीं रह गया है। ''(हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास) **भविष्यत्त कहा** यह अपभ्रंश में रचित कथा काव्य है जो श्रुतपंचमी के महात्मय का वर्णन है। इसके रचयिता जैन संप्रदाय में दीक्षित कवि (दसवीं शती) है। यह कृति बाईस संधियों में रचित दम्पत्ति धनपाल और कमलश्री के पुत्र भविष्यदत्त की कथा है जिसे उसका सौतेला भाई बंधुदत्त धोखा देकर सारी संपत्ति हड़प कर लेता है। भविष्यदत्त की सच्चरित्रता तथा वीरता के कारण राजपुर के राजा बंधुदत्त को दंडित कर भविष्यदत्त से अपनी बेटी का विवाह कर देते हैं। विवाह के उपरांत भविष्यदत्त को मनि विमल बुद्धि उपदेश देते हैं तथा उन्हीं के माध्यम से उसे अपने पूर्वजन्म की कथा का पता चलता है। अंत में भविष्यदत्त तपस्या करके निवार्ण की प्राप्ति करते हैं। यह काव्य कडवकबद्ध शैली में रचित प्रकृति, रूप, नखशिख वर्णनों का श्रेष्ठ आंकलन है जिसमें वीर श्रृंगार तथा शांत तीन रसों का समावेश है तथा इसकी भाषा अपभ्रंश या पुरानी हिंदी है। ोलामारू रा दूहा , सन्देशरासक की परंपरा में रचा गया लोककाव्य है और वीसलदेवरासो की भांति सन्देश काव्य है। इसमें बचपन में हुए विवाह के उपरांत मारू अपने पति ोला को कई सन्देश भेजती है। अंत में मारर (मारवणी) लोकगीतों के गायक ो ी का दायित्व सौंपती हैं और वह अपने उद्देश्य में सफल होती है और उन दोनों का मिलन सम्भव हो जाता है। यद्यपि परदेश में ोला का प्रेम

मालवाणी के साथ विकसित हो जाता है। इधर-मारवणी की मृत्यु के बाद मालवणी और ोला का पुनर्मिलन हो जाता है।

ोलाकाव्य सौष्ठव से परिपूर्ण अनुपम लोकगाथा है। जिसमें श्रृंगार का संयोग कालीन वर्णन मर्यादित एवं अलौकिक है। नख-शिव परंपरा युक्त वियोग वर्णन में हृदय की सच्चाई का स्वाभाविक एवं प्रभावशाली वर्णन है। मारवणी ो ी के समक्ष अपने सन्देश में नारी हृदय को खोल कर रख देती है –

ा ी एक संदेसड़उ ,प्रीतम कहिया जाइ।
सा घण बलि कुइला भई भसम ँ ोलिसि आइ।
ाढ़ी जे प्रीतम मिलइ, यूं कहि दाखनियाह।
ऊँजर नहिं छई प्रणिय था दिस झल रहियाह।

अर्थात् घनि (पत्नी) जलकर कोयला हो गई है। अब आकर उसकी भस्म ूं ना । अब उसके पंजर में प्राण नहीं है केवल उसकी लौ तुम्हारी ओर झुककर जल रही हैं, मारवणी का वह निवेदन जहाँ एक ओर चारण काव्यों के प्रणयन की व्यापकता बढ़ाता है, वही जन साधारण के कवि की स्वान्त:सुखाय लोक भावनाओं को जीवंत रूप में सहज ही प्रस्तुत करता है।

बोधप्रश्न 2

1. सिद्धकाव्य किसे कहते हैं ?
2. नाथ कवियों की विशेष प्रवृत्ति पर प्रकाश डालिए।
3. जैन काव्य का महत्व स्पष्ट कीजिए।
4. चारणकाव्य का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
5. लोकाश्रित ोला मारू रा दूहा का महत्व स्पष्ट कीजिए।

6.6 आदिकालीन काव्य प्रक्रिया

अब तक के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि आदिकाल की परिस्थितियाँ कैसी बन पड़ी थी जिन्होंने तत्कालीन कवियों में काव्य रचना की विशेष प्रवृत्तियों को जन्म दिया था। आप इस इकाई से यह जान ही चुके हैं कि परिस्थितियाँ कवि को उत्प्रेरित करती हैं और अवसर भी देती हैं कि वह अपने समय की यथार्थ चेतना की अभिव्यक्ति काव्य सर्जना में करें। परिस्थितियाँ और प्रवृतियाँ परस्पर परिपूरक दायित्व से जुड़ी रहती हैं, इन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता है। ये दोनों ही कवि की रचना-प्रक्रिया का मूलाधार बनती हैं।

ऐतिहासिक काव्य – आदिकाल की संक्रमणशील परिस्थितियों और तत्कालीन राजा-महाराजाओं तथा विदेशी आक्रामकों के कारण कवियों ने अपने आश्रयदाता राजा के कुल गौरव एवं शौर्य-गाथा का चित्रणयुगीन आवश्यकता के रूप में किया है। पराजय और हताषा के युग में अपने पूर्व-पुरूषों के शौर्य एवं गौरव को दुहराने के लिए उन्हें इतिहास का सहारा लेना ही अनिवार्य था, पर इतिहास को अपने राजा और उसकी प्रशास्ति के अनुरूप मोड़ लेना भी अनिवार्य था। यही कारण है कि उसमें इतिहास एवं कल्पना (फैक्टस और फिक्शन) का आश्रय लेकर उन्होंने अतीत को वर्तमान में देखने की सफल प्रयास किया है।

काव्य रचना इतिहास नहीं होती है, पर इतिहास का आश्रय काव्य की सम-सामयिक उपदेयता बढ़ा देता है। कवि इतिहासकार भी नहीं होता जो घटनाओं का यथाक्रम विवरण दें, वह तो काव्य-प्रयोजन सिद्ध घटनाक्रमों का आश्रय लेता है और कल्पना से उसमें काव्यात्मक ऊर्जा का मिश्रण कर उसे श्रवणीय (दरबारी वातावरण में) और पठनीय (लिखित कृति रूप में) बना देता है। पृथ्वीराज रासो का प्रथम संपादन जब कर्नल जेम्स टाड ने उदयपुर से पच्चीस किलोमीटर दूर एकांत में निर्मित एजेण्ट के बंगले में पशु चराने वालों से सुनकरकिया तो प्रो व्हूलर में उसे जाली करार दे दिया था क्योंकि जगनिक द्वारा संस्कृत की हस्तलिखित प्रति **पृथ्वीराज विजय** में उल्लिखित सन् सम्वतों का साम्य विविध शिलालेखों से हो जाता था, पर पृथ्वीराज रासो में उल्लिखित ऐतिहासिक घटना क्रम से साम्य नहीं रखता था। ऐसे ही किसी भी काव्य ग्रंथ में इतिहास सप्रसंग सांकेतिकता तो ले सकता है पर कल्पना ही अधिक व्यापकता ग्रहण करती है तभी कवि अपने काव्य प्रयोजन की सिद्धि में सफल हो पाता है। इस संदर्भ में यह कहा जाना भी कि पृथ्वी राज रासो ही नहीं अनेक अन्य रचनाएं ऐसी हैं, जो इतिहास का संस्पर्श लेकर ही चली हैं, उनमें सन् सम्वत का वह दखल नहीं हैं जो इतिहास में होता है, पर काव्यात्मक दृष्टि से वे अपने चरित नायक को ऐतिहासिक सिद्ध कर देती है, शेष कथा का विकास कवि कल्पना का विस्तार लिए है (रासो काव्यधारा)

उक्त विवरण के साथ आप यह भी जान सकते हैं कि आदिकाल के हिंदी ऐतिहासिक काव्यों में ऐतिहासिक तथ्यों की ओर कवि ने ध्यान नहीं दिया। उसने कल्पना का ही अधिक सहारा लिया और काव्य-निर्माण पर विशेष ध्यान दिया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन इस संदर्भ में महत्वपूर्ण सिद्ध होता है कि ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर काव्य लिखने की प्रथा बाद में खूब चली।.....परन्तु भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही जिसमें काव्य निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण संग्रह की ओर कम, कल्पना अधिक , तथ्यनिरूपण कम ,संभावनाओं की ओर अधिक रूचि थी, घटनाओं की ओर कम, उल्लासित आनंद की ओर अधिक झुकाव था, तथ्यावली की ओर कम।..... पृथ्वीराज रासो में चंद बदराई ने कल्पना और तथ्य का सुन्दर सामंजस्य उपस्थित किया है, पर इसमें भी कल्पना तथ्य पर हावी हो गई है। (हिंदी साहित्य का आदिकाल) आदिकाल की आधार सामग्री में और नई खोजों से प्राप्त तद्युगीन अन्य काव्यकृतियों का मूल्यांकन किए जाने के उपरांत आपके समक्ष यह तथ्य बहुत

ही स्पष्ट रूप में रखा जा सकता है कि युद्ध सामंती परिवेश की अनिवार्यता है और उसके लिए प्रतिपक्ष से शत्रुता ही अनिवार्य नहीं है क्योंकि आल्हाखण्ड (परमाल रासो) में कवि एक स्थान पर कहता है-

''जेहि कि कन्या सुन्दर देखी

तेहीं घर जाय धरै हथियार''

यानी जिस किसी परिवार में सुन्दर कन्या देखी, वहीं वीर योद्धा ने उसकी प्राप्ति के लिए उसके परिवार के समक्ष तलवार दिखाकर विवाह के लिए बाध्य कर दिया।

इस प्रकार के उल्लेख से आप समझ सकते हैं कि राजाओं द्वारा किस प्रकार अन्य राजाओं को युद्ध अथवा बेटी से विवाह के विकल्प दिए थे क्योकि हारकर या बेटी देकर दोनों की रूपों में उक्त राजा की अधीनता या आश्रय ही उनकी नियति रह गई थी। प्रश्न यह भी है कि आदिकाल में लिखित काव्यों में श्रृंगार का निरूपण किस रूप में हुआ है। प्रथम रूप में वीरगाथात्मक काव्यों के स्तर पर प्रेम और युद्ध के साथ-साथ श्रृंगार का चित्रण किया गया है। पृथ्वीराज रासो इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। पृथ्वीराज रासो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसमें प्रेम का वर्णन युद्ध के फलक पर हुआ है। लेकिन आदिकाल के अन्यकाव्यों में ऐसे भी उदाहरण हैं, जिनमें अलग से नायक-नायिका के प्रेम और विरह (संयोग और वियोग) का चित्रण किया गया है। वीसलदेव रास, विद्यापति पदावली, ोलामारू दूहा के उदाहरण इसके साक्षी हैं। विजयपाल रासो की खण्डित सामग्री में भी श्रृंगार और प्रेम का ही निरूपण मिलता है। इस रासो के 43 छन्द मिले हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहना आप के लिए अधिक सहज है कि आदिकाल के काव्यों में अपने आश्रयदाता के मनोरंजन के लिए शौर्य एवं प्रशस्ति गायन (यानी वीर रस) के अतिरिक्त श्रृंगार (संयोग-वियोग) के चित्र ही उनके काव्य कौशल को प्रशंसा दिला सकते थे।

6.6.3 लौकिक काव्य - अब इकाई के इस अंश में आदिकाल में लिखत काव्य प्रक्रिया का यह स्वरूप आपकेसामने प्रस्तुत है जिसे कहा जाता है-लौकिक काव्य। यद्यपि खुसरोकी पहेलियोंका उल्लेख आधार सामग्री के रूप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल कर ही चुके थे। अन्य और परवर्ती सामग्री उन्हें बीसवीं शती के दूसरे दशक तक उपलब्ध हो गई होतीतो यह संभव था कि इस प्रक्रिया में वह भी आपके अध्ययन के लिए उपलब्ध करा दी गई होती। पर शुक्ल जी के समय में जब हिंदी शब्द सागर की भूमिका को वे इतिहास का रूप दे रहे थे, तब साधनों के अभाव और लेखक की सीमाओं के कारण ऐसा संभव नहीं हो सकता था।

परवर्ती काल में हिंदी साहित्येतिहासकारों के प्रतिस्पर्धात्मक इतिहास लेखन ने गर्भगृहों, मंदिरों-उपासरों, निजी पुस्तकालयों के द्वार खटखटाए और सामग्री की खोज में लगे तो आदिकाल की इस प्रवृति-प्रक्रियाका क्षेत्र विस्तार हुआ और अब इस क्षेत्र में ोलामारूदा दूहाका उल्लेख अनिवार्यहोगया है। 'वसंतविलास', जयचंद्र प्रकाश और जयमंयकजसचद्रिका, को भी

लौकिककाव्य के रूप में स्वीकार कियाजाने लगा है। यद्यपि हम पिछली इकाई में (पांचवीं में) आपकोयहबता चुके हैं कि 'जयचंद्र प्रकाश' और जयमयंकजस चंद्रिका का उल्लेख ही हैं,वह भी राठौ ा री ख्यात में उल्लेखकार ने स्वयं इन कृतियों के संबंध में कुछ भी विवरण नहीं दिया है।

आप यह जान कर अपना ज्ञान-वर्द्धन करेंगे कि इन लौकिक काव्यों की वर्ण्य-वस्तु श्रृंगार रस प्रधान है। वीर रस का उसमें योगदान नहीं है। वीर और श्रृंगार रस एक दूसरे के पूरक होते हैं पर यह नितान्त श्रृंगारिक रचनाएं हैं। ' ोला मारू रा दूहा' प्रेमकाव्य है, वसंत विलास में वसंत और स्त्रियों पर उसके विलास पूर्ण प्रभाव का मनोहारी चित्रण किया गया है। उसका ही एक उदाहरण दृष्टव्य है –

इणिपरि कोइलि कूजइ, पूजइ यूवति मणोर।

विधुर वियोगिनि धूजइ, कूजइ मयण किशोर।

अर्थात् एक ओर आम्रवृक्षों पर कोयल कूकती है, दूसरी ओर पति युक्त युवतियाँ विलास मग्न होकर मनोरंजन करती हैं। इसे देखकर विधुर जन और वियोगिन नारियाँ कांपने लगती हैं, क्योकि मदन किशोर(कामदेव) का कूजन उनके मन में प्रिय के अभाव का आभास देता रहता है। आदिकाल के स्तर पर लौकिक काव्य में ऐसी रचनाएं हैं जो इस काल खण्ड में लिखी गई हैं, पर उनकी वर्ण्य-वस्तु रीतिकालीन है।

बोध प्रश्न 3

1. आदिकाल की काव्य प्रक्रिया समझाइए।
2. आदिकाल के ऐतिहासिक काव्यों में ऐतिहासिकता क्यों नहीं है ?
3. आदिकाल में श्रृंगारिक रचनाओं का अंबार क्यो रहा है ?
4. आदिकाल के लौकिक काव्य की विषय वस्तु पर प्रकाश डालिए।

6.7 सारांश

इस संपूर्ण इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान चुके होंगे कि आपको आदिकाल के विविध स्वरूपों का अच्छा परिचय हो गया है कि आदिकाल में मात्र वीरगाथाएं ही नहीं लिखी जा रही थीं और जो वीरगाथाएं थी उनके ऐतिहासिकता नामोल्लेख भर रही है, क्योंकि कवि का उद्देश्य इतिहास निर्माण करने के स्थान पर अपने आश्रयदाता को प्रोत्साहित एवं उद्बोधित करने के लिए ही कल्पना प्रसूत काव्य रचना प्रस्तुत करना था । इसीलिए तत्कालीन विषम राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक परिस्थितियों के बीच अपने आश्रयदाता का मनोबल बनाए रखने के लिए कवि तथ्य एवं कल्पना के आश्रय में मनोरंजक एवं श्रृंगारिक काव्य प्रस्तुत करता था। इसी

कारण इस काल खण्ड में इतिहास न लिखकर ऐतिहासिक (रस ग्राह्य), श्रृंगारिक एवं लौकिक काव्य रचनाओं की सृष्टि हुई हैं।

6.8 शब्दावली

आगम	:	जैन विद्या में वेद निरूपण
आक्रांता	:	भयभीत करने वाला
चरितकाव्य	:	ऐसा काव्य जिसमें किसी व्यक्ति का चरित चित्रण प्रमुख हो
पदावली	:	पद शैली में रचित काव्य। इसका मूल स्रोत लोकगीत है। पद में प्राय: किसीन किसी राजा का निर्देश होता है
रास	:	रास एक गेय रूपक
रासो	:	रासक शब्द से निर्मित। व्यापक रूप से ऐसा चरित्र काव्य जो जीवन का समग्र चित्रण लिए हो।
चारण	:	राजाश्रय प्राप्त कवि जिनका काम राजा की प्रशस्ति करना होता था .

6.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य का आदिकाल , हिंदी साहित्य की भूमिका
2. रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास
3. राहुल सांकृत्यायन : हिंदी काव्यधारा
4. विजय कुलश्रेष्ठ : रासो काव्यधारा
5. शिवकुमार शर्मा : हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ
6. हरिश्चन्द्र वर्मा : हिंदी साहित्य का इतिहास
7. रामकुमार वर्मा : हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. आदिकाल की परिस्थितियों पर अपने विचार स्पष्ट कीजिए।
2. आदिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या थी, उनका विवेचन कीजिए।
3. आदिकालकी सर्जनात्मक प्रक्रिया पर अपना सटीक निबंध लिखिए।

इकाई 7 हिंदी साहित्य की आदिकालीन कविता में रस, छन्द, अलंकार योजना

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 आदिकालीन काव्य – विवेचना
  7.3.1 अपभ्रंश और हिंदी का वीर काव्य
  7.3.2 अपभ्रंश और हिंदी का भक्तिकाव्य
  7.3.3 अपभ्रंश और हिंदी का श्रृंगार काव्य
7.4 आदिकालीन काव्य पद्धति
  7.4.1 कथात्मकता
  7.4.2 कथा अभिप्राय (कथा रूि याँ)
  7.4.3 काव्य पद्धति
7.5 आदिकालीन काव्य : अभिव्यंजना शिल्प
  7.5.1 काव्य रूप वैशिष्ट्य
  7.5.2 रस विधान
  7.5.3 अलंकार विधान
  7.5.4 गेयता एवं छन्द- प्रयोग
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.9 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

अब तक किये गए अध्ययन से आप जान चुके हैं कि इतिहास लेखन में जितना तथ्यात्मक एवं वैज्ञानिक अध्ययन-मनन आचार्य रामचंद्र शुक्ल का रहा है, उसको ही अधिसंख्य साहित्येतिहासकारों ने महत्व दिया है। आप आचार्य शुक्ल द्वारा सुझाए गए काल विभाजन में प्रारंभिक काल के नामकरण संबंधी विकल्प देने का कारण भी स्पष्टत: जान चुके हैं कि क्यों शुक्ल जी ने आदिकाल को वीरगाथा काल का विकल्प दिया था। परवर्ती साहित्येतिहासकारों की आलोचना प्रत्यालोचना और आधार सामग्री विषय मत-भिन्नता के आधार पर वीरगाथा के अन्तर आदिकाल नामकरण की सटीकता पर आप यह सुनिश्चित करवाने में पूर्णत: सफल रहे हैं कि आदिकाल नाम ही सर्वथा उपयुक्त है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप आदिकालीन हिन्दी कविता की अभिव्यंजनात्मक विशेषताओं से परिचित होंगे तथा आदिकालीन कविता में निहित रस ,छंद एवं अलंकारों (काव्य सौंदर्य) का ज्ञान प्राप्त करेंगे . साथ ही साथ आप सम्पूर्ण आदिकालीन काव्य-पद्धतियों का विश्लेषणात्मक परिचय प्राप्त करेंगे

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर यह जान सकने में समर्थ होंगे कि –

- आदिकाल के हिंदी साहित्य को पूर्व साहित्य परम्परा से क्या प्राप्त हुआ था ?
- अपभ्रंश भाषा और हिंदी भाषा का अंत:संबंध भी ज्ञात हो सकेगा।
- पुरानी हिंदी और अपभ्रंश भाषा के काव्य का अगला रचना विकास हिंदी की आदिकालीन कविता ही है।
- हिंदी की आदिकालीन काव्य पद्धति कि प्रवृत्ति क्या थी ।
- आदिकालीन काव्य के अभिव्यंजना शिल्प के विशिष्ट क्या थी ।

7.3 आदिकालीन काव्य – विवेचना

अब तक के अध्ययन से आप जान चुकें हैं कि आदिकाल राजनीतिक ,सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक अस्थिरता तथा बिखराव का काल था और ऐसी विषम परिस्थितियों ने उस काल के रचनाकारों या दरबारी कवियों को जिस प्रकार का परिवेशगत प्रोत्साहन दिया, सर्जक-प्रतिभा ने वैसी ही सर्जनात्मक ऊर्जा भी प्रदान की है। आचार्य शुक्ल का यह कथन भली-भांति अपना स्वरूप ग्रहण करता है कि ,**जनता की चित्तवृत्ति क परिवर्तन क साथ-साथ साहित्य क स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता ह। आदि स अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा**

को परखत हुए साहित्य-परंपरा क साथ उसका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता ह। (हिंदी साहित्य का इतिहास)

उक्त आधार पर ही अब आपके समक्ष आदिकाल में प्रचलित अपभ्रंश और हिंदी भाषाओं के साहित्य की निम्न सारणियों का विवेचन किया जा रहा है –

7.3.1 अपभ्रंश और हिंदी का वीर काव्य

आप पहले भी जान चुके हैं कि आदिकाल में अपभ्रंश भाषा में साहित्य-सर्जना हो रही थी। अपभ्रंश भाषा में रचित चरित-काव्यों में पुष्पदंत कृत नागकुमार चरित (णायकुमार चरिउ) और जसहर चरित (जसहर चरिउ) प्रमुख है। इनके कथानायक वीरता और शौर्य का जीवंत प्रतिमान है, पर इन्हें ऐतिहासिक वृत्त नहीं माना जा सकता, क्योंकि इतिहास में उनका कोई उल्लेख नहीं है। इस कालखण्ड में हिंदी में जो भी चरितकाव्य लिखे गए, उनको 'रासो' काव्य कहा गया। आपको 'पृथ्वीराज रासो' का नाम स्मरण होगा। इसी प्रकार इस कालखण्ड में हमीर रासो, खुमाण रासो आदि का उल्लेख है और वे भी इतिहास समस्त चरित्र तो हैं, पर कवि-कल्पना पर आधारित रूप में उनके राज-दरबार, शौर्य, विवाह, वीरता का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन ही उपलब्ध है। अपभ्रंश में जहाँ पौराणिक और अनैतिहासिक कथा नायकों एवं उनके सहयोगियों की कीर्ति-गाथाएं गायी गई हैं, वही हिंदी में पात्रों को ऐतिहासिक परिवेश से ग्रहण भर किया गया है और शेष विवरण कवि-कल्पना शक्ति की देन ही रहा है।

7.3.2 अपभ्रंश और हिंदी का भक्तिकाव्य

अपभ्रंश साहित्य में एक ओर जैन कवियों द्वारा राम और कृष्ण तो दूसरी ओर सिद्धों-नाथों कवियों द्वारा धार्मिक रू ियों और बाह्यडम्बरों का विरोध करते हुए अंतस्साधना पर बल दिया गया है। इस प्रकार अपभ्रंश भाषा एवं साहित्य में भक्ति की धारा का एक सुस्पष्ट स्वरूप उभरता है, जो राम और कृष्ण के काव्य का परिचायक है भले ही हिंदी की भक्तिधारा पर आदिकालीन अपभ्रंश में लिखित राम और कृष्ण काव्य का कोई स्पष्ट प्रभाव रेखांकित नहीं होता है। हिंदी के आदिकालीन काव्य में राम और कृष्ण कथा का उल्लेख (पृथ्वीराज रासो) में मिलता है, पर इसका स्पष्ट प्रभाव आगे भक्तिकाल में देखा जा सके संभव नहीं लगता। यद्यपि इस कालखण्ड में सिद्ध-नाथ भक्तिकाव्य के प्रादुर्भाव का प्रभाव आदिकाल-परवर्ती कवि कबीर पर देखा जा सकता। इस निर्गुणिया कबीर के संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि ''यह सम्पूर्णत: भारतीय है और बौद्ध धर्म के अंतिम सिद्धों और नाथ पंथी योगियों के पदादि से उसका सीधा संबंध है।" अत: हिंदी की आदिकाल-परवर्ती ज्ञानश्रयी धारा के सूत्र सरहपा, शबरपा और कण्हपा के रूप में विद्यमान मिलते हैं।

7.3.3 अपभ्रंश और हिंदी का श्रृंगार काव्य

अभी तक आप आदिकाल के अपभ्रंश एवं हिंदी के काव्यों में चरित्रांकन और भक्तिमयता के कतिपय रूपों का विवेचन पढ़ चुके हैं। इस अंश में आपको तद्युगीन श्रृंगार चित्रण का परिचय प्राप्त होगा। इस काल खण्ड की अपभ्रंश काव्य परंपरा में हेमचंद्र के व्याकरण में व्यक्त श्रृंगार भावना को परे छोड़ भी दे (क्योंकि इससे चमत्कार प्रधानता है जो आगे चलकर रीतिकाल में अपने चरमोत्कर्ष पर थी) तो अब्दुल रहमान कृत सन्देश रासक (बारहवीं शती) को अस्वीकार नहीं कर सकते। यह अपभ्रंश भाषा में लिखित एक विरह एवं सन्देश काव्य है। अपने में स्वतंत्र प्रत्येक छन्द होते हुए 223 छन्दों में एक विरह कथा पिरोई गई है।

सन्देश रासक की परम्परा में इस कालखण्ड की हिंदी में भी वीसलदेव रास और ोलामारू रा दूहा (क्रमश: चौदहवीं एवं पंद्रहवी शती ईस्वी) उपलब्ध हैं। इनमें से बीसल देव मूलत: विरह काव्य है और सन्देश रासक से कहीं अधिक लोक जीवन का प्रभाव लिए है। इसके छंद लोकगीत से साम्य रखते प्रतीत होते हैं। अत: इसे आप सन्देश रासक का अनुकरण कर्ता काव्य नहीं कह पायेंगे। दूसरे काव्य ोला मारू रा दूहा को आप उक्त दोनों से कदाचित इस रूप में भिन्न पाएंगे कि विरह काव्य होते हुए भी इसे कथा काव्य (कथा-प्रधान) के रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा आप यह अंतर भी देख सकेंगे कि इसमें सन्देश वाहक क्रौंच पक्षी था फिर ँ ी है – जबकि संदेश शासक में नायिका अपना सन्देश एक पथिक से कहती हैं और वीसल देव रासो में राज्य के पंडित को सन्देश वाहक बताया जाता है। यह शैली की दृष्टि से लोकगीत के निकट है।

7.4 आदिकालीन काव्य पद्धति

आदिकाल के काव्य पर अपभ्रंश का ऋण बना रहेगा – इसमें दो मत नहीं हो सकते। अभी आप देख चुके हैं कि चाहे आदिकाल के चरित काव्य हैं या भक्ति-काव्य अथवा श्रृंगार काव्य, वे सभी अपने से पूर्व प्रचलित एवं समर्थ भाषा अपभ्रंशकी रचनाओं से ही उत्प्रेरित रहे हैं तथा स्वयं के प्रयासों से वे अपभ्रंश भाषा की रचनाओं का मात्र अनुकरण नहीं है, उनमें कुछ अंतराल विशेष अवश्य बना हुआ है, फिर भी आप इतना तो स्पष्ट रूप से समझ ही गए हैं कि अपभ्रंश भाषा में लिखित काव्य हिंदी के आदिकाल (और परवर्ती काल भी) की काव्य सर्जना की पूर्व-पीठिका है। इन पंक्तियों के आधार पर यह वास्तविकता भी आपकी जानकारी में आ जानी चाहिए कि हिंदी भाषा एवं साहित्य ने अपभ्रंश भाषा को अपनाते हुए अपनी प्रकृति के अनुरूप उसका विकास किया है, जिसे निम्नलिखित रूप से देखा जा सकता है –

7.4.1 कथात्मकता

आदिकाल के अधिसंख्य काव्यों की रचना कथात्मक है जिसे शैली भी कहा जा सकता है, लेकिन कथा का अर्थ विशेष भी होता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में कथा का प्रयोग एक निश्चित काव्य

रूप के लिए किया जाता है, पर आप यह भी जान लीजिए कि संस्कृत साहित्य में 'कथा' गद्य में लिखी जाती थी, जबकि संस्कृतेतर भाषाओं – प्राकृत और अपभ्रंश आदि में पद्य में लिखी जाती थी। आप यह भी जान लीजिए कि प्राकृत और अपभ्रंश में ऐसे काव्य लिखे गए जिन्हें 'कथा' कहा जाता था। इस काल में कथा की पहली विशेषता पद्यात्मकता है। कथा प्रधान रूप में ऐसी कहानी होती है जो सीधे नहीं कही जाती है, अपितु दो पात्रों के माध्यम से कही जाती है। हिंदी के आदिकाल में ऐसी कथाओं का प्रचलन था जिसमें श्रोता-वक्ता अथवा शुक-शुकी, भृंग-भृंगी के पारस्परिक संवादों के माध्यम से यह कथा प्रस्तुत की जाती थी। 'पृथ्वीराजरासो'और 'कीर्तिलता' में यही कथा शुकी तथा भृंग-भृंगी के रूप में उपलब्ध है। विद्यापति ने भृंग-भृंगी के माध्यम से वर्णित कीर्तिलता की कथा को 'कथानिक' या 'कहानी' कहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा भी है कि पृथ्वीराज रासो में चंद का मूल ग्रंथ शुक-शुकी संवाद के रूप में लिखा गया था –

कहै सुकी सुक संभली। नींद न आवे मोहि।

झुकी सरिस सुक उच्चरयो धरयो नादि सिर चित्र।।

आदिकाल के काव्यों पर विचार करते समय हम यह देख चुके हैं कि आदिकाल के रचनाकार संभावनाओं और कल्पना पर अधिक बल देते हैं। इस कल्पना को यथार्थ बनाने के लिए कवियों ने कथा कहने की कुछ रूि याँ निर्मित की हैं –

1. कथा कहने वाला शुक –
2. प्रेमोदय –

(क) स्वप्न में प्रिय-दर्शन होना

(ख) चित्र देखकर सम्मोहित होना

(ग) भिक्षुक या बंदियों के मुख से कीर्ति वर्णन सुनकर प्रेमासक्त होना

3. आकाशवाणी
4. षड्ऋतु या बारहमासा से माध्यम से विराहाभिव्यक्ति
5. हंस-कपोत आदि से सन्देश भेजना
6. नारी-उद्धार

(च) युद्ध करके

(छ) मस्त हाथी के आक्रमण से बचाकर

(ज) कापालिक द्वारा देवीको बलि देने से

(स) प्रेम का विस्तार

आप समझ गए हैं कि यह मात्र संस्कृत की मूल कथा का गद्यात्मक रूप न होकर वह कथात्मकता लिए हुए जो किसी कहानी को आरंभ करके उसके चरम तक पहुँचा कर निश्चित परिणति देती है। आदिकाल में रचित पृथ्वीराज रासो में अनेक सर्ग इसी प्रकार की कथात्मक व्यवस्था से परिपूर्ण है।

बोध प्रश्न 1

1. अपभ्रंश और हिंदी के चरित काव्यों पर अपने विचार प्रकट कीजए ?
2. अपभ्रंश-हिंदी के भक्ति काव्य का विवेचन कीजिए।
3. अपभ्रंश-हिंदी के श्रृंगार काव्य पर अपना मत व्यक्त कीजिए।
4. आदिकाल के समग्र काव्य का विवेचन अपने शब्दों में कीजिए।

7.4.2 कथा अभिप्राय (कथा रूढियां)

कथा अभिप्राय का प्रयोग आदिकाल के काव्यों एस होता हुआ परवर्ती काल खण्डों के कथाकाव्यों में भी हुआ है। आप आदिकाल में काव्यों के परिचय में यह देख ही चुके हैं कि इस काल खण्ड के अधिसंख्य काव्य कथात्मक है। इन कथात्मक काव्यों में रचनाकारों ने कथा अभिप्राय (कथा रू ियां) का प्रयोग किया गया है।आपकी जानकारी के लिए यह बताना भी अधिक उपयुक्त होगा कि कथा अभिप्रायों का क्षेत्र मूलत: लोक विश्वास होते हैं जो लोक मानस की हर अभिव्यक्ति में बुने और गुंथे रहते हैं, क्योंकि ये तत्त्व दीर्घ लोक चेतना के संवाहक होते हैं।

भारतीय साहित्य में कथा अभिप्रायों का अंकन बहुलता के साथ मिलता है। कुछ विद्वान लोकविश्वास एवं लोक कथाओं का विश्वास नहीं करते हैं, जबकि यह वास्तविकता है कि लोक साहित्य की अभिव्यक्तिका परिनिष्ठित रूप ही साहित्य के रूप में उभर कर आता है। यह एक प्रकार का काव्यशिल्प माना जा सकता है जिसके आधार पर काव्य में विविध प्रतीकों का प्रयोग संभव होता है। अपभ्रंश भाषा में सरहपा की रचनाओं में ऐसी प्रवृत्ति देखने को मिलती है। हिंदी की मुक्तक काव्य कृतियों में अधिसंख्य कवियों (बिहारी को छोड़कर) ने इस परिपाटी का पालन किया है। स्वयंभू और पुष्पदंत ने काव्यों में कथा अभिप्रायों का प्रयोग किया है। अपभ्रंशकाव्यों में विशेष रूप से कथा अभिप्रायों का प्रयोग निम्न प्रकार मिलता है –

1. उजाड़नगर का मिलना, कुमारी-दर्शन तथा विवाह – भविस्यत्त कहा
2. प्रथम-दर्शन, गुणश्रवण या चित्र दर्शन से प्रेमोदय (करकंडु चरिड, णायकुमार चरिउ)
3. दीपान्तर-विशेषकर सिंहल द्वीप की यात्रा और जहाज डूबना

उनका प्रभाव परवर्ती काव्यों (चरित काव्यों भविष्यदत्त कथा) में देखा जा सकता है।

7.4.3 काव्य पद्धति

अभी तक आप आदिकाल खण्ड में लिखित काव्यों की कथात्मकता, कथा अभिप्रायों का अध्ययन करके यह जान चुके हैं कि ये सभी रचनाएँ लगभग एक साथ केन्द्र पर ही संयोजित हुई हैं और आकार की अपेक्षा के अनुरूप संयोजक कथाएँ, उपकथाएँ, वीर कथाएँ और प्रेम कथाओं का मिश्रण कवि यथानुरूप करता है। अपभ्रंश से चलकर हिंदी भाषा तक की यात्रा करते हुए आदिकाल की काव्य-धारा यद्यपि अपनी स्वयं संरचनात्मक स्थिति नहीं बना सकी थी तद्यपि आपको यह बता दें कि हिंदी ने अपभ्रंश के जिस गुण का सबसे अधिक निर्वाह किया गया है, वह काव्य रूप और काव्य-शिल्प है। अपभ्रंश भाषा एवं काव्य-प्रवृत्ति का लाभ हिंदी के आदिकालीन कवियों ने निसंकोच रूप से लिया है। इसको हम कई स्तरों पर विश्लेषित कर सकते हैं। सबसे पहले छन्द की चर्चा करते हैं। अपभ्रंश काव्यों में सर्वाधिक प्रयुक्त छंद दोहा (दूहा) है, इसके अतिरिक्त चौपाई,छप्पय, रोला आदि छन्दों का प्रयोग भी अपभ्रंश काव्यों में मिलता है । परवर्ती हिन्दी काव्यों में इन छंदों का प्रयोग मिलता है . आदिकालीन हिंदी काव्यों में जो गेयता उपलब्ध होती है, उसके संबंध में भी आप यह जान लीजिए कि यह गेयता भी उन्होंने अपभ्रंश काव्य से ग्रहण ली है, अपभ्रंश काव्यों में रास, फागु, चांचर आदि के रूप में गेय काव्य परंपरा सुरक्षित चली आ रही है, उनका भी उपयोग हिंदी काव्य धारा में मिलता है . रासा छन्द का प्रयोग रासो काव्य में हुआ है । हिंदी के बीसलदेव रासो है जो ऐसा काव्यरूप है जो मूलत: कोमल भावों (प्रेम प्रसंग,श्रृंगार वर्णन आदि) का वाहक था, किन्तु वीर गाथाओं के लिए भी उसका काव्य रूप का उपयोग हुआ है।

फाग एक लोकगीत है जो बसंत ऋतु में गाया जाता है। जैन कवियों (मुनियों) के धार्मिक विचारधारा से परिपूर्ण रासकाव्यों में फागु काव्य पद्धति के रूप में अपभ्रंश भाषा में प्रचलित रहा है। आदिकाल के हिंदी काव्यों में भी फागु नामक कई रचनाएँ उपलब्ध होती है जो इस काल खण्ड में जैन मुनियों द्वारा प्रस्तुत की गई है। परवर्ती काल में कबीर दास के नाम से भी कुछ 'फाग' हिंदी में उपलब्ध होते हैं। लोकोत्सव होली पर भी आज लोग सामूहिक रूप में फाग (फागु) गाते हैं।

आप यह तो जानते हैं कि हिंदी में भी अपभ्रंश काव्यों से गेयता प्राप्त हुई है और यह कहा जा सकता है कि गेयता की एक सुदीर्घ परंपरा चर्या गीतों से आगे चलकर सूरदास (सूरसागर), तुलसीदास (गीतावली और विनय पत्रिका) से नवगीत तक चलती गई है।

बोध प्रश्न 2

1. आदिकालीन काव्य पद्धति का उल्लेख कीजिए।
2. आदिकालीन काव्यों में कथात्मकता का उल्लेख कीजिए।
3. आदिकालीन हिंदी काव्य की कथा पर प्रकाश डालिए।

7.5 आदिकालीन काव्य : अभिव्यंजना शिल्प

अब तक आप यह जान ही चुके हैं कि अपभ्रंश में लिखा जाने वाला काव्य हिंदी में लिखित काव्य की पूर्वपीठिका के रूप में आपके सामने आता है। हिंदी भाषा को अपनाते हुए अपनी प्रकृति के अनुसार विकसित किया गया मौलिक रूप भाषागत गहराइयों में जा नहीं पाया और न आवश्यकता ही हुई। आप इतना अवश्य जान लीजिए कि अपभ्रंश और हिंदी-दोनों भाषाओं में बहुत सा साम्य और वैषम्य रहते हुए इनमें लिखित काव्य में अधिकांशतः साम्य है।

7.5.1 काव्य रूप वशिष्ट्य

अपभ्रंश साहित्य के अंतर्गत यह बात आपके लिए ध्यान देने योग्य यह है कि रीतिकालीन अतिशयता और उहात्मक विरहवर्णन पर चर्चा के समय फारसी भाषा का प्रभाव माना जाता है, किन्तु यह वास्तविकता है की भारतीय काव्य की मूल आत्मा की आंतरिक भावधारा के मूल में अपभ्रंश भाषा के काव्य को हम विस्मृत कर जाते है।

अपभ्रंश भाषा के काव्य रूपों के सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन विचारणीय है जिसमें वे कहते हैं कि , वस्तुत:छन्द, काव्यरूप, वक्तव्य, वस्तु, कवि रू ियां और परम्पराओं की दृष्टि यह साहित्य अपभ्रंश साहित्य का बढ़ावा है। (हिंदी साहित्य का आदिकाल, पृ०67)। लेकिन इस कथन में परिवर्तन अनिवार्य प्रतीत होता है और वह भी ये कि आचार्य के विचारों में आगत, वक्तव्य, वस्तु या भाव-धारा के स्थान पर काव्य रूपों की बात की जानी चाहिए। अपभ्रंश काव्यधारा में रासों गेय रूपक के वाक्यरूप के अतिरिक्त फागु, चांचरी, विलास, चरिउ, आदि भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस संबंध में कहा है कि लिखने वालों की संख्या कम थी, क्योंकि लड़ाई भी जाति विशेष का पेशा मान ली गई थी। देश रक्षा के लिए या धर्मरक्षा के लिए समूची जनता के सन्नद्ध हो जाने का विचार ही नहीं उठता था। लोग क्रमश:जातियों और उपजातियों, सम्प्रदायों और उप-सम्प्रदायों में विभक्त होते जा रहे थे। लड़ने वाली जाति के लिए सचमुच चैन से रहना असंभव हो गया था। निरंतर युद्ध के लिए प्रोत्तसाहित करने को भी एक वर्ग आवश्यक हो गया था। चारण इसी श्रेणी के लोग थे। इनका कार्य ही था हर प्रसंग में आश्रयदाता के युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देने वाली घटना- योजना का अविष्कार। (हिंदीसाहित्य की भूमिका)

7.5.2 रस विवचन

आदिकाल में वीरगाथाओं में वीर और श्रृंगार रस का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है। तद्युगीन काव्य में वीररस का सुनहरा परिपाक हुआ है । आप तद्युगीन परिस्थितियों में स्वयं अनुभव कर सकेंगे कि उस काल में युद्ध ही एकमात्र जीवन ध्येय था। चाहे सत्ता का विस्तार हो या अपनी दृष्टि में चढ़ी नायिका की प्रगति अथवा अपने आश्रय में अधीन छोटे राजाओं में अपनी प्रभुत्व, वीरता और शौर्य का प्रभाव जमाए रखने के लिए युद्ध ही एकमात्र साधन रह गया था। इस वातावरण में आबाल-वृद्ध

में युद्ध के लिए अदम्य उत्साह बना हुआ था। आल्हा (परमाल रासो) जैसे लोककाव्य में कवि कहता है –

बारह बरस लैं कूकर जिए और तेरह लौ जिये सियार।

बरस अठारह छत्री जीवै आगे जीवन को धिक्कार।।

यानी युद्ध ही जीवन का एक मात्र ध्येय रह गया था। आप यहाँ यह भी देखेंगे कि युद्ध मात्र सत्ता विस्तार या क्षत्रिय जीवन सामर्थ्य का उद्देश्य भर नहीं था, बल्कि इस प्रकार के युद्धों के मूल में चारण या राज्याश्रित कवियों ने नारी की कल्पना की है और जब नारी काव्य का केन्द्र बिन्दु हो तो निश्चित ही श्रृंगाररस का आत्मबल भी होगा ही। यही कारण हैं कि आदिकालीन काव्यों में अधिसंख्य रूप में श्रृंगार रस का निरूपण मिलता है। यदि काव्य रूप की चर्चा की जाए तो रासो ऐसे काव्य ग्रंथ के रूप में हमारे सामने आते हैं जिनमें श्रृंगार रस निरूपण ही हुआ है। इस कालखण्ड के काव्य के मूल में नारी लिप्सा ही युद्ध का कारण बनती दिखाई देती है तथा एक प्रकार के प्रेमोन्माद की अभिव्यक्ति इस प्रकार के काव्यों में दिखाई पड़ती है। इस प्रेमाभिव्यक्ति में न तो किसी प्रकार की उदात्तता है और न राष्ट्रीयता का सहज उल्लास जिसके कारण युद्ध की संभावना देखी जा सके।

वीर काव्यधारा के साथ श्रृंगार रस के चित्रण की दो प्रमुख स्थितियां उपलब्ध होती है- संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार। दूसरे में जहाँ प्रकृति का सान्निध्य लेकर षड्ऋतु वर्णन या बारहमासा द्वारा विरह व्यंजना की काव्य शास्त्रीय परंपरा का अनुपालन आदिकालीन कवियों में मिलता है, वहीं संयोग श्रृंगार में नायिका का नख-शिख एवं रति सुख चित्रण किया गया है। बसंत-विलास में इसी प्रकार के वर्णनों की बहुलता है। आदिकालीन काव्यों में वीर और श्रृंगार रस निरूपण के इतर द्वितीय वरीयता में शांत एवं हास्य रस को माना जा सकता है . शांत एवं हास्य रस का परिपाक अपभ्रंश और हिंदी भाषा में लिखित काव्यों में उपलब्ध होता है। आपको आचर्श्य होगा कि अधिसंख्य जैन चरितों (अपभ्रंश में उपलब्ध) में जहाँ शांत रस का प्रतिपादन हुआ है, वहीं हास्य रस का भी प्रतिपादन इन रासो काव्यों में उपलब्ध है। इस दृष्टि से परवर्ती जैन रासों के रूप में अंकिड़ रासों, ऊदर रासो, छछूँदर रासों आदि आ सकते हैं।

7.5.3 अलंकार विधान

आदिकालीन काव्य सर्जना में कवियों ने काव्यशास्त्र की प्रचलित परम्परा का अनुगमन करते हुए **उक्तव्यक्ति प्रकरण** कथित दिशा-निर्देशों को स्वीकार किया है। इसीलिए आदिकाल के तथा कथित वीरगाथात्मक रासो काव्यों अथवा जैन मुनियों द्वारा रचित चरित (चरिउ) काव्यों में सर्वाधिक एवं सटीक रूप में अलंकारों का प्रयोग मिलता है। आप यह जान पायेंगे कि इस कालखण्ड के कवियों ने कहीं भी अलंकारों का प्रयोग वस्तु तथा रूप की तीव्र व्यंजना बहुत ही कलात्मक रूप से की है तथा आप यह भी पायेंगे कि आदिकालीन कृतियों में प्राय: सभी पारंपरिक अलंकार विद्यमान हैं . वास्तव में इन अंलकारों की आवश्यकता इन कवियों द्वारा कथित अत्युक्ति एवं

अतिश्योक्ति के लिए रही है। तभी तो रासोकार चंदबरदाई रूपकातिश्योक्ति अलंकार का प्रयोग इस रूप में करते हैं –

मनहुं कला ससिमान, कला सोलह सो बन्निय।।

बाल बसे ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय।।

राजकुमारी पदमावती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए महाकवि चंद बरदाई कहते हैं कि पदमावती का सौन्दर्य देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो चंद्रमा अपनी सोलह कलाओं से युक्त हो। बाल्यावस्था में ही उसके अपूर्व सौन्दर्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो चंद्रमा ने उसी अमृत रस का पान किया है अर्थात सौन्दर्य प्राप्त किया है। सादृश्य विधान का एक चित्र ोलामारू रा दूहा में दृष्टव्य है –

ा ी एक सन्देस ड़उ , प्रीतम कहियो जाय ।

सा धनि जलि कुइला गई, भसम ू सी आय ।।

अनुप्रास भी छटा भी देख सकते हैं आप –

बज्जिय घोर निसान राम चौहान चहुदिसि।

सकल सट सामंत समर बल जंत्र तंत्र तिसि।।

उदाहरण अलंकार का एक रूप सरहपा करते हैं –

आगम वेअ पुरोहि, पंडिअ भाषा वहन्ति।

पक्क-सिरीफले सलिअ जिम, बहेरीअ भमन्ति।।

अर्थात आगम, वेद पुराण को ही सब कुछ मानकर विद्वतजन उन्हें ोते फिरते हैं जिस प्रकार श्री फल के बाहर ही भौंरें घूमते हैं –

उपमालंकार दृष्टव्य है –

गय मत है चंत कुसंह जो अष्टिई हसंतु।

ऐसा पति दीजिए जो मतवाले निरकुंश हाथियों से हँसता हुआ जा भिड़े।

दूसरा उद्धहरण है –

गति गंगा, मति सरसती, सीता सील घुमाई।

महिला सरहर भारूई अवर न दूजी काइ।।

अर्थात जिसकी पति तनाव की गंगा के समान प्रगतिशील स्वभाव है वैसी श्रेष्ठ महिला मारू ही हो सकती है, दूसरी कोई अन्य नहीं।

या फिर –

आध वदन ससि विहसि देखावलि , आध पियहि निज बाहु।

कछु एक मान बलाहक झांपल , किछुक गरासल राहू।

यानी नायिका ने अपना चेहरा हाथ से छिपा रखा है, उसका चंद्रमुख आधा छिपा हुआ है और आधा दिखाई दे रहा है मानो चन्द्रमा के एक भाग को बादल ने ँक दिया है और एक भाग को राहु ने।

7.5.4 गयता एवं छन्द- प्रयोग

उक्त अध्ययन के आधार पर आप संक्षिप्त रूप में यह भली प्रकार समझ चुके हैं कि आदिकाल का अभिव्यंजना शिल्प राजाश्रित कवि कौशल की अभिव्यंजना है, क्योंकि राज दरबार में अपनी पहचान और व्यक्तित्व की छवि-निर्माण की दशा में राजाश्रित कवियों को अपने काव्य-कौशल का चमत्कार दिखाना अनिवार्य था और प्रत्येक दरबारी कवि स्पर्धा के स्तर पर अपनी अभिव्यंजना शक्ति के कौशल पर ध्यान देता था।

अभिव्यंजना कौशल को श्रेष्ठता के लिए जहाँ शास्त्रीय परंपरा का अनुपालन करने की तत्परता कवि कर्म का अंग थी वहीं काव्य के गेय तत्व की सिद्धता भी अनिवार्य थी। इसलिए आदिकाल के कवियों ने गेयता पर विशेष बल दिया। जैन रास काव्य परम्परा की प्रारंभिक स्थिति में रास के प्रदर्शन के स्तर कवि द्वारा उसकी गेयता (उच्चारण शक्ति) के साथ आंगिक संचालन भी अपेक्षित था । आदिकालीन काव्य का जो रूप विकसित हुआ, वह रास परम्परा के अनुरूप ही था। इसलिए आदि काव्य के काव्यरूपों में रास के इतर फागु और चाचरि, दूहा, चरिउ आदि सभी गेय परम्परा का अनुसरण करते हैं । यदि आपको विद्यापति की पदावली के सम्बन्ध में पूछा जाएगा तो सम्भवत: आपका उत्तर-परावली की गेयता ही होगा। पद गायन की परम्परा अतिप्राचीन है। वैदिक ऋतुओं का भी सस्वर गायन किया जाता था। जब प्रश्न आदिकाल के अपभ्रंश या हिंदी काव्य का हो तो भी आपका उत्तर सम्भवत: गेयता ही होगा।

आदिकालीन कथा (चरित) काव्य गीतिकाव्य की श्रेणी में ही आते हैं। फिर वह काव्य चाहे राजा की कीर्ति वर्णन का हो या किसी लोकाश्रित प्रेमगाथा का, उसमें कवि को अपनी गति मेघा का परिचय भरे दरबार में देना होता था। इसलिए इसकी गयेता पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना भी अनिवार्य था तो उसके साथ संगीतपरक गहन ज्ञान का अनुभव लेकर राग-रागिनियों का निर्देशन भी। इसका एक कारण यह भी था कि राजा को उस राजश्रित कवि की हस्तलिखित पाण्डुलिपि पढ़ने और समझने का अवसर था और न उसके दरबारियों को इसके लिए अवकाश था। अत: गेयता द्वारा ही कवि अपने कृति की प्रस्तुति प्रभावी ंग से राज-दरबार में कर सकता था।

यही कारण है कि गेयता की कृति के कारण आदिकाल के विविध काव्य ग्रंथों में लयात्मकता एवं गेय सौन्दर्य का विधान संरचनात्मकता का अंग था। इस दृष्टि से आदि काव्य के रूप में 'पृथ्वीराजरासो' की गणना जहाँ चरित्र काव्य के रूप में की जाती है, वहीं उसे गेयकाव्य की श्रेणी में भी रखा जाता है। उससे पूर्व संदेशरासक में भी, नागकुमार चरित, करकण्डु चरित में भी गेयता के सूत्र उपलब्ध हैं। रासक या रास,जैन रासो, परवली, फागु, चांचर आदि में गेयता विद्यमान है। उनमें से कुछ कृतियों को नर्तक समूह द्वारा लय-तालबद्ध नृत्य के साथ प्रस्तुत भी किया जा सकता है। यह गेय परंपरा पूर्व में सिद्धनाथ कवियों में भी विद्यमान थी। परवर्ती कवियों एवं हिंदी साहित्य के परवर्ती काल खण्डों की काव्य कृतियों में देखा जा सकता है।

पुष्पदंत रचित महापुराण के एक उद्धरण में गेयता द्रष्टव्य है –

घूलि घूसरेवा वर मुक्क सरेणतिणा मुरारिणा

कील रस वसेण गोपालय-गावी हियय हरिणा

रंग तेण रमत रमंते , भविष्य मंथ घरिउ भमंतअणंते।

बौद्ध-सिद्धकाव्य के रूप में सरहपा के काव्य में गेयता दृष्टव्य है

जहि मण पवन ण संचरइ, रवि ससि नाहीपवेश।

तहि बढ़ चित्त विसाम कसु , सरहे कंहिउ उएस ।

हेमचंद्र के व्याकरण में आए काव्य के उदाहरणों में यही गेयता आप पाएंगे-

भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि म्हारा कंतु।

लज्येतं तु वयंसि अहु जइ भग्ग घर एंतु।।

संदेश रासक में भी वही गेयता उपलब्ध है –

संदेसऽउ सवित्थरउ पर मइ कहणुं न जाइ

जो फालंगुलि मूँटउउ तो बाहड़ी समाइ।।

बोध प्रश्न 3

1. आदिकालीन हिंदी काव्य का अभिव्यंजन पक्ष क्या है ?
2. आदिकाव्य का रस विवेचन प्रस्तुत कीजिए।
3. आदिकाव्य का अलंकार-विधान स्पष्ट कीजिए।
4. आदिकाव्य की गेयता एवं दन्दविधान का उल्लेख कीजिए।

छन्दविधान - अभी तक आप आदिकालीन काव्य के अभिव्यंजना शिल्प के विविध पक्षों का परिचय पा चुके है। जब आदिकालीन काव्य में गेयता है, लय है, रागात्मकता है , शास्त्रीय स्तर पर काव्य शास्त्र में पूर्व निर्धारित और **वर्ण रत्नाकर** एवं **उक्ति व्यक्ति प्रकरण** प्रथित परंपराओं का पालन भी कवि कर्म की अनिवार्यता में आप देख चुके हैं तो हम आपको आदिकालीन काव्यों में प्रयुक्त छन्दों का संक्षिप्त रूप में उल्लेख करेंगे।

आपको यह जानकार आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि अपभ्रंश काव्यों में मात्रिक छन्दों का जो सूत्रपात हुआ था, उसने तुकांए छंदों की प्रथा का प्रचलन हुआ और आजकल हिंदी काव्य का कसौटी बना है। अपभ्रंश में प्राय: पद्धति छन्द का प्रयोग चरित काव्यों में किया जाता रहा है तथा एकरसता तोड़ने के लिए बीच में दूसरे छन्दों दोहा, रास, कब्ब, चौपाई जैसे-जैसे बड़े-बड़े छन्द अपनाए गए। ठीक यही क्रम हिंदी के आदिकाव्यों में अपनाया गया है और उनमें चौपाई प्रबंध काव्य के लिए और सवैया , छप्पय , कुण्डलिया आदि का प्रयोग परवर्ती काल तक होता रहा है। इनमें कुछ अन्य छन्द नामों को भी सम्मिलित किया जा सकता है जिनमें प्रमुख रूप से त्राटक (तोटक) गाथा, आर्या, सटटक आदि छंद है जो काव्य की कलात्मकता में वृद्धि करने वाले छन्द हैं ।आदिकाल के वीरगाथात्मक चरित (कथा) काव्यों में अलंकारों का प्रचुर एवं सटीक उपयोग किया गया है। वहीं छन्द का भी व्यापक और बहुल प्रयोग किया गया है। यह छन्दगत बहुलता की संक्षिप्त सूची के स्तर पर इतना ही कहा जा सकता है कि आदिकालीन काव्यों में दूहा, चौपाई , गाहा (गाथा), रोला , छप्पय , कुडलियां, रासा आदि छन्दों का प्रमुखता से प्रयोग किया गया है। जब काव्य में गेयता, लयात्मकता आदि सन्निहित है तो उसकी गतिशीलता का निर्धारक छन्द प्रयोग अनिवार्य हो जाता है। छंद परिवर्तन भी काव्य में कौशल-वृद्धि के साथ कवि विशेष की सर्जनात्मकता का प्रतीक होता है। पृथ्वीराजरासो, भरतेश्वर बाहुबलि रास, उपदेश रसायन रास, चंदनबालारास, हमीररासो , ोला मारू रा दूहा, बसंत विलास आदि काव्यों में छन्दों के विविध प्रकार के प्रयोग उपलब्ध है।

7.6 सारांश

आप इस इकाई का अध्ययन करके यह अवश्य समझ होंगे कि अपभ्रंश में लिखित काव्य हिंदी में लिखे जाने वाले आदिकालीन काव्यों की पूर्व पीठिका के रूप में हमारे सामने आते हैं, यही कारण है कि चाहे वे चरित काव्य है या भक्तिकाव्य अथवा श्रृंगार काव्य सभी में कथात्मक स्वरूप, कथा अभिप्रायों के प्रयोग काव्य पद्धति द्वारा आदिकालीन काव्यों के काव्य रूपों, रस-विवेचन, अलंकार विधान, गेयता और छन्द प्रयोग आदि में अपभ्रंश में लिखित पूर्व काव्यों का अनुसरणमात्र ही नहीं रहा है, परन्तु अभिव्यंजना शिल्प के विविध आयाम अपभ्रंश काव्यों के समानांतर उपलब्ध होते हैं ।

7.7 शब्दावली

1.	अभिव्यंजना शिल्प	:	अभिव्यक्ति का ंग
2.	चित्तवृत्ति	:	मन के भाव
3.	चरित काव्य	:	ऐसा काव्य जिसमें किसी व्यक्ति का चित्रण ही मुख्य विषय हो।
4.	पदावली	:	पद शैली में रचित काव्य
5.	रासाबंध	:	रास पद्धति में काव्य रचना के लिए प्रयुक्त छन्द विशेष

7.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	:	हमारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली भाग 2,3
2.	रामचंद्र शुक्ल	:	हिंदी साहित्य का इतिहास
3.	हमारी प्रसाद द्विवेदी	:	हिंदी साहित्य की भूमिका
4.	विजय कुलश्रेष्ठ अनीता चौधरी	:	हिंदी साहित्य का इतिहास
5.	शिव कुमार शर्मा	:	हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियॉं

7.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. हिंदी साहित्य के आदिकालीन काव्य का समीक्षात्मक विवेचन कीजिए।
2. आदिकालीन काव्य की पद्धतियों का निरूपण कीजिए तथा आदिकालीन काव्य के अभिव्यंजना शिल्प का विवेचन प्रस्तुत कीजिए

इकाई 8 हिंदी साहित्य का आदिकालीन काव्य : भाषिक अभि-विवेचन

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 अपभंश भाषा काव्य-पृष्ठभूमि
8.3.1 अपभ्रंश काव्य-धारा का स्वरूप
8.3.2 अपभ्रंश और हिंदी साहित्य का अंत: सम्बन्ध
8.4 आदिकालीन काव्य : भाषा का स्वरूप
8.4.1 अपभ्रंश और देश भाषा
8.4.2 अपभ्रंश, अवहट्ठ और पुरानी हिंदी
8.4.3 अपभ्रंश भाषा का काव्य
8.5 विशिष्ट आदिकालीन रचनाएं और उनकी भाषा
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.9 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

अब तक के अध्ययन के उपरांत आप यह जान चुके हैं कि आदिकाल के नामकरण के अन्तर्गत आनेवाले काव्य का स्वरूप संक्रमणकालीन राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का सर्जनात्मक परिणाम सामने लाता है जिसका स्रोत पूर्व पीठिका के रूप से अपभ्रंश भाषा है। आज यह सर्वमान्य हो चुका है कि हिंदी भाषा का विकास तत्कालीन प्रचलित अपभ्रंश भाषा से हुआ है।आप यह अध्ययन के उपरांत पा चुके हैं कि इस कालखण्ड में भाषा और साहित्यिक प्रवृत्तियों के विकास का स्वरूप भी संक्रमण की ही देन है क्योंकि रासो काव्य परंपरा के साथ ही रासेतर काव्य परंपरा की कृतियाँ भी इस कालखण्ड की उपलब्धियों में गणनीय है।

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे की हिन्दी साहित्य के प्रथम काल-खण्ड आदिकाल में लिखित काव्य की भाषिक-प्रकृति संक्रमणशील एवं बहु-भाषिक थी . भाषा के आधार पर यह काल-खण्ड अपना विशेष महत्त्व रखता है . पुरानी हिन्दी,अपभ्रंश ,विभिन्न प्राकृतों के मध्य साहित्य के क्षेत्र में संक्रमण की स्थिति दिखाई देती है. प्रस्तुत इकाई में आप आदिकाल की भाषिक-प्रकृति का वुभिन्न विद्वानों द्वारा किये गए विवेचन का अध्ययन करेंगे.

8.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करते हुए आप जानेंगे कि –

- आदिकालीन काव्य रचनाओं की पूर्व पीठिका कैसी थी ?
- अपभ्रंश और हिंदी भाषा के अंत: संबंध कैसे थे ?
- तत्कालीन अपभ्रंश तथा अन्य प्रचलित भाषाओं का स्वरूप क्या था ?
- अपभ्रंश भाषा के प्रसिद्ध काव्यकार और उनके भाषा-प्रयोग का रूप था।
- आदिकालीन काव्य की भाषा का स्वरूप क्या था ?

8.3 अप्रभंश भाषा काव्य-पृष्ठभूमि

आप यह तो पहले ही जान चुके हैं कि हिंदी साहित्य और उसके इतिहास का आरंभ दसवीं शती से माना जाता है और कुछ विद्वान – चंद्रधर शर्मा गुलेरी और राहुल सांकृत्यायन उसे सातवीं-आठवीं शती से मानते हैं। इसका कारण यह है कि वे अपभ्रंश साहित्य की गणना भी हिंदी साहित्य के अंतर्गत ही करना चाहते हैं और अपभ्रंश के कवि स्वयंभू तथा पुष्पदंत को

हिंदी का आरंभिक कवि मानते हैं। यह अपभ्रंश भाषा भारतीय आर्य भाषा के विकास का परिणाम है जिसे हम निम्मांकित रूप में देख सकते हैं –

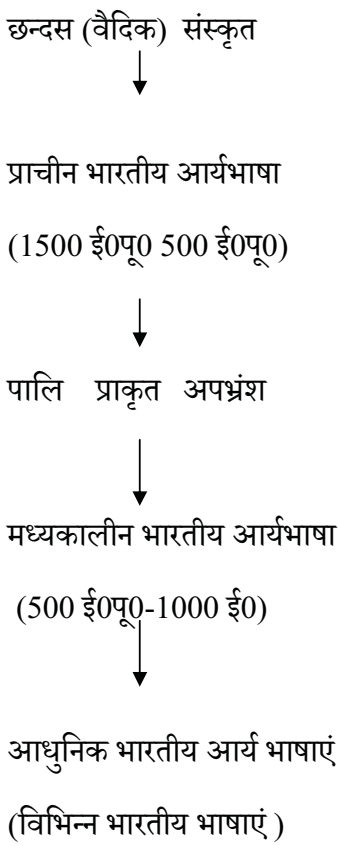

वैदिक-संस्कृत जैसी प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं से ही पालि, प्राकृत और अपभ्रंश जैसी मध्ययुगीन भारतीय भाषाओं का विकास हुआ। अपभ्रंश ही आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की की जननी कही जा सकती है। हिंदी भी उन्हीं में से एक है, जिसे अपभ्रंश की परिनिष्ठित साहित्य सर्जना का दाय मिला है। आपको यह जानकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है कि आठवीं-नवीं शती में अपभ्रंश साहित्यिक और परिनिष्ठित भाषा के रूप में राष्ट्रकूट राजाओं (बंगाल के पाल और मान्यखेट के) की शक्ति एवं संरक्षण का लाभ अपभ्रंश साहित्य को मिला। सरहपा, कण्हपा आदि सिद्धों, पुष्पदंत और स्वयंभू आदि भी राष्ट्रकूटों के संरक्षण में अपनी साहित्य-सर्जना में निमग्न रहे। आगे चलकर सोलंकी ,चालुक्य ने अपभ्रंश काव्य को प्रोत्साहित किया। अपभ्रंश को हिंदी साहित्य में सम्मिलित करने के विषय में विद्वान एकमत नहीं है। कुछ विद्वान अपभ्रंश की ही पुरानी हिंदी कहते हैं। आप गुलेरी और राहुल के मन से

परिचित हो चुके हैं फिर भी विवाद के लिए अवकाश तो हैं। आचार्य शुक्ल उसे प्राकृताभास हिंदी कहते हैं तथा पं.चंद्रधर शर्मा गुलेरी उसे पुरानी हिंदी का नाम देते हैं।

8.3.1 अपभ्रंश काव्य-धारा का स्वरूप

अपभ्रंश भाषा के विषय में इतना आप इतना तो जान चुके हैं कि वह हिंदी के आदिकालीन काव्य की पूर्व पीठिका बनी । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने जिस साहित्य को धार्मिक और संप्रदायपरक साहित्य मानकर आदिकाल के साहित्य के अन्तर्गत स्वीकार नहीं किया था, वही सिद्धों, नाथों और जैन संतों का साहित्य अपनी साहित्यिक मान्यताओं में भी परिगणित हो रहा है और वह आदिकाल की काव्य सामग्री के रूप में अपभ्रंश भाषा में ही लिखा गया था। संक्षिप्त में इसका उल्लेख किया जा सकता है –

सिद्ध साहित्य रूप- सिद्ध साहित्य बौद्ध धर्म की परम्परा का लिखित साहित्य है और वह एक ऐसे धार्मिक आन्दोलन के रूप में तांत्रिक क्रियाओं में आस्था तथा मंत्रों की सिद्धि के प्रयास से सिद्धों द्वारा जनभाषा में लिखित वास्तव में बौद्ध धर्म के वज्रयान के प्रचार करने हेतु रचा गया। यह सिद्ध साहित्य 'दोहाकोश' और 'चर्यापद' के रूप में उपलब्ध है। इस सिद्ध साहित्य को अर्धमागधी अपभ्रंश के निकट माना जाता है जो अपभ्रंश और हिंदी के संधिकाल की भाषा कही जा सकती है ।

नाथ साहित्य रूप –

नाथ संप्रदाय को सिद्धों की परंपरा का ही विकसित रूप माना जाता है। नाथ साहित्य के प्रवर्त्तक गोरखनाथ माने जाते हैं। इस संप्रदाय के रचनाकारों ने सिद्ध साहित्य को अपभ्रंश जैसी जनभाषा में ही अधिक पल्लवित किया था लेकिन उसे सिद्ध साधना से अलग और शैव मत के सिद्धान्तों के स्तर पर स्वीकार किया गया है और शिव को आदिनाथ कहा जाता है। इनके मार्ग में संयम तथा सदाचार पर बल दिया गया है। नाथ संप्रदाय ने निवृत्ति मार्ग पर बल दिया है और गुरू को मार्गदर्शक माना है। शिष्य विरागी होकर प्राण-साधना से कुंडलिनी जागृत कर मन को अन्तर्मुखी बनाकर भीतर ही परमानंद प्राप्त करता है। नाथ पंथियों का काव्य सिद्ध साहित्य की ही भांति सिद्धान्त प्रति पादनार्थ उपलब्ध होता है। इसमें प्रतीकात्मक रूप में सूर्य और चंद के योग (मिलन) को हठयोग कहा जाता है। योगियों तत्कालीन प्रचलित अपभ्रंश में ही अपनी रचनाएं प्रस्तुत की है, यथा –

जाणि के अजाणि लेय बात तूं ले पिछाणि।
चेले हो इआं लाभ होदूगा गुरू होइआं हाणि।।

जन साहित्य –

आदिकाल के काव्य खण्ड में आचार्य शुक्ल द्वारा अपनी गणना में अमान्य किया गया तीसरा धर्म साहित्य जैन-संतों द्वारा लिखित था लेकिन समग्र साहित्य और धर्माविषयक सिद्धान्तों के रूप में नहीं लिखा गया। सामान्य जनता तक धर्म प्रचारर्थ साहित्य कथापरक और चरित्र व्याख्या के रूप में भी उपलब्ध है। जैन मुनियों ने अपने धर्म का प्रचार लोकभाषा (अपभ्रंश) में किया था। इस प्रकार की रचनाएं रास, फागु, चरिउ जैसी विविध काव्यरूपों में प्राप्त होती हैं। स्वयंभू रचित पउम चरिउ और अरिष्टनेमि चरित और पुष्पदंत रचित णायकुमार चरित और त्रिसाटिव्महापुराण है यानी तेईस तीर्थकारों का महापुराण इन कोटियों की रचनाये हैं। जैन काव्यों में इस प्रकार का लेखन जन या लोकभाषा यानी अपभ्रंश में किया गया था।

8.3.2 अपभ्रंश और हिंदी साहित्य का अंत: सम्बन्ध

हिंदी के प्रारंभिक काल का साहित्य विविधोन्मुखी और समृद्ध है। आप अपभ्रंश काव्य के विषय में इस इकाई में बहुत कुछ जान चुके हैं कि जिन विषयों को कवि ने अपनी कविता का माध्यम बनाया है, उनमें पौराणिक कथाएं (रामकाव्य, कृष्ण काव्य, तीर्थंकरों का चरित्राख्यान), धार्मिक रू ियों और बाह्याडम्बरों का विरोध ऐतिहासिक या लोकनायक का चरित्र (चरित्र काव्य), शौर्य और श्रृंगार प्रमुख है। इस परंपरा को हिंदी काव्य परंपरा ने और आगे बढ़ाया। हिंदी में वीरगाथात्मक काव्य लिखे गए। जिनमें अपभ्रंश के चरित्रकाव्यों की झलक मिलती है। इसी प्रकार सिद्धनाथ कवियों की वाणी संतकाव्य की पूर्व पीठिका ज्ञात होती है। हिंदी के काव्य वीसलदेव रासो और ोला मारू रा दूहा, संदेश रासक की परंपरा में ही आते हैं। आप यह भी जान चुके हैं कि अपभ्रंश जहाँ हिदीं की जननी है, वही साहित्य सर्जना परक विविध विधाओं की प्रेरक भी है। जहाँ अपभ्रंश का परिनिष्ठित साहित्यिक स्वरूप विविध रचनाओं के स्तर पर हिंदी का मार्गदर्शक है, वहीं उसकी प्रकारन्तर से साहित्य बनती लोककथा ने भी हिंदी साहित्य-सर्जना के लिए कवियों को नई भूमि प्रदान की है।

अब आपके समक्ष यह रखना भी अधिक उपयुक्त होगा कि हिंदी भाषा का उद्गम लोकभाषा अपभ्रंश से ही हुआ है, जिसे विद्यापति तो देसिल बयना का नाम दे चुके थे । कई विद्वानों ने भौगोलिक आधार पर भी अपभ्रंश के कई भेद किए है जैसे मागधी, अर्ध मागधी कालान्तर में शौरसेनी जिसके भी पूर्वी एवं पश्चिमी भेद किए गए हैं। फिर महाराष्ट्री, पैशाची, ब्राचड़ आदि भी है। हिंदी का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से माना जाता है। अब आप भली प्रकार समझ गए हैं कि अपभ्रंश और हिंदी के अंत: संबंध बहुत गहरे हैं।

बोधप्रश्न

1 . आदिकाल की पूर्व-पीठिका पर प्रकाश डालिए।

2 .अपभ्रंश भाषा काव्य की पृष्ठभूमि बताइए।

3 .अपभ्रंश काव्यधारा का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

4 .अपभ्रंश एवं हिंदी साहित्य के अन्त:संबंध स्पष्ट कीजिए।

8.4 आदिकालीन काव्य : भाषा का स्वरुप

अभी तक आप अपभ्रंश और हिंदी साहित्य के अन्त:संबंधों के विषय में अध्ययन कर रहे थे। यहाँ हम आपको आदिकालीन काव्य की भाषा के स्वरूप के संबंध में यह स्मरण दिलाते हैं कि अभी हम गत अनुच्छेद के प्रारंभ में यह उल्लेख कर चुके हैं कि आदिकालीन काव्य की भाषा की पूर्व पीठिका के लिए अपभ्रंश भाषा ही एकमात्र आधारभूमि रही है। अब अग्रिम अनुच्छोदों के अंतर्गत आदिकालीन काव्य की भाषा के संबंध में कुछ बताया जा रहा है –

8.4.1 अपभ्रंश और दश भाषा

भाषा वैज्ञानिक आधार पर आपको यह बता दें कि अपभ्रंश भाषा मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा परिवार (500 ई0पू0 से 1000 ई0) की भाषा है। संस्कृत आचार्यों तथा अपभ्रंश भाषा कवियों ने अपभ्रंश के सुप्रसिद्ध कवि स्वयंभू और पुष्पदंत ने अपनी भाषा को लोक (जन) भाषा या देश भाषा कहा है वस्तुत: प्रत्येक युग में एक साहित्यिक भाषा होती है और उसके साथ अनेक लोकभाषाएं होती है। इन्हीं लोक भाषाओं से साहित्यिक भाषा विकसित होती है और अनेक लोक भाषओं से साहित्यिक भाषा जीवन का रस प्राप्त करती है और इस प्रकार यह जीवन्त बनी रहती है। जब साहित्यिक भाषा जनता से दूर हटती है और केवल पंडितों की भाषा रह जाती है, तब वह भाषा मृत हो जाती है और उसका स्थान कोई लोकभाषा ले लेती है। कालान्तर में यही लोकभाषा साहित्यिक भाषा बन जाती है तथा भाषा के विकास का यह क्रम लगातार चलता रहता है। आप जान चुके हैं कि किस प्रकार छन्दस (वैदिक) से संस्कृत, संस्कृत से पालि, पालि से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ है .इसी क्रम में वैदिक भाषा छन्दस , छन्दस से संस्कृत, फिर पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की विकास यात्रा पूरी हुई और अपभ्रंश साहित्यिक भाषा बन गई तो लोक या जनभाषा में साहित्य रचना आरंभ हुई जो निश्चित रूप से हिंदी का प्रथम रूप था।

आपके मन एक प्रश्न उठ सकता है कि – अपभ्रंश को देश भाषा कहा जाए या नहीं। यह बहुत ही विवादास्पद है। कुछ विद्वानों – पिशेल, ग्रियर्सन, सुनीतिकुमार चटर्जी आदि अपभ्रंश को देशभाषा मानते हैं जबकि याकोबी, कीथ, ज्यूल ब्लाख आदि विद्वान उसे देशभाषा नहीं स्वीकार करते। लेकिन देशभाषा न मानने वाले वे इतना अवश्य स्वीकार करते हैं कि अपभ्रंश में देशभाषा के अनिवार्य तत्व उपलब्ध हैं । निष्कर्ष रूप में यह कहना उचित होगा कि साहित्यिक प्राकृत का देशी भाषाओं के साथ संपर्क हुआ और इस प्रकार भारतीय आर्यभाषा की अपभ्रंश अवस्था आरम्भ होती है। इस संबंध में आचार्य शुक्ल का मत दृष्टव्य है ''जबतक भाषा बोलचाल में थी तब तक वह भाषा या देशभाषा कहलाती रही जब वह भी साहित्य की भाषा हो गई तब उसके लिए अपभ्रंश शब्द का व्यवहार होने लगा। ('हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ0 7)

8.4.2 अपभ्रंश, अवहट्ठ और पुरानी हिंदी

इकाई के इस भाग में आप जानेंगे की अपभ्रंश, अवहट्ठ या पुरानी हिंदी क्या है और उनमें क्या अंतर है ? यद्यपि आप देख ही चुके हैं कि हिंदी साहित्य में अपभ्रंश को सम्मिलित कर पाने में विद्वानों में मत-भिन्नता रही है। हिंदी साहित्य में अपभ्रंश को सम्मिलित करने का प्रश्न भी इससे ही संबंधित है। आप इतना तो जान ही चुके हैं कि अपभ्रंश पर प्राकृत का यथेष्ट प्रभाव था . इसमें भी दो मत नहीं है कि इसी प्रकार का प्रभाव संस्कृत भाषा पर छन्दस (वैदिक) का भी था। होता भी यही है कि जब कोई भी प्रचलित भाषा व्याकरण बद्ध होकर परिनिष्ठित बन रही होती है तो एक बोल-चाल की भाषा सामान्य जन के व्यवहार में आती है और कालान्तर में जब उसमें भी परिनिष्ठितिकरण आरंभ होता है तो भाषा साहित्य की भाषा बन जाती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपभ्रंश को 'प्राकृताभास हिंदी' कहा था, पुरानी हिंदी नहीं कहा तथा उन्होंने सिद्धों की उस भाषा को पुरानी हिंदी के रूप में स्वीकार किया था, जिसमें देशभाषा का पुट था। इसका अर्थ यह हुआ कि आचार्य शुक्ल के अनुसार देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश को वे पुरानी हिंदी स्वीकार करते हैं, जब कि चंद्रधर शर्मा गुलेरी की मान्यता है कि विक्रम की सातवीं शती से ग्यारहवी शती तक अपभ्रंश की प्रधानता रही और फिर वह पुरानी हिंदी में परिणत हो गई। इस कालखण्ड में (दसवीं शती के आस-पास) तत्सम शब्द बहुल लोकभाषा में मिलती है, जिसे पुरानी हिंदी अपभ्रंश अथवा का ही विकसित रूप माना जा सकता है। लेकिन नवीं , दसवीं शती तक अपभ्रंश भाषा की प्रधानता रही, जिस पर प्राकृत शब्दों का स्पष्ट प्रभाव आप देख सकते हैं उसे ही अपभ्रंश कहा जाता रहा है।आप यह भी देख सकते हैं कि नवी-दसवीं शती के बाद प्राकृत शब्दों से मुक्त होने की प्रवृत्ति बढ़ी और तत्सम शब्दों को ग्रहण किया जाने लगा। यही पुरानी हिंदी है।

अब आपके सामने प्रश्न उठ सकता है कि 'अवहट्ठ' क्या है ? आप यह देख ही चुके हैं कि प्राकृत और अपभ्रंश ग्रंथों में अपभ्रंश के कई नामों में से एक 'अवहट्ठ' भी है। मूलत: अवहट्ठ अपभ्रंश का पर्याय है . विद्यापति अपनी कीर्तिलता और कीर्तिपताका को 'अवहट्ठ' ही कहते हैं। देसिल बयना सब जन मिट्ठा तें तैंसन जप्पओं अवहट्ठा'(यानी बोलचाल की भाषा सबको मीठी (मधुर) लगती है। अत: मैं वैसे ही अवहट्ठ में अपनी कविता करता हूँ) इसका सीधा सा अर्थ आपको भी स्पष्ट हो जाता है कि देशी भाषा मिश्रित परवर्ती अपभ्रंश को अवहट्ठ कहा गया है। यही परवर्ती अपभ्रंश अददहमाण (अब्दुर्रहमान) ज्योतिरीश्वर ठाकुर आदि ने प्रयोग में ली है। अत: आप पूरी तरह समझ सकते हैं कि अवहट्ठ और पुरानी हिंदी में कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही देशी भाषा मिश्रित अपभ्रंश के पर्याय रूप से प्रयुक्त हैं।

8.4.3 अपभ्रंश भाषा का काव्य

अब तक आप समझ गए होंगे कि आठवीं से चौदहवीं शती तक आदिकालीन काव्य में साहित्य सर्जना की भाषा अपभ्रंश रही है। आपको यह जानकर भी आश्चर्य होगा कि सुंदर दक्षिण को छोड़कर समस्त भारत में इस काल में अपभ्रंश काव्यों की रचना हुई है। अपभ्रंश को साहित्य सर्जना की भाषा के रूप में गरिमा प्रदान करने में स्वयंभू प्रथम कवि माने जाते हैं और फिर पुष्पदंत तथा अन्य कवियों में जोइन्दु, रामसिंह, हेमचंद्र, सोमप्रभ जिनप्रभसूरि, राजशेखर, शालिभद्रसूरि अब्दुलरहमान, सरहपा और कण्हपा आदि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने चरितकाव्य, गीतिकाव्य, विरहकाव्य, रहस्य प्रधान काव्य तथा कथाकाव्य लिखे हैं।

आदिकालीन काव्य का भाषा-निरूपण - अब तक के अध्ययन के आधार पर आप इतना तो जान ही चुके हैं कि हिंदी में लिखे जाने वाले काव्यों की पूर्व पीठिका अपभ्रंश भाषा की है। लेकिन अपभ्रंश का साहित्यिक भाषा रूप विकसित होने के अनन्तर तत्कालीन लोक या जन भाषा जो अपभ्रंश का ही विकृत या विकसित रूप थी . यह बोलचाल की भाषा ही आगे पुरानी हिंदी या अवहट्ठ के रूप में विस्तार पाकर हिंदी साहित्य सर्जना की भाषा बनी है। बोल चाल की भाषा ने ही अपनी प्रकृति के अनुरूप अपभ्रंश से दाय तो प्राप्त किया पर कुछ भिन्नता के स्तर पर ही विकास मार्ग अपनाया था।

अब आपके समक्ष हिंदी के आविर्भाव का प्रश्न उभर सकता है तो हम आपसे यह उल्लेख करना चाहेंगे कि यह सर्वमान्य सत्य है कि अपभ्रंश से हिंदी की विभिन्न भाषाओं का विकास हुआ। पर इस विकास क्रम को किसी निर्धारित विधि या वर्ष से प्रतिपादित नहीं किया जा सकता। हिंदी भाषा का उद्भव तेरहवी शती के बाद हुआ माना जाता है, पर अपभ्रंश-संस्कारों से पूर्णत: मुक्ति और स्वतंत्र स्वरूप अर्जित करने में हिंदी को लगभग ढ़ाई सौ वर्ष लगे हैं। आप

जानेंगें कि पन्द्रहवीं शती के प्रारंभ से ही हिंदी अपना एक निजी स्वरूप ग्रहण कर सकी। वस्तुत: उपलब्ध कृत्तियों की भाषा के निरीक्षण से पता चलता है कि बारहवीं शती से ही अपभ्रंश अपनी मूल संशिलष्ट प्रकृति से हटकर विशिष्टताओं की ओर अग्रसर हुई और चौदहवीं शती के अन्त तक भी वे रचनाएं भी हिंदी के आदि रूप का प्रतिनिधित्व करती है, जिनकी भाषा अपभ्रंश के संस्कारों से अनुप्राणित हुई थी। अब अध्ययन निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर करते हैं –

1. भाषा की बहुरूपता - अपभ्रंश भाषा हिंदी की पूर्व पीठिका की बात आप पूरी तरह जान चुके हैं। अपभ्रंश का परिनिष्ठित रूप तत्कालीन समय में विशिष्ट काव्य रचनाओं का मूल केंद्र रहा है लेकिन उस कालखण्ड में परिनिष्ठित अपभ्रंश भाषा के इतर भी तत्कालीन प्रचलित अपभ्रंश अवहट्ठ अथवा पुरानी हिंदी जैसी भाषाओं में भी काव्य रचनाएं की जा रही थी। आचार्य शुक्ल ने केवल बारह ग्रंथों को ही आदिकाल के नामकरण का आधार बनाया था और परवर्ती काल में खोज की गई जो और समग्री आदिकाल के काल खण्ड में प्राप्त हुई है। वह संभवत: आचार्य शुक्ल के दृष्टि-केन्द्र में नहीं थी और यह उनके इतिहास लेखन की सीमा भी थी, पर परवर्ती साहित्येतिहासकार ने उस सामग्री का उपयोग किया है जिन्हें उस काल खण्ड में प्रचलित अपभ्रंश भाषा के अन्य रूपों अवहट्ठ और पुरानी हिंदी अथवा लोकभाषा में उपलब्ध रही है। अत: आदिकाल की काव्य की भाषा की बहुरूपता पर भी ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। इसका परिचय आज उपलब्ध स्रातों और जैन रासो (कथात्मक) काव्यों के आधार पर अपने महत्व की स्थापना कर सकती है। इसमें दो मत नहीं हो सकते कि साहित्यिक भाषा के सामानांतर लोकभाषाओं की जो अपनी धाराएं प्रवाहित होती हैं वे भी कालान्तर में साहित्यिक भाषा का रूप ले लेती हैं । इसीलिए उस काल की पूर्वापर सीमाओं में भाषा की बहुरूपता देखी जा सकती हैं ।

2 . सिद्धों नाथ काव्य-भाषा - आदिकाल के अंतर्गत आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं परवर्ती साहित्येतिहासकारों ने बौद्ध-सिद्धों और नाथों की विशिष्ट रचनाओं को आधार सामग्री के रूप में सम्मिलित किया है तो उनकी तद्युगीन काव्यभाषा का मूल्यांकन अनावश्यक नहीं समझा जा सकता। अत: आपको सहरपा (8वीं शताब्दी) की चर्यापद-रचनाओं की भाषा का परिचय कराया जा रहा है :-

जइ रागग्गा विअ होइ मुत्ति ता गुणह सिआलह
लोभुपाटणे अत्थि सिद्धि ता जुवई णिअबइ।

काया की कृच्छ साधना इन्हें काम्य नहीं है –

सहजे ए णिच्चल जोण किअ, समरसे णिच मगराअ।
सिद्धो सो पुणि तक्वाणो, रागउ जरा भरणइ भाअ।।

आपको यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि दोहाकोश और चर्चा गीतों की भाषा में अंतर है। दोहाकोश की भाषा प्राचीन आरम्भिक हिंदी है और चर्चापद की भाषा अपभ्रंश/अवहट्ठ है। इसी अवहट्ठ में कीर्तिलता एवं कीर्तिपताका काव्यों की रचना हुई है। सिद्धों के काव्य रूप दोहा चर्यापद ही साखी (साक्षी) और सबदी (कथन) के रूप में रूपांतरित हो गए हैं लेकिन परवर्ती भक्ति साहित्य में इनका प्रयोग तो विस्तार पा गया है पर सिद्धों की तांत्रिक साधना तो लोप हुई है लेकिन उस साधना की शब्दावली का अवशेष प्रयोग कहीं-कहीं मिलता है। नाथ संप्रदाय के प्रवर्तक गोरखनाथ है। उनके जन्म स्थान और मृत्युतिथि आदि का प्रमाण अनुपलब्ध है। गोरख साक्षी (संपादक पीताम्बरदत्तर बड़थ्वाल) में गोरखनाथ की रचनाओं (सबदी) को भाषा आधार प्रमाणिक नहीं माना जा सकता। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि – 'हिंदी में गारखनाथ के नाम से अनेक पद मिलते हैं, उनमें साधना मार्ग की व्याख्या की गई है, पर उनमें योगियों के धार्मिक विश्वास, दार्शनिक मत और नैतिक स्वर नहीं है। (हिंदी साहित्य की भूमिका)

उनकी भाषा का परिचय आपके सामने प्रस्तुत है। पर आप स्वयं ही अनुभव करेंगे गोरखनाथ की भाषा और परवर्ती कबीर की भाषा में अंतर कम है। यहाँ गोरखनाथ की कविता की भाषा का उदाहरण आपके सामने हैं :-

गुरू कीजै गहिला निगुरान रहिला।

गुरू बिन ज्ञान न पाइला रे साईला।।

नाथ बोलै अमृत वाणी।

क्षरिषैसी कम्बल पाणी।।

गाइ पड़खा बांघिल खूँट।

दमाया बाजिल ऊँटा।

यह भाषा पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व की नहीं मानी जा सकती क्योंकि आप स्वयं ही जान चुके हैं कि ऐसी हिंदी का प्रचलन आदिकाल में नहीं हो रहा था।

3. जन और जनतर काव्यों की भाषा - आदिकाल के पूरे कालखण्ड में जैन काव्य ही ऐसे काव्य है जिनकी भाषा भी प्रामाणिक है और रचनाकार भी। मूलत: जैन काव्य धार्मिक हैं परन्तु उनमें काव्य-तत्व एवं काव्य कौशल का अभाव नहीं है। आपको यह बताना अधिक समींचीन होगा कि काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से उन जैन रास काव्यों का महत्त्व भले ही अधिक न हो किन्तु तत्कालीन भाषा और काव्य शैली की पूरी परंपरा का अनुसरण वहाँ उपलब्ध होता है (रासो काव्य धारा)। विभिन्न विद्वानों के विश्लेषण के आधार पर इन जैन काव्यों में भाषा के निम्नलिखित विविध स्तर सहज देखे जा सकते हैं।

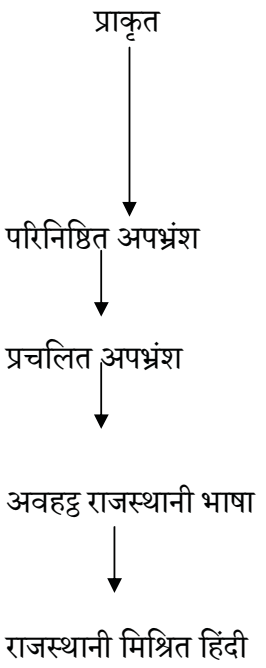

आपके ज्ञानार्जन के लिए यह बताना आवश्यक है कि जैन चरित काव्यों में धर्म पालन पर संदर्भ तो निहित है पर काव्यशास्त्रीयता का अनुसरण भी उनमें उपलब्ध है और इनकी परिनिष्ठित एवं लोक भाषा दोनों छोरों का स्पर्श करती है। जैनेतर काव्य में चारणकाव्य लिए जा सकते हैं। आलोच्य कालावधि में जैनसंतों-यतियों-मनुष्यों ने काव्य रचना प्रस्तुत की, वह प्राय: धर्मगत परंपरा में साधु जीवन का सर्जना पक्ष रहा है। यद्यपि कुछ जैन कवि राज्याश्रित भी रहे हैं ऐसे कवियों की चर्चा हम पिछली इकाईयों में कर चुके हैं। जैनेतर वे चारण कवि थे जो राज्याश्रय में अपने आश्रयदाताओं के मनोरंजन की पूर्ति के लिए अथवा साहित्य-कला प्रेम के

कारण राज्य संपत्ति थे। आप यह भी जान लीजिए कि राजस्थान में इस आलोच्य अवधि में चरण ही नहीं अपितु अन्य जातियों के कवि भी राजाश्रय में रहकर ऐसी रचनाएं दे रहे थे जो चरित काव्य का परंपरागत रूप लिए नहीं थी पर उनमें साहित्यिक अभिरूचियों, काव्य शास्त्रीय मूल्यों तथा सामाजिक समरसता का प्रभाव विद्यमान था।

बोध प्रश्न 2

1. अपभ्रंश और देशभाषा पर अपने परिचय दीजिए।

2 . अवहट्ठ और पुरानी हिंदी का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

3 . 'अपभ्रंश भाषा का काव्य' पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

4 . भाषा की बहुरूपता का आशय स्पष्ट कीजिए।

5 . सिद्धों-नाथों की काव्य-भाषा पर प्रकाश डालिए।

6 . जैन काव्यों की भाषा पर विचार प्रकट कीजिए।

8.5 विशिष्ट आदिकालीन रचनाएं और उनकी भाषा

हिंदी साहित्य के आदिकालीन की भाषिक अभिव्यक्ति के संबंध में आप इस इकाई के आरंभ से अभी तक इतना तो भली प्रकार समझ चुके हैं कि आदिकाल न तो अपभ्रंश भाषा रचना-कर्म की अतिश्यता का द्योतक है और न तत्कालीन प्रचलित लोक भाषाओं से भिन्न रूपों का सम्यक रूप से या तुलनात्मक रूप से ऐतिहासिकता की मांग कर सकता है। इसका कारण साहित्य के अध्येता होने के कारण आप स्वयं ही जानते हैं कि रचना कर्म की समयावधि में भाषा, व्याकरण के बंधनों से परे रचनाकार अपने भावोत्कर्ष को शब्द देता है तथा तत्क्षण किस भाषा, किस शब्द का प्रयोग करेगा वह स्वयं नहीं जानता क्योंकि रचनाकार अवगत रूपों को लेखनी के स्रोत में आगे बढ़ाता है, भाषा स्वत: उसका काव्यरूप और संरचना का संस्कार बन आती है। **स्वयंभू कृत पउम चरिउ -** स्वयंभू अपभ्रंश और जैन धर्म में सन्निहित राम कथा की परम्परा का परिचय देते हैं। यद्यपि उनका मत स्पष्ट है कि उन्होंने पूर्व प्रचलित रामकथा परंपरा से प्रेरणा ग्रहण की है। वे इस ग्रंथ के प्रारंभिक भाग में प्रचलित राम कथा की महत्ता प्रतिपादित करते है –

ववसाउ तोवि णउ परिहरि हमि।

वरि रड्डाबद्धु कब्बु करनि।।

सामण्णे भास छुडु साण्डउ।

छुडु आगम खुत्ति काविघडउ

छुडू होंहू सुहासिय वयणाऊं ।।

गामिल्ल भास परिहरणाइं।।

काव्य रचना का प्रयोजन स्पष्ट करते हुए कवि स्वयंभू कहते हैं कि - मैं काव्य रचना के शास्त्रीय पक्ष को नहीं जानता हूँ फिर भी काव्य सर्जना के व्यवसाय को छोड़ नहीं पा रहा हूँ। प्रत्युत मैं रड्डा छंद में (छन्दों बद्ध रूप में) काव्य की रचना कर रहा हूँ। मेरी कामना है कि मैं सामान्य भाषा (देशी या ग्रामीण भाषा) में जो कुछ लिखूं वह जो कुछ कथन हो, वह सुभाषित हो जाए। आप इस कथन से स्वयंभू के विचार अवश्य समझ गए होंगे कि वे जिस भाषा में अपने रचनाकाल में रामकथा रच रहे हैं वह उस समय की परिनिष्ठित अपभ्रंश नहीं है, देशभाषा या ग्रामीणभाषा है। उक्त पंक्तियों में आगत शब्दों का अर्थ परिचय आपको अर्थ समझने की सुविधा देगा -

शब्दार्थ - ववसाउ = व्यवसाय (काव्य सर्जना)। तोवि णउ परिहर हमि = तब भी नहीं छोड़ रहा हूँ। वरि रडडाबद्ध= प्रयुक्त रड्डा छन्द बद्ध। कब्बु करनि =काव्य की रचना कर रहा हूँ। सामण्णे भास = सामान्य भाषा में। छुडु सावडउ = प्रयत्नपूर्वक कुछ। छुड आगम खुन्ति = कुछ आगम युक्ति। काविधडउ = रचना में कर रहा हूँ। छुडु घोन्ति सुहासियवरणाउ = वह वचन (कथन) सुभासित हो। गमिल्ल भास = ग्रामीण (देशी) भाषा। परिहरणाइ = छोड़ रहा हूँ।

आप समझ पाए होंगे कि किस प्रकार आदि काल की भाषा देशी से परिनिष्ठित होती है।

स्वयंभू के पउम चरिउ की भाषाभिव्यक्ति का मनन करने का अवसर आपको मिला ही है। अब आपके समक्ष अब्दुर्रहमान(अहददमाण) द्वारा लिखित सन्देशरासक की भाषाभिव्यक्ति का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है आदिकालीन भाषा की बहुरूपता का एक परिचय आप संदेश रासक में पायेंगे।

पउदडंउ पेसिजइ झाल अलकंतियइ।

भय भेसिय अइरावइ गयणि रिववंतियइ।।

रसहि सरस बब्बीहिय णिरूतिप्पंति जलि।

बयह रेह णहि रेहइ घवघण जंतितलि ।।

वर्षा ऋतु में विरहिणी नायिका कहती है कि - हे पथिक। जब विद्युत-ज्वाल आकाश में चमकती है तभी पगडंडी भी दिखलाई देती है, अन्यथा यह भय से ग्रस्त करने वाला ऐरावत जैसा कला आकाश भी मुझे आज जलाता है। इस वर्षा ऋतु में जलवर्षा के कारण तृप्त हुए पपीहे मग्न होकर मधुर शोर कर रहे हैं तथा बगुलों की पंक्तियाँ इन बादलों के नीचे शोभित होती हैं काव्य अर्थ के साथ शब्दों की अर्थाभिव्यक्ति दर्शनीय है -

यह अपभ्रंश भाषा का श्रेष्ठ उदाहरण होगा। स्वयंभू से चलकर अब्दुर्रहमान तक अपभ्रंश की इस अभिव्यक्ति में स्पष्टतः अंतर आभासित होता दिखाई देता है।

ऊपर स्वयंभू कृत वर्षा ऋतु वर्णन में भाषा अभिव्यक्ति का कौशल आप देख ही चुके हैं, अब्दुर्रहमान की वर्षाकालीन विरह दशा का भाषा कौशल परवर्ती कालीन काव्य के स्तर पर वर्षाकालीन काव्य के स्तर पर देख लीजिए -

णाय णिवउ पहरूद्ध फणिंदिहिं दह दिसिहिं।

हुइय असंचर मग्ग महं तं महाविसिहि।।

हरियाउल घरवलउ कयबिण महामहिउ।

कियउ भंगु अंगंनि अणंगिण मह अहिउ।।

विरहणी नायिक पथिक से कहती है कि इस वर्षाकाल में नागों एवं फणिधरों से दस दिशाओं के मार्ग अवरूद्ध हो गए हैं और अत्यधिक जल वर्षा के कारण सभी मार्गों पर आवागमन बंद हो गया है। सम्पूर्ण पृथ्वी (घरा मंडल) हरिताकुल होने के साथ ही कदम्ब पुष्पों की सुगंधि से परिपूर्ण हो गई है तथा कामदेव ने मेरे अंग प्रत्यंग को विरह के कारण अधिक अंगभंग कर दिया है। कवि विरहिणी की अभिव्यक्ति जिस रूप आप पढ़ चुके हैं। कथानान्तर में आपने कुछ विशेष पाया ही है, अब और देखा जा सकता है। शब्दार्थ के रूप में यह और देखा जा सकता है -

शब्दार्थ - णाय = नाग। णिवउ = निविड़। पहरूद्ध = पथ रोक कर के। फणिंरहिं सांप , फणिधर। दस दिसिहिं = दस दिशाएँ । असंचार मग्ग = मार्ग अवरूद्ध। महानिसिहि = महाविषधरो या भयंकर वर्षा जल से। मह = मध्य। तं =वहाँ । हरियाउल = हरिताकुल धरणी = धरती। अणंगिण = अनंग, कामदेव। मह = मह = मध्य। अहिउ = अधिक।

उपरिवर्णित दो रचनाओं की भाषा और उसमें अभिव्यक्ति कौशल का अंतर अभी-अभी आप पढ़ चुके हैं। वीसल देव रासो को आदिकालीन काव्य की आधार पुस्तक (सामग्री) के रूप में आचार्य

शुक्ल ने स्वीकार किया था। जिस अपभ्रंश में स्वयंभू ने काव्य रचना प्रस्तुत की थी, उसे आप पढ़ चुके हैं फिर उसके परवर्ती रचनाकारों में सन्देशरासक की भाषाभिव्यक्ति का परिचय भी आप पा चुके हैं। बीसलदेव रासो की परवर्ती भाषाभिव्यक्ति प्रथम दो रचनाओं से पूर्णतः अंतर रखती हैं। यद्यपि संदेश रासक की भांति ही बीसलदेव रास संदेश काव्य है, वीरगाथा काव्य नहीं है - यह आपको स्मरण होगा ही। अब इस रासकाव्य की भाषाभिव्यक्ति का परिचय पाइए -

उठि उठि गवरि करिइ सिंणगार ।

णलि पइहरउ मोतिय कइ हार।।

नागफणी कइ तउ केति।

छोटी कसण पयउहर खींच।।

प्रीय म्हारउ चाल्हा उलगाई।

जु महं जीवन राखूं संचि।

सखियाँ राजमती (बीसलदेव-विग्रहराज की पत्नी) को संबोधित करती हैं - गोरी! तुम शीघ्र उठो और अपना श्रृंगार पूरा करो । तुम अपने गले में मोती का हार पहन लो तथा अपने कानों में तुम्हारे प्रिय सर्प के फन के आकार के आभूषण कर लो (यान अब तुम्हारे पति आ रहे है, अतः अपना श्रृंगार पूरा करो)। सखियाँ अब तक के ीले और अस्त-व्यस्त वस्त्रों की ओर ध्यान देते हुए राजमती से कहती हैं कि तुम अपने स्तनों पर कंचुकी के बन्ध छोटे कर के उन्हें कस दो ताकि यौवन और उभर सके।

यह भी विरह काव्य है लेकिन उपर्युक्त का वाक्यांश पति के आगमन के समय की भाव एवं भाषा अभिव्यक्ति का उदाहरण आपके सामने रखता है। इससे वीसलदेव रास तक आते-आते भाषाभिव्यक्ति के अंतर को आप समझ गए होंगे । इससे आगत शब्दावली का अर्थ द्रष्टव्य है -

शब्दार्थ - गवरि = गोरी (राजमती)। करइ सिंण्गार = श्रृंगार करो। गलि पइहरउ = गल में पहनो। मोतिय कड हार = मोती का हार। नागफणी कइ तड़कलि =सर्प के फन के समान कर्णभूषण। छोटी कसण = छोटी कस, छोटी घर के कसना। पयउहर खीच = पयोधर पर खींचकर कंचुकी कासकर बांधो। प्रीय = प्रियतम। म्हारउ = हमारा। चाल्या डलगई = परदेश से चल दिया है। जु = जो। म्ह = मेरा। जीवन राखूं सींचि = यौवन संचित कर रखूं ।

कवि चंदबरदाई पृथ्वीराज चौहान के दरबारी था राजाश्रित कवि और बालसखा थे। उन्हें षटभाषा ज्ञाता के रूप रेखांकित किया गया है यानी वे अरबी, फारसी, संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी

एवं हिंदी भाषाओं को पूरी तरह जानते थे। पृथ्वीराज रासो में उनकी इस भाषा बहुलता का परिचय मिलता है।

पृथ्वीराजरासो की भाषाभिव्यक्ति के उदाहरण के रूप में यहाँ शशिवृत्ता वर्णन (समय 25) का एक काव्यांश प्रस्तुत कर भाषाभिव्यक्ति का स्वरूप प्रतिपादित करना चाहेंगे। चंद शशिवृत्ता की वयःसंधि का उल्लेख करते है -

ससिर अंत आवन बसंत, बालह सैसव गम।

अलिन पंष कोकिल सुकंठ, सजि गुंड मिलत भ्रम।।

मुर मारूत मुरै चलै मुरै मुरि बैस प्रमानं।

तुछ कोपर सिस फुट्टि, आन किस्सोर रंगानं।।

आदिकालीन काव्य के आधार ग्रंथों में सम्मिलित पृथ्वीराज रासो की भाषा उपरिलिखित तीन कृत्तियों से भिन्न भाषा है। जिसमें राजस्थानी एवं हिंदी का मिश्रित स्वरूप परिलक्षित रहता है। पृथ्वीराज रासो का रचना के आरंभ में कवि ने कहा है -

उक्ति धर्म विशालस्य। राजनीति नवरस।

खट भाषा पुराणं च। कुरानं कथित मया ।।

इसमें कवि के अनुसार अपभ्रंश और अवहट्ठ की चाशनी में राजस्थानी, ब्रजी, फारसी भाषाओं का सम्मिश्रण है जो काव्य की सशक्त भाषागत अभिव्यक्ति बनकर हमारे सामने आता है।

आदिकालीन भाषा के क्रमागत विकास का स्वरूप आप देख ही चुके हैं। भाषा की दृष्टि में आधार ग्रंथों में गृहित चार ग्रंथों अपभ्रंश परवर्ती और आदिकालीन हिंदी की सहज अभिव्यक्ति मिलती है जिसमें लोकभाषा का जीवनतत्व और सरसता व्यापक रूप से उभरती है। यहाँ पर आपके समक्ष बेलि किसन रूकिमणी रे का एक काव्यांश प्रस्तुत करते हैं -

जम्पजीव नहीं आवतौ जाणे

जोवण जावणहार जण।

बहु बिलखी बीछड़ती बाला।

बाल संघाती बालपण।।

आगलि पित-मात रसन्ती अंमणि,

काम-विराम छिपाड़ण काज।

लाजवती अंगि एह लाज विधि,

लाज करन्ती आवै लाज।।

कवि रूक्मिणी की वयःसंधि का उल्लेख करते हैं कि रूक्मिणी अपने यौवन का आगमन देखकर उसे अस्थिर (शीघ्र विदा हो जाने वाला) मानकर अपने हृदय में व्याकुल होने लगी तथा अपनी बाल्यावस्था के साथी बचपन के बिछुड़ने के कारण अत्यन्त दुखी होती है। रूक्मिणी को अंग विकास के कारण माता-पिता के सामने जाते हुए लज्जा आने लगी है तथा स्वयं भी अनुभव करने लगी है, क्योंकि उसके अंगों में कामदेव बस गया है तभी वह उन्हें अपने माता-पिता से छिपाना चाहती है। भाषाभिव्यक्ति विषयक पाठ के अंतिम रूप में आपके सामने एक रचना का स्वरूप और रखते हैं। परमाल रासो (जगनिक कृत) परवर्ती काल की रचना है, उसका अपभ्रंश या अवहट्ठ भाषा से कोई संबंध नहीं है। उसकी भाषा का एक स्वरूप द्रष्टव्य है -

बारह वरिस लै कूकर जीए

औ तेरह लै जिए सियार।

बरस अठारह छत्री जीवे

आगे जीवन को धिक्कार।

यह भाषा आदिकाल की भाषिक सीमा की ओर संकेत करती है और स्पष्टतः यह संकेत देती है कि आदिकाल की भाषा की अभिव्यक्ति इस उक्त उद्धृत भाषा का रूप कभी नहीं ले सकती।

8.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ कर आप -

- आदिकालीन काव्य की पूर्व-पीठिका को जान चुके होंगे
- आदिकालीन हिन्दी साहित्य की भाषिक संरचना के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे.
- उस कालखंड के प्रमुख कवियों एवं उनके काव्य कि भाषिक-प्रवृत्ति का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे
- अपभ्रंश एवं हिन्दी के अंतर-सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे

8.7 शब्दावली

अपभ्रंश	:	मध्कालीन भारतीय आर्य भाषा
अवहट्ठ	:	अपभ्रंश जब प्रतिनिष्ठित भाषा का रूप ग्रहण कर चुकी तो अवहट्ठ लोक प्रचलित भाषा के रूप से काव्य-सर्जना का आधार बनी।
सिद्ध साहित्य	:	बौद्ध सिद्धों की साहित्य सर्जना विशेषकर चर्यापदों का रूप।
नाथ साहित्य	:	गोरख नाथ प्रवर्तित बानी और सबदी की रचना है।
जैन साहित्य	:	जैन मतावालाम्बियों द्वारा लिखित विभिन्न प्रकार का साहित्य

8.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.	रामचंद्र शुक्ल	हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी
2.	बच्चन सिंह	हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रका.नई दिल्ली
3.	चंद्रधर शर्मा गुलेरी	पुरानी हिंदी, नागरी प्रचारिणी सभा काशी
4.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रका.नई दिल्ली
5.	विजय कुलश्रेष्ठ	रासो काव्यधारा
6.	विजय कुलश्रेष्ठ	पृथ्वीराज रासो का लोकतात्विक अध्ययन

8.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. आदिकाल की पूर्वपीठिका पर प्रकाश डालिए तथा आदिकालीन भाषा के स्वरूप पर अपनी समीक्षात्मक व्याख्या दीजिए।
2. आदिकालीन काव्य भाषा का विस्तृत निरूपण कीजिए।

इकाई 9 आदिकालीन सिद्ध साहित्य : परिचय एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उददेश्य
9.3 नाथ सम्प्रदाय
9.4 आदिकालीन नाथ साहित्य
9.4.1 वर्ण्य विषय/काव्यवस्तु
9.4.2 भाषा-शैली
9.4.3 प्रमुख नाथ कवि
9.5 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन कविता से संबंधित यह तीसरी इकाई है। इसके पहले की दो इकाइयों में आप आदिकालीन सिद्धों की मान्यताओं एवं उनके साहित्य की विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं।

नाथ पंथ या सम्प्रदाय को सिद्धों की परम्परा का ही संशोधित रूप माना जाता है। प्रस्तुत इकाई में नाथों की साधना पद्वति और मान्यताओं का परिचय देते हुए आदिकालीन नाथ साहित्य की विशेषताओं और प्रमुख नाथ कवियों का परिचय दिया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप आदिकालीन सिद्धों की मान्यताओं से नाथ सम्प्रदाय की भिन्नता, नाथ साहित्य की प्रवृत्तिगत एवं भाषागत विशेषताओं तथा परवर्ती हिंदी साहित्य पर पड़ने वाले इसके प्रभाव को जान सकेंगे।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि नाथ सम्प्रदाय की क्या-क्या विशेषताएँ हैं।
- आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- परवर्ती भक्तिकालीन हिंदी साहित्य (निर्गुण या संत काव्य) पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव की पहचान कर सकेंगे।

9.3 नाथ सम्प्रदाय

इससे पहले की इकाइयों में आपने आदिकालीन सिद्ध साहित्य का परिचय प्राप्त किया है। नाथों का समय इन सिद्धों से थोड़ा बाद का है। चौरासी सिद्धों की सूची में कुछ नाथों के नाम भी मिलते हैं। इसीलिए नाथों का संबंध इन बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों से माना जाता है। हालाँकि सिद्ध कवि देश के पूर्वी हिस्से में रह रहे थे, जबकि नाथों का निवास स्थान देश के पश्चिमोत्तर हिस्से में (राजपूताना और पंजाब) में बताया जाता है। नाथ पंथ या सम्प्रदाय को "सिद्धमत","सिद्धमार्ग", "योगमार्ग", "योग सम्प्रदाय' तथा "अवधूत मत" भी कहा गया है। डा. रामकुमार वर्मा के अनुसार -

"सिद्धों की विचारधारा और उनके रूप को लेकर ही नाथ-वर्ग ने उनमें नवीन विचारों की प्रतिष्ठा की और उनकी व्यंजना में उनेक तत्त्वों का सम्मिश्रण किया।"

नाथों की संख्या नौ मानी जाती है। इन्हें "नवनाथ'' के नाम से जाना जाता है। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं-आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, गाहिणीनाथ, चर्पटनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृनाथ और गोपीचंदनाथ। नाथपंथी अपनी गुरू परंपरा शंकर (शिव) से आंरभ करते हैं। शंकर इस प्रकार आदिनाथ कहलाए। एक जनश्रुति के अनुसार शंकर ने सर्वप्रथम पार्वती को योग का रहस्य बतलाया था। मत्स्येन्द्रनाथ या मच्छंदरनाथ ने नदी की मछली का रूप धारण कर यह संवाद सुन लिया। इस कारण शंकर ने उन्हें इन्द्रिय-सुख में बँध जाने का श्राप दे दिया। बाद में मत्स्येन्द्रनाथ के ही शिष्य गोरखनाथ ने अपने गुरू का उद्धार किया। वास्तव में इस जनश्रुति से हमें गोरखनाथ द्वारा अश्लील तांत्रिकता का विरोध कर उसके स्थान पर ब्रह्मचर्य या इन्द्रिय संयम पर आधारित योगमार्ग को प्रतिष्ठित करने का संकेत मिलता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आदिनाथ शिव से शरू हुई परम्परा को मत्स्येन्द्रनाथ ने आगे बढ़ाया और उनके शिष्य गोरखनाथ ने इसे एक सम्प्रदाय या पंथ के रूप में प्रतिष्ठित किया।

मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ के नाम सिद्धों की सूची में भी मिलते हैं। लेकिन गोरखनाथ सिद्धों की वाममार्गी भोगप्रधान साधना-पद्धति के विरोधी थे। नाथ सम्प्रराय दार्शनिकता की दृष्टि से शैवमत के अंतर्गत है और व्यावहारिकता की दृष्टि से पतंजलि के योग से संबंधित है। गोरखनाथ ने इनके मेल से "हठयोग" रूपी साधना-पद्धति का प्रवर्तन किया। उन्होंने ब्रह्मचर्य, वाक्संयम, शारीरिक-मानसिक पवित्रता को अपनाने तथा मांस-मदिरा का त्याग करने की शिक्षा दी। उनका मानना था- "जोई-जोई पिंडे सोई ब्रहमांडे", अर्थात जो शरीर में है वहीं ब्रहमांड है। इस प्रकार गोरखनाथ नाथ मत या सम्प्रदाय के प्राणदाता कहे जा सकते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-"शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष के कोने-कोने में उनके अनुयायी आज भी पाये जाते हैं। भक्ति आंदोलन के पूर्व सबसे शाक्तिशाली धार्मिक आंदोलन गोरखनाथ का भक्ति मार्ग ही था। गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे।"

नाथ सम्प्रदाय ने सिद्ध सम्प्रदाय की रूढ़ियों का खंडन करते हुए ही अपनी साधना पद्धति विकसित की। नाथों ने सदाचार का आश्रय लेकर काया (शरीर) में ही तीर्थ की अनुभूति की। गोरखनाथ ने पाखंडों का खंडन किया और मंत्रों को व्यर्थ बताया। योग द्वारा शरीर का कायाकल्प

करना नाथों की साधना का आवश्यक अंग रहा है। क्योंकि जब तक शरीर चैतन्य और तेजयुक्त नहीं होगा, तब तक अविरत साधना नहीं हो सकती है। "नाथ" का अर्थ "मुक्तिदान करने वाला" माना गया है। जो स्वयं "मुक्त" होगा वही मुक्ति का दान कर पाएगा। इसीलिए नाथ सम्प्रदाय में संसार के बंधनों से मुक्त होने की विधि बताई गई है। संसार के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि विषयों से तभी मुक्ति मिल सकती है, जब मन में वैराग्य की भावना स्थिर हो। यह वैराग्य- भाव गुरू की सहायता से ही उत्पन्न हो सकता है। इसके बाद योगी इन्द्रिय-निग्रह, प्राण-साधना और मन-साधना की ओर अग्रसर होता है। गोरखनाथ ने इन्द्रियों के लिए सबसे बड़ा आकर्षण "नारी' को बताया और अपने अनुयायियों के लिए नारी से दूर रहने का कड़ा नियम बनाया। इसके बाद प्राण- साधना का स्थान है, अर्थात प्राण- वायु के नियमित संचालन का अभ्यास । मन-साधना का अर्थ है संसार के विभिन्न आकर्षणों की ओर से मन को खींचकर अपने अन्तः करण की ओर उन्मुख कर लेना। इन सब की सिद्धि के बाद योगी में नाड़ी- संचालन और कुंडलिनी-जागरण की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों और नाथों में अंतर था । सिद्ध निरीश्वरवादी थे, जबकि नाथ ईश्वरवादी थे। हालाँकि नाथों के ईश्वर सगुण न होकर निर्गुण निरंजन थे। नाथों ने जाति-पांति का भेद नहीं माना। गोरखनाथ स्वयं ब्राहमण थे, लेकिन उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था को नहीं माना। मध्यकाल में मुस्लिम शासन की स्थापना होने पर हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया। ऐसे जाति-परिवर्तित गरीब मुसलमानों में बहुत से लोगों ने नाथ पंथ को अपना लिया। इस तरह नाथ सम्प्रदाय के अनुयायियों की नई और अनोखी जाति बन गई, जिसके सदस्य न तो हिन्दू थे, न ही मुसलमान। इस युगीन प्रक्रिया ने धार्मिक सामाजिक भेदभाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नाथों ने वर्णगत ऊँच-नीच, जातिगत भेदभाव और धर्मगत विभेद को अस्वीकार किया।

नाथ मत के व्यापक प्रचार-प्रसार होने का कारण यह भी था कि नाथों ने वज्रयानी सिद्धों के तंत्र में मौजूद वीभत्स आचारों को नहीं अपनाया। उन्होंने तंत्र जन्य वीभत्स चमत्कारों से विचलित जनता को ब्रहमचर्य और योगाभ्यास रूपी नए विकल्प दिए। इसके अलावा, नाथों के ईश्वर भले ही निर्गुण या निरंजन थे, लेकिन उनमें एक सर्वोच्च सत्ता के प्रति आस्था थी। इस कारण भी देश के पारंपरिक रूप से आस्थावान लोगों का झुकाव नाथ सम्प्रदाय की ओर हुआ। नाथ ईश्वर की स्थिति घट(शरीर) में मानते थे। वे भक्ति विरोधी थे। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने कहा- "गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।" लेकिन कबीरदास ने गोरखनाथ के प्रति आदर व्यक्त किया है। इससे पता चलता है कि नाथों की मान्यताओं की विरासत आगे चलकर कबीर आदि निर्गुण संतो के पास गई। डा. रामकुमार वर्मा ने नाथ मत के प्रचार-प्रसार में गोरखनाथ की भूमिका के विषय में लिखा है-

''गोरखनाथ ने नाथ-सम्प्रदाय को जिस आंदोलन का रूप दिया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ। उसमें जहॉ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गई वहाँ दूसरी ओर धर्म को विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूि यों पर कठोर आघात भी किया गया। जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहज मार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने किया।''

नाथ पंथ या सम्प्रदाय के अनुयायी 'कनफटे' कहलाते है, क्योंकि ये अपने कानों के मध्य भाग को फाड़कर उसमें बड़ा छेद कर लेते है। वे इसमें स्फटिक का कुंडल धारण करते है। नाथ सम्प्रदाय के अनुयायियों की दो शाखाएँ हैं। उत्तर-पूर्वी भारत में रहने वाले अनुयायी गोरखनाथ को अपना गुरू मानते है और पश्चिमी भारत मे रहने वाले अनुयायी स्वयं को गोरखनाथ के ही शिष्य धर्मनाथ की परम्परा में मानते हैं।

यह पहले बताया जा चुका है कि नाथ सम्प्रदाय के उपदेशों का प्रभाव हिंदुओं के साथ-साथ मुसलमानों पर भी पड़ा था। नाथपंथ के इस प्रभाव की निरंतरता के बारे में आचार्य रामचंदं शुक्ल ने लिखा है - "अब भी इस प्रदेश में बहुत से मुसलमान जोगी गेरूआ वस्त्र पहने, गुदड़ी की लंबी झोली लटकाऐं, सारंगी बाजा बजाकर 'कलि में अमर राजा भरथरी' के गीत गाते फिरते हैं और पूछने पर गोरखनाथ को अपना आदि गुरू बताते हैं। ये राजा गोपीचंद के भी गीत गाते है जो बंगाल में चटिगांव के राजा थे और जिनकी माता मैनावती कहीं गोरख की शिष्या और कहीं जलंधर की शिष्या कही गई हैं। "

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए-

(क) नाथों की संख्या.....मानी जाती है।

(ख) नाथ सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने का श्रेय.....को है।

(ग) नाथ योगी .....कहलाते हैं।

2 सत्य/असत्य बताइए-

(क) नाथ कवि मुख्यतः देश के पूर्वी भागों में रहते थे।

(ख) गोरखनाथ ने इंद्रिय-संयम पर अधिक जोर नहीं दिया।

(ग) नाथ ईश्वरवादी थे।

3 बहुविकल्पीय प्रश्न

(अ) सिद्धों की सूची में किसका नाम मिलता है-

(क) चौरंगीनाथ (ख) चर्पटनाथ

(ग) भर्तृनाथ (घ) गोरखनाथ

(ब) 'हठयोग' का प्रवर्त्तन किसने किया-

(क) आदिनाथ (ख) मत्स्येन्द्रनाथ

(ग) गाहिणीनाथ (घ) गोरखनाथ

(स) नाथ योगियों की साधना पद्वति का अंग नहीं है-

(क) इंद्रिय -संयम (ख) उपवास

(ग) प्राण-साधना (घ) मन-साधना

9.4 आदिकालीन नाथ साहित्य

इससे पूर्व के खंड में आपने नाथ सम्प्रदाय की विशेषताओं का परिचय प्राप्त किया। आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप् से परिचित होने के लिए इसे जानना आवश्यक है। इस खंड में नाथ साहित्य के वर्ण्य विषयों या काव्यवस्तु, भाषा-शैली तथा प्रमुख नाथ कवियों से आपका परिचय कराया जाएगा।

9.4.1 वर्ण्य विषय/काव्यवस्तु

आदिकालीन नाथ साहित्य में मुख्यतः इस पंथ या सम्प्रदाय के सैद्धांतिक मतो का परिचय मिलता है। यह स्वाभाविक है कि योग साधना में रत् नाथ योगियों के लिए शुद्ध साहित्य या साहित्य-संस्कार का कोई मतलब नहीं था। इसीलिए उनके साहित्य को इस दृष्टि से देखना उचित नहीं। नाथों ने तीन बातों पर जोर दिया है- (1) योगमार्ग (2) गुरू महिमा (9) पिंड ब्रह्मांडवाद। बौद्ध या वज्रयानी

सिद्धों की साधना लोकबाह्य और अमांगलिक है जबकि नाथ योगियों का हठयोग आंतरिक है। गुरू के बिना हठयोग की जटिल प्रक्रिया संभव नहीं, इसलिए नाथ साहित्य में गुरू की महिमा गायी गई है। नाथ साहित्य में गुरू महिमा, इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मन-साधना, कुंडलिनी जागरण, शून्य समाधि आदि की चर्चा मिलती है। इसमें ईश्वरोंपासना के बाहरी तौर-तरीकों के प्रति उपेक्षा प्रकट की गई है और घट के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने पर जोर दिया गया है। मन और आचरण की शुद्धता अर्जित करके शून्य-समाधि में ब्रह्म का साक्षात्कार करना नाथों का परम लक्ष्य था। गोरखनाथ के अनुसार योगी का चित्त विकार के साधन होने पर भी विकृत नहीं होता- नौ लख पातरि आगे नाचैं, पीछे सहज अखाड़ा।

ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा।।

नाथ साहित्य मे साधना-पद्धति के निरूपण के अलावा उन सभी रूढ़ियों का खंडन भी है, जो सिद्धों के यहाँ पाया जाता है। नाथों की कविता में किसी एक सम्प्रदाय या धर्म और जाति की जगह मानव-मात्र की बात की गई है। साथ ही, इसमें वेद-शास्त्र आदि के अध्ययन को व्यर्थ तथा तीर्थाटन आदि को निष्फल बताया गया है। नाथ साहित्य की इन विभिन्न प्रवृतियों का परिचय देने वाले पाठों का अध्ययन आप अगली इकाई में करेंगे।

9.4.2. भाषा-शली

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, नाथ पंथ का अधिक प्रचार-प्रसार देश के पश्चिमोत्तर भाग अर्थात् राजपूताना और पंजाब की ओर अधिक हुआ । इसीलिए जब मत के प्रचार के लिए देशी भाषा में रचनाएँ की गई तो उस क्षेत्र में प्रचलित भाषा का ही व्यवहार किया गया। साथ ही, नाथ कवि अपनी बात कहने के क्रम में मुसलमानों को भी ध्यान में रखते थे जिनकी बोली दिल्ली के आसपास प्रचलित खड़ी बोली थी। इसके कारण नाथ कवियों की बानी पर इस बोली का भी असर मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस संदर्भ में लिखा है- "इस प्रकार नाथपंथ के इन जोगियों ने परंपरा साहित्य की भाषा या काव्यभाषा से, जिसका ढ़ाँचा नागर अपभ्रंश या ब्रज का था, अलग एक 'सधुक्कड़ी' भाषा का सहारा लिया जिसका ाँचा कुछ खड़ी बोली लिए राजस्थानी था।"

यहाँ 'सधुक्कड़ी' भाषा का अर्थ बिगड़ी हुई भाषा नहीं है, बल्कि मिश्रित भाषा है। आप जानते हैं कि साधु-संत प्रायः भ्रमण करते रहते हैं। इसीलिए उनकी भाषा पर विभिन्न क्षेत्रों या प्रदेशों की भाषा की रंगत चढ़ जाती है। इसी कारण ऐसी भाषा को 'सधुक्कड़ी' भाषा कहते हैं। आगे चलकर कबीर की भाषा का स्वरूप भी कुछ ऐसा ही मिलता हैं। इसके अलावा, नाथपंथी योगी तथा

अनुयायी जहाँ-जहाँ गए वहाँ के लोगो के बीच नाथ गुरूओं के उपदेशों का प्रचार करने के क्रम में उन्होंने स्थानीय शब्दों और भाषिक प्रयोगों का भी सहारा लिया। डा0 पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने बताया है कि गोरखनाथ की रचनाएँ आज जिस रूप में मिलती हैं, उनमें इसी कारण गुजराती, मराठी जैसी अन्य भाषाओं के भी प्रभाव मौजूद हैं।

नाथ कवियों ने प्रायः दोहा छन्द में अपनी भावनाओं और अनुभूतियों को व्यक्त किया है। उन्होंने राग-आधारित गेय पद भी रचे, जिन्हें 'शब्द' या 'सबदी' कहा जाता है। सैद्धांतिक निरूपण के लिए नाथों की कविता में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। नाथ कवियों ने अपनी अंतस्साधनात्मक अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए अचरज और विसंगतियों से युक्त कथन-शैली अर्थात् उलटबाँसी का भी प्रयोग किया। जो कुछ लोक या जनसामान्य में विश्वसनीय ंग से कहा जाता है, उसे उलटकर कहना ही उलटबाँसी है। उलटबाँसियों में असामान्य प्रतीकों का प्रयोग होता है, जिनका अर्थ खुलने पर ही ये समझी जा सकती हैं।

9.4.3 प्रमुख नाथ कवि

गोरखनाथ ही नाथ साहित्य के प्रवर्त्तक माने गए हैं। नाथ सम्प्रदाय के अन्य कवियों का भी साहित्य मिलता है, लेकिन उनमें ज्यादातर गोरखनाथ की बातों का ही दुहराव मिलता है। गोरखनाथ के अलावा कुछ अन्य नाथ कवियों के नाम हैं- मत्स्येन्द्रनाथ, गाहिणीनाथ, चर्पटनाथ, जलंधरनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचंदनाथ आदि। यहाँ कुछ नाथ कवियों का परिचय दिया जा रहा है-

मत्स्यन्द्रनाथ - मत्स्येन्द्रनाथ को मीननाथ और मछंदरनाथ भी कहा गया है। इन्होंने योग की शिक्षा आदिनाथ (शिव) से प्राप्त की थी। कहा जाता है कि शिवजी योग-विद्या का रहस्य पार्वती को सुना रहे थे तो इन्होंने मछली का रूप धारण करके इसे सुन लिया। इसी कारण उनका यह नामकरण हुआ। ये गोरखनाथ के गुरू थे। यह भी कहा जाता है कि चोरी से योग-विद्या का रहस्य जान लेने के कारण शिवजी ने इन्हें मोहपाश में बंध जाने का शाप दिया था, जिससे इनके शिष्य गोरखनाथ ने ही उन्हें मुक्त किया। गोरखनाथ ने श्रद्धा और आस्था से अपने गुरू की भक्ति की थी, इसलिए गुरू ने उन्हें योग के प्रथम अधिकारी और आचार्य माने जाने का आशीर्वाद दिया था। इनकी कविता का उदाहरण है-

यों स्वारथ को जीवड़ो, स्वारथ छाड़ि न जाय।
जब गोरख किरपा करी, म्हारो मनवो समझायो आय।।

जोगी सोई जोगी रे, जुगत रहै उदास।
तात नीरं जण पाइया, यो कहे मत्स्येन्द्रनाथ।।

गोरखनाथ - गोरखनाथ की जन्मतिथि और जन्मस्थान के विषय में विद्धानों की अलग-अलग राय है। राहुल सांकृत्यायन ने इनका समय 845 ई0 माना है और हजारी प्रसाद द्विवेदी भी इन्हें नवीं सदी का ही मानते हैं। डॉ0 पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने गोरखनाथ को ग्यारहवीं सदी के मध्य का माना है। डॉ0 रामकुमार वर्मा का भी मानना है कि गोरखनाथ तेरहवीं सदी के मध्य में हुए। इसी प्रकार कुछ विद्वान गोरख को दक्षिण देश का निवासी बताते हैं, कुछ नेपाल का और कुछ पंजाब का। समान्यतः उन्हें कांगड़ा-निवासी माना जाता है, जहाँ पर उनके प्रभाव अब भी मौजूद हैं।

डॉ.पीतांबरदत्त बड़थ्वाल के अनुसार गोरखनाथ का उत्तराखंड से भी संबध रहा है। उन्होंने दक्षिण गढ़वाल के 'घौल्या उ ्यारी' (धवल गुहा) नामक गुफा में तपस्या कर सिद्वि प्राप्त की थी। इसलिए गढ़वाल के मंत्र-साहित्य पर भी गुरू गोरखनाथ का काफी प्रभाव रहा है। प्राचीन जनश्रुतियों में गोरखनाथ को सर्वशक्तिशाली मानते हुए उनमें देवत्व की स्थापना की गई है। उन्हें गोरखा राज्य का संरक्षक भी माना जाता है। गोरखनाथ ने सिद्धों की पूर्वप्रचलित भोगप्रधान साधना-पद्वति का विरोध कर संयम पर आधारित 'हठयोग' रूपी साधना पद्धति को प्रतिष्ठित किया था। उस युग के साधु-संतों में भ्रमण या देशाटन की प्रवृत्ति रही थी। गोरखनाथ ने भी पंजाब, गुजरात, काठियावाड़, उत्तरप्रदेश, नेपाल, असम, उड़ीसा आदि की यात्रा करके अपने मत का प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने यात्राएँ ही नहीं की, बल्कि विभिन्न मतों के विद्वानों-आचार्यों से शास्त्रार्थ भी किया। उस युग में उत्तर भारत की स्थिति विषम थी। यह पूरा क्षेत्र राजनीतिक रूप से तो कई टुकड़ों में बँटा ही था, धार्मिक दृष्टि से भी अनेक मत-सम्प्रदायों में विभक्त था। इन मतभेदों के परिदृश्य में गोरखनाथ ने अपने सम्प्रदाय के माध्यम से धार्मिक एकसूत्रता लाने का प्रयास किया। इसलिए यह स्वाभाविक था कि वे एक लोकप्रिय धार्मिक नेता हो सके। गोरखनाथ नाथ साहित्य के सर्वप्रमुख रचनाकार हैं। उन्होंने संस्कृत और देशभाषा (हिंदी) दोनों में रचनाएँ कीं। मिश्र बंधुओं के अनुसार गोरखनाथ के नौ संस्कृत ग्रंथ हैं, जबकि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अट्ठाईस पुस्तकों का उल्लेख किया है। उनकी कई संस्कृत रचनाएँ आज उपलब्ध हैं, लेकिन उनमें से कुछ की प्रामाणिकता संदिग्ध है। गोरख की कुछ संस्कृत रचनाओं के नाम है- 'सिद्ध सिद्वांत पद्वति', 'गोरक्ष संहिता' 'अमरौध-शासनम' 'विवेकमार्तण्ड', 'निंरजन पुराण', 'वैराट पुराण', 'योगचिंतामणि', 'चतुरशीत्यासन',। इनकी देश भाषा की रचनाएँ भी मिलती है। डॉ.पीतांबर दत्त बडथ्वाल ने गोरखनाथ की इन रचनाओं का संकलन और संपादन

करके 'गोरखबानी' शीर्षक से प्रकाशित करवाया है। उन्होने निम्नलिखित रचनाओं को प्रामाणिक माना है- 'सबदी', 'पद', 'सिष्या दरसन', 'प्राण संकली', 'नरवै बोध', 'अभैमात्रा जोग', 'आतम बोध', 'पन्द्रह तिथि' 'सप्तवार', 'मछीन्द्र गोरखबोध', 'रोमावली', 'ग्यानतिलक', 'ग्यान चौंतीसा' एवं 'पंचमात्रा'।

विद्वानों ने गोरख द्वारा रचित बताई जाने वाली कुछ अन्य पुस्तकों को उनके शिष्यों द्वारा रचित बताया है, जैसे कि 'गोरखनाथजी के पद' और 'दत्तगोरख संवाद'। इसके अलावा कुछ रचनाएँ उनकी ही संस्कृत रचनाओं का अनुवाद हैं। उदाहरण के लिए, 'विराट पुराण' को स्वयं गोरख की ही संस्कृत रचना 'वैराट पुराण' का अनुवाद माना जाता है। गोरखनाथ के विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने संस्कृत में सिद्वांत-ग्रंथो की रचना करने के साथ-साथ अपने मत के व्यापक प्रचार के लिए जनसमुदाय की भाषा को अपनाया। इनकी कविता का उदाहरण है-

यंद्री का लड़बड़ा, जिम्भा का फूहड़ा।

गोरस कहै ते परतसि चूहड़ा।।

काछ का जती मुख का सती।

सो सत पुरूष उतमो कथी।।

बालानाथ:-पंजाब में इनके नाम पर 'बालानाथ का टीला' प्रसिद्ध रहा था। जायसी ने भी उसका उल्लेख किया है। इससे यह पता चलता है कि बालानाथ अपने समय के महत्वपूर्ण योगी रहे होंगे। इनकी कविता का उदाहरण है-

पहलै पहरै सब कोई जागै, दूजै पहरै भोगी।
तीजै पहरै तसकरि जागै, चौथे पहरै जोगी।।

चर्पटनाथ:- ये कहीं गोरखनाथ के और कहीं बालानाथ के शिष्य बताए गए हैं। ये राजपूताना के रहने वाले थे। इन्हें संस्कृत ग्रंथ 'चर्पटमंजरी' का लेखक भी बताया जाता है। इनकी कविता का उदाहरण है-

किसका बेटा किसकी बहू,
आप सवारंथ मिलिया सहू।।
जेता पूला तेती आल,
चरपट कहै सब आल जंजाल।।

चौरंगीनाथ:- चौरंगीनाथ 'पूरन भगत' के नाम से भी प्रसिद्ध रहे थे। ये गोरखनाथ के शिष्य थे। इनके विषय में यह किंवदन्ति है कि अपनी विमाता के प्रणय की अवहेलना करने के कारण इनकी आँखें फोड़ दी गईं और हाथ-पैर काटकर कुएँ में डाल दिया गया। बाद में गोरखनाथ ने उन्हें सुंदर शरीर से सम्पन्न (चौरंगी) बनाकर किसी कुँवारी की बटी हुई रस्सी के सहारे कुएँ से बाहर निकाला। इनकी कविता का उदाहरण है-

मारिवा तौ मन मीर मारिवा, लूटिबा पवन भंडारं।
साधबा तौ पंच तत सधिबा, सेइबा तौ निरंजन निराकारं।।

इन कवियों के अलावा भी कई नाथ कवियों के नाम से रचनाएँ मिलती हैं। भर्तृनाथ और गोपीचंदनाथ राजा होते हुए भी योगी बन गए थे। भर्तृनाथ ही भर्तृहरि या भरथरी के नाम से प्रसिद्ध हुए। भरथरी और गोपीचंद के नाम से आज भी कई लोकगीत प्रचलित हैं।

1. अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान भरिए

(क) उलटबाँसी में .....का प्रयोग होता है।

(ख) गोरखनाथ के गुरू ..... थे।

(ग) नाथ कवियों की भाषा को .....भाषा कहा जाता है।

(2) सत्य/असत्य बताइए

(क) गोरखनाथ को नाथ साहित्य का प्रवर्त्तक माना जाता है।

(ख) नाथ कवियों ने वेद-शास्त्र आदि के अध्ययन को आवश्यक बताया है।

(ग) 'सधुक्कड़ी' भाषा का अर्थ बिगड़ी हुई भाषा है।

(घ) डा. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने 'गोरखबानी' नामक ग्रंथ में गोरखनाथ की रचनाओं का संकलन किया है।

(9) बहुविकल्पीय प्रश्न

(अ) नाथ साहित्य में किसकी चर्चा नहीं मिलती है-

(क) नारी साहचर्य (ख) गुरू महिमा

(ग) बाह्याचारों का विरोध (घ) वैराग्य

(ब) नाथ साहित्य में क्या नहीं मिलता है-

(क) साखी (ख) उलटबाँसी

(ग) सबदी (घ) सोहर

(स) गोरखनाथ की रचना नहीं है-

(क) सिद्ध-सिद्धांत पद्धति (ख) बीजक

(ग) सबदी (घ) वैराट पुराण

9.5 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

आदिकालीन नाथ साहित्य का प्रभाव बाद के भक्तिकालीन संत साहित्य पर देखा जा सकता है। नाथ साहित्य ने परवर्ती ज्ञानमार्गी संतकाव्य को विषयतत्त्व के साथ-साथ काव्यशिल्प या काव्यपद्वति की दृष्टि से भी प्रभावित किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-'' यदि कबीर आदि निर्गुणमतवादी संतो की वाणियों की बाहरी रूपरेखा पर विचार किया जाए तो मालूम होगा कि यह संपूर्णतः भारतीय है और बौद्व धर्म के अंतिम सिद्वों और नाथपंथी योगियों के पदादि से उसका सीधा संबध है। वे ही पद, वे ही राग-रागिनियाँ, वे ही दोहे, वे ही चौपाइयाँ कबीर आदि ने व्यवहार की हैं, जो उक्त मत के मानने वाले उनके पूर्ववर्ती संतों ने की थीं। क्या भाव, क्या भाषा, क्या अलंकार, क्या छंद, क्या पारिभाषिक शब्द, सर्वत्र वे ही कबीरदास के मार्गदर्शक हैं।''

नाथ सम्प्रदाय के हठयोग पर निश्चय ही कबीर की आस्था दिखती है। उनके काव्य में नाथपंथियों की अंतस्साधनात्मक रहस्य भावना, हठयोग, नाद, बिंदु, कुंडलिनी, षटचक्रभेदन आदि का वर्णन मिलता है। उन्होंने इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि के जरिए 'अनहद' नाद सुनने की रीति बताई है। इसके अलावा उन्होंने उलटबाँसियों का भी प्रयोग किया है। इस संदर्भ में डॉ0 पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने लिखा है-''हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भक्ति-धारा की दो शाखाओं के दर्शन कराए हैं- एक निर्गुण शाखा और दूसरी सगुण शाखा। निर्गुण शाखा वास्तव में योग का ही परिवर्तित रूप है। भक्ति-धारा का जल पहले योग के घाट पर बहा था।'' नाथ सम्प्रदाय में माया की अवहेलना की गई है जो

आगे चलकर संतों के यहाँ भी चेतावनी के रूप में आती है। कबीर की कविता में यत्र-तत्र नारी की निंदा मिलती है। इसे भी नाथों के इन्द्रिय-निग्रह और निवृत्तिमूलक दर्शन के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार, भक्तिकालीन संतकाव्य में धार्मिक रूढ़ियों और बाह्य आडम्बरों का विरोध करते हुए अंतस्साधना पर जो बल दिया गया है उसे आदिकालीन सिद्ध नाथ कवियों के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है।

इस प्रभाव को काव्य पद्धति की दृष्टि से भी लक्ष्य किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, दोहा छंद में यदि सिद्धों की रहस्यवादी भावनाएं व्यक्त हुई थीं तो गोरखनाथ जैसे अलख जगाने वाले नाथ योगियों की बानियाँ भी कही गईं। वास्तव में, नाथपंथियों और कबीर पंथियों के 'धर्म निरूपणपरक' दोहे ही 'साखी' कहे जाते हैं। 'साखी' नाथपंथ के साहित्य में मिलती है और भक्तिकालीन संतो के साहित्य में भी। 'साखी' का अर्थ है- साक्षी देना, अर्थात् पूर्ववर्ती साधकों या गुरूओं द्वारा बताए गए सत्य का स्वयं अनुभव कर उसकी गवाही देना। धीरे-धीरे गुरू के वचनों को 'साखी' कहा जाने लगा होगा। गुरू के ऐसे वचन या उपदेश जनप्रचलित दोहा छंद में बद्ध थे। इसलिए कुछ दिनों बाद 'दोहा' और 'साखी' समानार्थक शब्द मान लिए गए होंगे। कबीर-साहित्य में तो दोहे का अर्थ ही साखी हो जाता है। इसके अलावा अन्य निर्गुण संतो के सम्प्रदाय में भी इस काव्यरूप का प्रचलन मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है- ''कबीर आदि संतों को नाथपंथियों से जिस प्रकार 'साखी' और 'बानी' शब्द मिले, उसी प्रकार 'साखी' और 'बानी' के लिए बहुत कुछ सामग्री और 'सधुक्कडी' भाषा भी"। सिद्वों और नाथों में 'शब्द' काव्यरूप भी प्रचलित था। 'शब्द' गेय पदों को कहा जाता है जो किसी-न-किसी राग में निर्दिष्ट होते हैं। भक्तिकालीन संतों ने भी इस पूर्व प्रचलित काव्यरूप को अपनाया। 'गोरखबानी' में उद्धृत ऐसे पदों को 'सबदी' कहा गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है-''जान पड़ता है, बीजक का 'शब्द' नाथपंथी योगियों का है और कबीरपंथ में वह सीधे वहीं से आया है।"

भक्तिकालीन संतों ने नाथ कवियों के कई शब्द, पद, दोहे और उलटबाँसियों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया था। हालाँकि उनमें कहीं-कहीं थोड़ा बहुत परिवर्तन भी दिखता है। उदाहरण के तौर पर नाथ योगियों के पद और भक्तिकालीन संत दादू के पद में समानता देखी जा सकती है . नाथयोगियों का पद-

उठ्या सारन् बैठ्या सारन् सारन् जागत सूता।

तिन भुवनें बिछाइना जाल कोइ जाबि रे पूता।।

दादू का पद-

उठ्या सारं बैठ विचारं संभारं जागता सूता।

तीन लोक तत जाल विडारन कहाँ जाइगा पूता।।

इसी प्रकार गोरखनाथ की एक उलटबाँसी है- 'नाथ बोलै अमृत बाणी। बरिसैगी कंबली भीजैगा पाणी। 'यह रोचक है कि कबीरदास के नाम पर यही उलटबाँसी इस प्रकार मिलती है- 'बरसै कंबल भीजै पानी।' इस प्रकार के कई अन्य उदाहरण भी हैं। हालाँकि यह सही है कि कबीर आदि भक्तिकालीन संतों ने नाथ कवियों से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किए हैं, लेकिन उनकी साधना का स्वरूप थोड़ा भिन्न था। इसलिए भक्तिकालीन संतकाव्य में उपस्थित भक्ति का रस सिद्धों-नाथों की कविता में नहीं मिलता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की मान्यताओं और साधना पद्धति में संशोधन करके नाथपंथी योगियों ने भक्तिकालीन संतों के लिए विचारधारात्मक पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। नाथ सम्प्रदाय को वास्तव में सिद्धों और संतों के बीच की कड़ी माना जाता है। डॉ. रामकुमार वर्मा की राय में -''संत साहित्य का आदि इन्हीं सिद्धों को, मध्य नाथपंथियों को और पूर्ण विकास कबीर से प्रारंभ होने वाली संत-परम्परा में नानक, दादू, मलूकदास, सुन्दरदास आदि को मानना चाहिए।''

3. अभ्यास प्रश्न

(1) भक्तिकालीन संतकाव्य पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव के विषय में क्या असत्य है-

(क) माया की अवहेलना

(ख) अंतस्साधनात्मक रहस्यवाद

(ग) उलटबाँसियो का प्रयोग

(घ) भक्ति का तत्त्व

9.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की भोगप्रधान तांत्रिक साधना पद्वति तथा मान्यताओं में संशोधन करके गोरखनाथ ने इंद्रिय-संयम तथा सदाचार पर

आधारित 'हठयोग' रूपी साधना पद्वति का प्रसार-प्रचार किया। आदिकालीन नाथ साहित्य में नाथ सम्प्रदाय की इस साधना पद्वति के निरूपण के साथ-साथ बाह्याचार तथा रूढ़ियों का खंडन भी किया गया है। नाथ साहित्य ने परवर्ती भक्तिकालीन संत साहित्य को विषयवस्तु तथा शैली, दोनों ही दृष्टियों से प्रभावित किया है। इस इकाई के अध्ययन से आप आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप और महत्त्व से परिचित हो चुके हैं।

9.7 शब्दावली

हठयोग- 'सिद्ध-सिद्धांत पद्वति' ग्रंथ के अनुसार 'ह' का अर्थ है सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ है चंद्र। सूर्य और चंद्र क्रमशः दक्षिण और वाम स्वर के प्रतीक हैं। हठयोग में देह स्थित 'ह' अर्थात् ज्ञान, प्रकाश और शक्ति के वाचक सूर्य तथा 'ठ' अर्थात् आनंद, रस तथा शीतलता के वाचक चंद्र की संयुक्त साधना की जाती है। इस साधना का स्वरूप आंतरिक होता है।

अंतस्साधना- हृदय और मन द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की आंतरिक साधना पद्वति।

इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना- मेरूदंड में प्राण-वायु को वहन करने वाली कई नाड़ियाँ हैं। इनमें योग की दृष्टि से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना महत्त्वपूर्ण हैं। इड़ा नाड़ी बाईं ओर तथा पिंगला नाड़ी दाहिनीं ओर स्थित होती है। इन दोनों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी होती है। इसी नाड़ी के माध्यम से कुंडलिनी शक्ति ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। इसलिए योग साधना में सुषुम्ना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाड़ी मानी जाती है। इड़ा के लिए चंद्र, गंगा आदि प्रतीकों का; पिंगला के लिए सूर्य, यमुना आदि प्रतीकों का तथा सुषुम्ना के लिए अवधूती, सरस्वती, बंकनालि आदि प्रतीकों का भी प्रयोग किया जाता है।

षट्चक्र-भदन- कुंडलिनी द्वारा मेरूदंड के मूल से लेकर त्रिकुटी (भौंहों के मध्य) तक क्रमशः स्थित छह चक्रों- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्व और आज्ञा नामक चक्र - का भेदन करना। इसके बाद कुंडलिनी शून्य चक्र स्थित ब्रह्मरंध्र मे पहुँच जाती है।

अनाहत नाद- अखिवल ब्रह्मांड में अखंड भाव से व्याप्त नाद।

नाद- योगी की देह में स्थित कुंडलिनी जब सक्रिय होकर ऊर्ध्वगमन करती हुई शीर्षस्थ चक्र में पहुँचती है तो उससे स्फोट होता है, जिसे नाद कहते हैं।

बिंदु - नाद से जो प्रकाश उत्पन्न होता है उसे बिंदु कहते हैं।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नाथ सम्प्रदाय

1 (क) नौ (ख) गोरखनाथ (ग) कनफटा

2 (क) असत्य (ख) असत्य (ग) सत्य

3 (घ) गोरखनाथ (घ) गोरखनाथ (ख) उपवास

2 आदिकालीन नाथ साहित्य

1 (क) असामान्य प्रतीकों (ख) मत्स्येन्द्रनाथ (ग) सघुक्कड़ी

2 (क) सत्य (ख) असत्य (ग) असत्य

(घ) सत्य

3 (क) नारी साहचर्य (घ) सोहर (ख) बीजक

परवर्ती हिंदी साहित्य पर प्रभाव

1 (घ) भक्ति का तत्त्व

9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ0 रामकुमार वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007

2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली,2002

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सम्वत्,2058 वि0

4. डॉ. पीताम्बरदत्त बडथ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, (सं0) डॉ0 गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली,1995

5. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ल, 2006

6. हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली,2010

9.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा, पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली,1995

2. हिन्दी काव्य-धारा, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद,1945

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाथ सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने में गोरखनाथ की भूमिका पर प्रकाश डालें।

2. आदिकालीन नाथ साहित्य की विशेषताओं का परिचय दें।

3. परवर्ती हिन्दी साहित्य पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव को स्पष्ट करें।

इकाई 10 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः पाठ एवं परिचय

इकाई का रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः पाठगत विशेषताएँ
10.4 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः सैद्धान्तिक पाठ
10.5 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः गैर-सैद्धान्तिक पाठ
10.6 सारांश
10.7 शब्दावली
10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
10.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन कविता से संबंधित यह दूसरी इकाई है। इसके पहले की इकाई में आपने सिद्धो की परम्परा और मान्यताओं के विषय में जाना। इसके अलावा आप आदिकालीन सिद्ध साहित्य और प्रमुख सिद्ध कवियों से परिचित हो चुके है। प्रस्तुत इकाई में आदिकालीन सिद्ध साहित्य की पाठगत विशेषताओ से आपका परिचय कराया जा रहा है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सिद्ध साहित्य में व्यक्त विचारों को जान सकेंगें और परवर्ती हिंदी साहित्य की प्रवृतियों से इसके संबंध की पहचान कर सकेंगें।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- आदिकालीन सिद्ध कवियों की कविता में उपस्थित सैद्धांतिक मान्यताओं और रु -विरोधी विचारो से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकालीन सिद्ध कवियो की रचनाओ की भाषा एवं शिल्प संबंधी विशेषताओ को जान सकेंगे।

10.3 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः पाठगत विशेषताएँ

जैसा कि आप जानते हैं कि सिद्धों की संख्या 84 मानी गयी है। इन 84 सिद्धों में भी सरहपा, कण्हण्पा, लुइपा, डोम्बिपा आदि की रचनाएँ ही साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इससे पहले की इकाई में आप यह पढ़ चुके हैं कि आदिकालीन सिद्ध साहित्य में रहस्यवाद संबंधी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के साथ-साथ वाह्याचारों, कर्मकांडों, पाखण्डों तथा धार्मिक रू यों का विरोध भी किया गया है एवं उन्होंने सहज जीवन पर बल दिया है। सिद्ध साहित्य में तत्कालीन समाज में धर्म के नाम पर प्रचलित वाह्याडम्बरों, कर्मकाण्डो आदि का विरोध मिलता है। वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर ऊंच-नीच तथा छुआ-छूत का भी उन्होंने विरोध किया और जीवन में निवृति के स्थान पर प्रवृति के महत्व का प्रतिपादन किया। सहज जीवन जीते हुये महासुख को प्राप्त करना उनकी साधना का लक्ष्य था, यद्यपि स्वयं सिद्ध साहित्य की शब्दावली में षटचक्र, नाड़ीविधान, शून्य गगन, सुरति-निरति जैसे रहस्यवादी प्रतीक भी मिलते हैं । साहित्यिक प्रवृतियों,भाषागत विशेषताओ तथा काव्य रुप की दृष्टि से सिद्ध साहित्य महत्वपूर्ण है। क्योंकि भक्तिकालीन निर्गुण संतो की अनेक काव्य

प्रवृतियों की आधारभूमि सिद्ध साहित्य प्रदान करता है । इस प्रकार सिद्ध कवियो की रचनाओं को सैद्धांतिक और गैर-सैंद्धांतिक कोटियो में विभाजित कर उनका अध्ययन किया जा सकता है।

सिद्धों का साहित्य दोहो और चौपाइयों के रुप में उपलब्ध होता है। दोहो में सिद्धो ने महासुख का वर्णन , वर्णाश्रम व्यवस्था आदि का विरोध किया और अपनी साधनात्मक अनुभूति को अभिव्यक्त किया। वहीं चर्यापद वे गीत होते थे जो सामान्यतः अनुष्ठानों के समय गाये जाते थे। चर्यापद संध्याभाषा के कूटपदो में लिखी गयी है और उनमें भी सिद्धों की रहस्यात्मक अनुभूति अभिव्यक्त हुई है। भाषा की दृष्टि से भी दोहों और चर्यागीतों की भाषा में पर्याप्त भेद दिखता है। दोहों की रचना परिनिष्ठित अपभ्रंश में हुई है जबकि चर्यापदों की अवहट्ठ में या कहें कि चर्यापदों में अपभ्रंश भाषा का वह रुप मिलता है जो देशभाषा मिश्रित है अर्थात हिन्दी की तरफ विकसित होती हुई अपभ्रंश। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि यही भेद आगे चलकर कबीर की 'साखी' और 'रमैनी' (गीत) की भाषा में मिलता है। साखी की भाषा तो खड़ी बोली राजस्थानी मिश्रित सामान्य 'सधुक्कड़ी' है पर रमैनी के पदो की भाषा में काब्य की भाषा ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली है। इस इकाई के अगले दो खण्डो में आपका परिचय आदिकालीन सिद्धसाहित्य के सैद्धांतिक और गैर-सैद्धांतिक पाठो से करवाया जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न -

(1) सिद्ध कवियों ने किस पर बल नहीं दिया है-

(क) काया तीर्थ (ख) सहज जीवन (ग) पाखंड खण्डन (घ) ब्रह्मचर्य

10.4 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः सैद्धान्तिक पाठ

अलियो ! धम्म महासुह पइसइ। लवणो जिमि पाणीहि विलिज्जइ।।

मन्तह मन्ते सन्तिण होइ । पडिलमिति की उट्ठिउ होइ।।

तरुफल दरिसण ठाउ अन्धाइ। वेज्ज देक्खि की रोग पलाइ।।

जावण आप जणिज्जइ । ताव ण सिस्स करेई ।।

अंधा-अन्ध कदाव तिम। तेण्ण वि कूत पडेइ।। (सरहपा)

अर्थ- प्रस्तुत पंक्तियों में सिद्ध कवि सरहपा रहस्यवाद की अभिव्यक्ति करते हुए कहते है कि सिद्ध साधना का लक्ष्य महासुख में प्रवेश पाना है। वे कहते हैं कि धर्म महासुख में प्रवेश पाना ही साधना का लक्ष्य है किन्तु इस महासुख की प्राप्ति के लिए वाह्याचारों एवं कर्मकाण्डों की आवश्यकता नहीं है। बल्कि जिस प्रकार नमक पानी में घुलकर अपनी पृथक सत्ता को समाप्त कर देता है, दोनो एकमेक हो जाते है उसी प्रकार ससीम "मैं" को असीम परमचेतना में मिलाकर ही महासुख की प्राप्ति हो सकती है। वाह्याचारों का पालन करने से यह सम्भव नहीं। मंत्रों के जपने से शांति की प्राप्ति नहीं होती तो महासुख की उपलब्धि क्या होगी। जैसे वृक्ष पर लगे फलों को देखने मात्र से ही भूख शान्त नही होती, वैद्य को देखकर रोगी रोगमुक्त नही हो जाता वैसे ही मंत्रादि के जाप से महासुख को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। क्योंकि इस प्रकार के वाह्याचारों में सुख और सुख को प्राप्त करने वाला जीव और कर्मचेतना दोनो की द्वैत स्थिति बनी रहती है, जबकि महासुख की प्राप्ति के लिए द्वैत नहीं अद्वैत को प्राप्त करना पड़ता है। साधक को अपने को मिटाकर महासुख रुपी महाचेतना में उसी प्रकार निमग्न होना पड़ेगा जैसे कि नमक पानी में घुलकर अपने अस्तित्त्व को मिटा डालता है।

अन्तिम पंक्ति में सरहपा अपने समाज में फैली तथाकथित गुरु-शिष्य परम्परा पर व्यंग्योक्ति करते हुए कहते हैं कि जब तक इस महासुख के रहस्य को स्वयं न जान लिया जाय तब तक किसी को शिष्य नहीं बनाना चाहिए। जबकि लोग ऐसा ही कर रहे हैं। वे स्वयं महासुख के रहस्य को तो जानते तक नहीं और गुरु बनकर शिष्य बना रहे है। यह ऐसा ही है जैसा कि अन्धा अन्धे को अन्धकार से निकालने का प्रयत्न कर रहा हो। ऐसे में स्वाभाविक ही है कि दोनों अन्धकार से निकलने की अपेक्षा गहरे अंधकूप में गिर जायेंगे। ऐसे गुरु को और ऐसे शिष्य को महासुख रुपी प्रकाश की झलक प्राप्त नहीं हो सकती है।

इस प्रकार सरहपा ने रहस्यवाद की अभिव्यक्ति करते हुए तद्युगीन समाज में फैले वाहयचारों, कर्मकाण्डों और तथाकथित गुरु शिष्य परम्परा की निरर्थता पर व्यंग्योक्ति के माध्यम से चोट की है।

संक पाश तोडहु गुरु पहणे। ण सुनइ सोणउ दीअइ णअणे।।

पवण वहन्ते णउ सो हल्लइ। जलण जलन्ते णउ सो उज्झइ।।

घण वरिसन्ते णउ सो तिम्मइ। ण उबज्जहि णउ खअहि पइस्सइ।।

णउ तं बाअहि गुरु कह्इ , णउ तं बुज्झइ सीस।

सहजामिअ-रसु सअल जगु, कासु कहिज्जइ कीस।।

सअ-संवित्ति तत्तफलु, सरहापा अ भणन्ति।

जो मण गोअर पाविअइ, सो परमत्थ ण होन्ति। (सरहपा)

अर्थ- सिद्ध कवि सरहपा उस परम तत्त्व के सूक्ष्म, अगम, अगोचर रुप को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि जिसे वास्तविक गुरु मिल गया हो और गुरु कृपा से जिसके बंधन टूट गये हों वही साधक उस परम तत्त्व को प्राप्त कर सकता है। वह परम तत्त्व हमारी इंन्द्रियो से परे है अर्थात उसे न सुना जा सकता है न नेत्रों से देखा जा सकता है। वह इंद्रियों के लिए अगम और अगोचर है। वह तत्त्व हवा चलने से न हिलता है न अग्नि ही उसे जला सकती है और न ही वह बादलों के बरसने से भीगता है। वह परमतत्त्व न तो कभी पैदा होता है न उसका कभी क्षय होता है अर्थात वह अनादि है और अनन्त है।

उस परम तत्त्व की प्राप्ति के " महासुख " को न गुरु अपनी वाणी से कह सकता है न उसे किसी शिष्य के द्वारा बूझा जा सकता है। उस सकल संसार के सहजामृत के स्वरुप व अनुभूति को किसी भी प्रकार व्यक्त नहीं किया जा सकता है। सिद्ध कवि सरहपा कहते हैं कि वह तत्त्व स्वयं संवेद्य है अर्थात उसकी अनुभूति स्वयं के द्वारा ही की जा सकती है। वह मन वाणी के लिए अगोचर है। वह अनुभूति का विषय है, उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता यदि वह बताया जा सकने वाला तत्त्व होता तो उसे बताकर परमार्थ प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार सरहपा ने उस परमतत्त्व को अगम अगोचर कहकर उसे अनुभूति का विषय माना है, न कि अभिव्यक्ति का। उस तत्त्व की केवल झलक प्राप्त की जा सकती है। वह गूंगे के गुड़ के समान है। कबीर की कविता में भी परमतत्त्व को इसी रुप में अभिव्यक्त किया गया है -

पारब्रह्म के तेज का कैसो है उन्मान

कहिबे को सोभा नही, देख्या ही परवान।।

जाकै मुंह माथा नहीं, नहीं रुप अरुप

पुहुप वास तै पातरा ऐसा तत्त्व अनूप।।

सुन-करुण अभिन्ने चारे काअवाचीए।

विलसइ दारिक गअणत परिमकूले।।

अलक्स लक्खइ चिए महासुहे।

विलसइ दारिअ गअणत परिम कूले।।

कन्तो मन्तो किन्तो तन्तो किन्तो झाण बखाणे।

अप्प पइठा महासुख लीलें दुलक्ख परम निवाणे।।

दुःखे सुक्खे एकू करिआ भु´जइ इन्द जानी।

स्वपरापर न चेवइ दारिक सअलानुत्तर मानी।।

राआ,राआ राआ रे अवर राआ मोहे बाधा।

लुइपाए-पए दारिक द्वादस भुअणे लाधा। (दारिकपा)

अर्थ- सिद्ध कवि दारिकपा की उपर्युक्त पंक्तियां चर्यागीत की उदाहरण हैं। दारिकपा परम महासुख की प्राप्ति की दशा का वर्णन करते हुये कहते है कि महासुख प्राप्ति की दशा में शून्य दशा प्राप्त होने पर काया, वाणी और चेतना अभिन्न होकर उस दशा में जा पहुंचती है, जहॉ शून्य करुणा गगन में विराजमान है अर्थात साधक जब कुंडलिनी को सहस्रार चक्र में पंहुचा देता है तब उस शून्य गगन में करुणा विलसती रहती है। और वह जिसे देखा नहीं जा सकता है। उस परमतत्त्व को देखने में समर्थ हो जाती है और चेतना महासुख की अनुभूति करती है। उस परम महासुख को तंत्र, मंत्र, ध्यान के बखान से प्राप्त नहीं किया जा सकता। वहां तो शून्य शिखर पर साधक को स्वयं प्रवेश करके उस दुर्लभ परम निर्वाण को प्राप्त करना पड़ता है। उस परम निर्वाण या महासुख की दशा में साधक के सांसारिक दुख-सुख, बाधाओं तथा मोह का स्वयं ही अन्त हो जाता है। दारिकपा कहते है कि सांसारिक राज-पाठ के मोह में बंधा मनुष्य उस दशा को प्राप्त होते ही बारह भुवनों का स्वामी हो जाता है अर्थात उसके के लिए कुछ भी अलभ्य नहीं रह जाता है।

साधना की शब्दावली के प्रयोग से साधनात्मक रहस्यवाद इन पंक्तियो में देखा जा सकता है। शून्य शिखर, गगन आदि शब्द अन्तःसाधना के शब्द हैं। आगे चलकर संत कवियों ने भी अपने साधनात्मक रहस्यवाद की अभिव्यक्ति में योग साधना के प्रतीको का प्रयोग किया है। उदाहरण के तौर पर कबीर की इन पंक्तियों को देखा जा सकता है-

अगम अगोचर गमि नाहि, वहाँ जगमगै जोति।

जहाँ कबीरा बंदिगी, तहाँ पाप पुन्य नहीं होति।।

सायर नहीं सीप बिन, स्वाति बूंद भी नाहिं।

कबीरा मोती उपजै, सुन्नि सिषर गढ़ मांहि।।

जहि मण पवण ण संचरइ, रवि ससि णाह प्रवेश।

तहि ग चित्त विसाम करु, सरेह कहिअ उवेस।।

आदि ण अन्त ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिब्बाण।

एहँ सो परममहासुह, णउ पर णउ अप्पाण।।

सअ संविति म करहु रे धन्धा। भावभाव सुगति रे बन्धा।

णिअ मण मुणहुरे णिउणों जोइ। जिम जल जलहि मिलन्ते सो। (सरहपा)

अर्थ- सिद्ध कवि सरहपा परम तत्त्व की सूक्ष्मता को व्यक्त करते हुए कहते है कि वह परम तत्त्व सहस्रार चक्र की ऐसी गुफा में स्थित है जहां मन और वायु दोनो का संचार नही हो सकता। वहां सूर्य और चन्द्रमा भी प्रवेश नही कर सकते। वे कहते हैं कि चेतना को उसी परमतत्त्व को पाकर विश्राम करना चाहिए। उस परमतत्त्व का न प्रांरम्भ है न अन्त और न मध्य। वह कभी न पैदा होता है और न कभी उसका अन्त होता है। वह परम शाश्वत है, अर्थात आदि और अन्त से परे है। इसलिए चेतना को सांसारिक क्षणभंगुर सुखों की प्राप्ति का प्रयास न कर उस शाश्वत परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए। तभी उसे परम महासुख की प्राप्ति हो सकती है। अन्यथा साधक सांसारिक, क्षणभंगुर मिथ्या सुखो की खोज में भटकता रहेगा।

वह परम महासुख स्वयं संवेद्य है। उसे प्राप्त कर साधक भाव और अभाव से परे हो जाता है। निपुण कुशल योगी उस परमतत्त्व को अपने मन में ध्यान कर प्राप्त करते हैं । जैसे जल, जल में मिलकर अपनी पृथक सत्ता को खो देता है, दूसरे जल से मिलकर अभिन्न हो जाता है। उसी प्रकार साधक योगी भी साधना के द्वारा उस परम तत्त्व को प्राप्त कर अपनी ससीम सत्ता खोकर असीम हो

जाता है। अर्थात वह स्वयं परम महास्वरुप हो जाता है। उसे भेद में अभेद की प्रतीति हो जाती है। वह सुखमय, आनन्दमय हो जाता है।

काअ नावड़ि खन्टि मण केडुआल। सदगुरु वअणे घर पतवाल।।

चीअ थिर करि धरहु रे नाई। अण्ण उपाए पार न जाइ।।

नौवहि नौका टानअ गुणे। निर्मलि सहजे जाउ ण आणे।।

बाटत भअ खान्ट बी बलआ। भव उल्लोले सब्ब वि वलिआ।।

कूल लई खरे स्रोते बहाय। सरहा भणइ गअणे समाय। (सरहपा)

अर्थ- उपर्युक पंक्तियों में सिद्ध कवि सरहपा सहज मार्ग का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहते हैं, कि इस संसार रुपी समुद्र में मनुष्य की देह एक छोटी सी नौका के समान है। मन पतवार के समान है। चूँकि मन चंचल होता है और किसी भी वस्तु से उसकी तृप्ति नही होती है इसलिए चंचल मन रुपी पतवार से मनुष्य की देह रुपी नौका संसार सागर में निंरतर आकर्षणों में फंसी इधर-उधर डोलती रहती है और अपनी यात्रा कभी भी पूरी नही कर सकती। ऐसी स्थिति से बचने का एकमात्र उपाय है कि सतगुरु के वचन रुपी पतवार से अपनी जीवन नौका को खेना चाहिए। अपनी चेतना को स्थिर करके सदगुरु के वचनों का आसरा लेने के अतिरिक्त किसी भी अन्य उपाय के द्वारा जीवन नौका को संसार-समुद्र के पार नहीं ले जाया जा सकता। इस संसार -समुद्र में चंचल मन अपने गुण रुपी रस्से से देह रुपी नौका को खींचता रहता है और संसार -समुद्र के तूफानों में नाव फंसी रह जाती है। वह कई धाराओं और प्रखर स्रोतों में फंसकर अपनी जीवनी शक्ति का क्षय कर लेती है। कवि सरहपा कहते हैं कि सदगुरु के वचनों का आसरा लेकर ही जीवन रुपी नौका को शून्य गगन में ले जाया जा सकता है, यही सहज मार्ग है।

सहजे णिच्चल जेण किअ, समरसे निअन्मण राअ।

सिद्धे सो पुण तक्खणे, णउ जरमरणह स भाअ। (कण्हपा)

अर्थ- सिद्ध कवि कण्हपा सच्चे सिद्ध को परिभाषित करते हुए कहते है कि वही सच्चा सिद्ध है जिसने अपना मन समरसता में अनुरक्त करके निश्चल कर लिया है। ऐसे सिद्ध को जन्म मरण का भी भय नही होता। क्योंकि वह जीवन के द्वन्द्वो से ऊपर उठकर उन्हे समरस दृष्टि से देखने योग्य हो जाता है।

एहु सो गिरिवर कहिअ मइँ, एहु सो महासुह ठाव।

एक्कु रअणी सहज-खण, लब्भइ महसुह जाव।। (कण्हपा)

अर्थ- सिद्ध कवि कण्हपा कहते हैं कि यहीं वह गिरिवर है और यही वह महासुख का ठिकाना है। सहज क्षण की एक ही रात्रि है जिससे महासुख प्राप्त होता हैं।

जिम लोण विलिज्जइ पाणिएहि, तिम धरिणि लाइ चित्त।

समरस जाइ तक्खणे, जइ पुणु ते सम ण्त्ति।। (कण्हपा)

अर्थ- सिद्ध कवि कण्हपा के अनुसार जिस प्रकार नमक पानी में विलीन हो जाता है उसी प्रकार यदि अपनी घरिणी अर्थात पत्नी को लेकर चित्त को समरस भाव में ले जाऐ तो समरसता प्राप्त हो सकती है। जिस प्रकार नमक पानी में अपने अस्तित्व को मिटा देता है उसी प्रकार यदि ज्ञान रूपी गृहिणी को लेकर चेतना समरस होतो उसी क्षण साधक नित्य समरसता को प्राप्त कर लेता है।

जिम विस भक्खइ, विसहि पलुत्ता।

तिम भव भु´जइ भवहि ण जुत्ता।।

खण आणंद भेउ जो जाणइ।

सो इह जम्माहि जोई भणिज्जइ।।

हँउ सुण्ण, जगु सुण्ण तिहुअण सुण्ण।

णिम्मल सहजै ण पाप ण पुण्ण।।

जहँ इच्छइ तहि जाउ मण। एत्थुण किज्जइ भन्ति।।

अध उधाडि आलोअणे झाणें होइ रे थित्ति।। (तिलोपा)

अर्थ- सिद्ध कवि तिलोपा संसार में भोग को त्यागने के बजाय भोगो को जागकर भोगने पर बल देते है। इस प्रकार वे संसार को त्यागने के स्थान पर संसार को स्वीकार कर, भोग कर उससे मुक्त होने की बात करते है। तिलोपा कहते हैं कि जिस प्रकार विष खा लेने पर विष से ही उसका उपचार किया जाता है, उसी प्रकार भोगों को त्यागने की अपेक्षा उन्हें भोग कर एवं जानकर ही उनसे मुक्त हुआ जा सकता है। इन्द्रियों के दमन द्वारा नहीं, अपितु भोगों को जानकर, भोगकर ही उन्हे जाना जा सकता है। इस संसार में आनंद क्षणो में ही है इसलिए उनका भोग क्षणो में ही करना चाहिए। यहॉ मनुष्य की

सत्ता , संसार एवं त्रिभुवन की सत्ता शून्य है। निर्मल सहज चित्त के लिए न कुछ पाप है और न पुण्य। मनुष्य का मन इच्छाओं के अधीन है। चूँकि वह इच्छाओं के पीछे भागता है, इसलिए यह भ्रान्ति नहीं रखनी चाहिए कि उसे संयमित करना संभव है। अपनी आँखो को खोलकर अर्थात अपने विवके एवं ज्ञान रुपी नेत्रो से अवलोकन कर, भोगों को भोगकर ही उनसे पृथक हुआ जा सकता है। ज्ञान विवेक रुपी आँखों से भोगो का अवलोकन करके ही ध्यान में स्थित हुआ जा सकता है, अन्यथा नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि सिद्ध कवि सांसारिक सुखो के विरोधी नहीं है, बल्कि वे इन्द्रियों के दमन का विरोध करते है। वे संसार से पलायन को नहीं, बल्कि संसार के भोगों को जानकर उनसे विमुक्त हो जाने को उचित मानते है। इसीलिए सिद्ध कवि गृहस्थ जीवन के विरोधी नहीं है। इस रुप में सिद्ध कवि अपने काव्य में निवृति की अपेक्षा प्रवृति का प्रतिपादन करते हैं।

एत्थु से सुरसरि जमुणा, एत्थ सें गंगा साअरु।

एत्थु पआग वणारसि एत्थु सें चन्द दिवाअरु।।

खेत्तु-पीठ-उपपीठ,एत्थु मइँ भमइ परिट्ठओ।

देहा- सरिसअ तित्थ मइँ सुह अण्ण ण दिट्ठओ।। (सरहपा)

अर्थ- सिद्ध कवि सरहपा कहते हैं कि देह जैसा तीर्थ न मेंने सुना है और न ही देखा है। इसी देह रुपी तीर्थ में गंगा, यमुना और गंगा सागर भी है। यहीं प्रयाग और वाराणसी जैसे तीर्थ स्थित हैं। यही सूर्य और चंद्रमा भी विराजमान है। विभिन्न शक्ति पीठ, उपपीठ, पवित्र क्षेत्र भी देह रुपी तीर्थ में ही स्थित है। इसलिए मन रुपी भंवरे को इन्ही तीर्थो का भ्रमण करना चाहिए न कि बाहरी संसार में उपस्थित किसी तीर्थ का। सरहपा की राय में तीर्थो में स्नान, दानादि का कोई महत्व नहीं है। वास्तविक मुक्ति देह तीर्थ यात्रा में ही निहित है।

वस्तुतः अंतः साधना के क्रम में साधक अपनी कुँडलिनी को साधना के द्वारा जाग्रत कर मूलाधार चक्र से सहस्रार चक्र तक पहुँचाने का प्रयत्न करता है। सहस्रार चक्र में कुँडलिनी के पहुँचते ही साधक उस अखण्ड आनन्द का अनुभव करता है जो भारतीय आध्यात्मिक साधना का चरम लक्ष्य है। वहाँ अमृत की निरंतर वर्षा और अनहद नाद के संगीत को साधक निंरतर अनुभूत करता हुआ मुक्ति प्राप्त कर लेता है। कुँडलिनी जागरण के लिए साधक अपने श्वास-प्रश्वासों की विशेष क्रिया करता है। ऐसा माना गया है कि मनुष्य शरीर में इड़ा, पिगंला और सुषुम्ना तीन नाड़ियां हैं। इड़ा को चन्द्र और गंगा भी कहा गया है और पिगंला नाड़ी को सूर्य या यमुना भी कहा गया है, जबकि सुषुम्ना

नाड़ी को सरस्वती की संज्ञा दी गयी है। जब साधक निरतंर प्रयासों से इडा और पिगंला नाड़ी को सुषुम्ना नाड़ी से मिला लेता है तब कुँडलिनी शक्ति जाग्रत होकर धीरे धीरे छः चक्रो को भेदती हुई सिर के मध्य स्थित सहस्रार चक्र तक जा पहुचती है।

इस पद में देह में ही गंगा, यमुना और गंगा सागर जैसा तीर्थ होने का अर्थ है इडा , पिंगला नाड़ियों को साधकर सहस्रार चक्र में पहुँचना, अर्थात इड़ा नाड़ी गंगा है, पिंगला नाड़ी यमुना है और सहस्रार चक्र है गंगा सागर जहाँ पहुँच कर इन नदियों की यात्रा समाप्त हो जाती है और वे आनन्द सागर में मिल जाती है । भौतिक संसार में तो गंगा, यमुना और सरस्वती का मिलन प्रयाग में होता है, जो स्वयं एक बड़ा तीर्थस्थल है। ऐसा माना जाता है कि वहाँ स्नान करने से सभी पाप कट जाते हैं। किन्तु योग साधना में इड़ा रुपी गंगा, पिंगला रुपी यमुना का मिलन जब सुषुम्ना रुपी सरस्वती से होता है तो देह में ही प्रयाग और बनारस जैसे तीर्थ बन जाते हैं। विभिन्न क्षेत्र पीठ और शक्तिपीठों को शरीर स्थित विभिन्न चक्रों में स्थित बताया गया है। इसीलिए सरहपा कहते हैं कि यह देह स्वयं एक तीर्थ है। ध्यान योग द्वारा इसकी साध्ना करने से बार्ह्य तीर्थों में जाने की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। यद्यपि सिद्व कवियों ने सहज जीवन पर न जोर दिया तथापि उनकी कविता में भी शून्य शिखर, अमृत वर्षा, सूर्य चद्र जैसे हठयोग के पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग मिलता है। धर्म के नाम पर तद्युगीन समाज में फैले पाखंडों, कुरीतियों वाह्याचारों का खंडन उन्होंने ध्यान योग के आधार पर ही किया है। नाथ संप्रदाय में भी माना गया है कि " जोई जोई पिण्डे सोई ब्रह्माण्डे " अर्थात जो इस देह रूपी पिंड में है वही ब्रह्माड में भी है। यह अकारण नही है कि 84 सिद्धों की सूची में कई नाथों के नाम भी मिलते हैं। इस साधनात्मक रहस्यवाद का विकास आगे चलकर कबीरादि संत कवियों में देखने को मिलता है। भावसाम्य के लिए कबीर की इन पंक्तियों को देखिए-

गंगा जमुना उर अंतरै, सहल संनिल्यौ घाट।

तहां कबीरा मठ रच्या, मुनि जन जौवे बाट।।

यहाँ गंगा, यमुना तो हठयोग की साधना के शब्द है ही सहज और शून्य तो सीधे-सीधे सिद्ध पंरपरा से ही आए हैं।

अभ्यास प्रश्न -

(1) " जहि मण पवण ण संचरई, रवि ससि णाह प्रवेश "

इस पंक्ति के रचनाकार कौन हैं?

(क) तिलोपा (ख) दारिकपा (ग) सरहपा (घ) कण्हपा

10.5 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः गैर-सैद्धान्तिक पाठ

बम्हणहि म जाणन्त हि भेउ। एँवई पदिअउ ए चउबेउ।।

मट्टि पाणि कुस लइ प न्त। धरहिं बइसी अग्गि हुणन्त।।

कज्जे विरहइ हूअवह होमें। अक्खि डहाविअ कढुए धूयें।।

एकदण्डि त्रिदण्डी भअवाँ वेसें। विणुआ होंइअइ हंस उऐसे।।

मिच्छेहां जग वाहिअ भुल्ले। धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्लें।।

अइरिएहूँ उद्दूलिअ छारें। सीस सु बाहिअ ए जडभारे।।

घरहि वइसी दीवा जाली। कोणहिं वइसी घण्टा चाली।।

अक्खि णिवेसी आसण बन्धी। कण्णेहिं खुसखुसाय जण धन्धी।।

दीहणखा जइ मलिणे वेसे। णग्गल होई उपाडिअ केसें।।

खवणेहि जाण-विडंविअ वेसें । अप्पण वाहिअ मोक्ख उवेसे।। (सरहपा)

अर्थ -सिद्ध कवि सरहपा की कविताओं में एक ओर अंतसाधना द्वारा महासुख की प्राप्ति की अनुभूतियों का वर्णन मिलता है, वहीं दूसरी ओर वर्णाश्रम व्यवस्था के आडम्बर, वाह्याचार एवं धर्म के नाम पर प्रचलित अतार्किक विधि-विधानों का खंडन भी मिलता है। प्रस्तुत पद में वे ब्राह्मण धर्म के रीति-रिवाजों का खण्डन करते हुए कहते हैं कि ब्राह्मण वस्तुतः धर्म के सूक्ष्म तत्त्व भेद को जानता तक ही, फिर भी बिना जाने वह वेदों को पढ़ता रहता है। वह मिट्टी, पानी और कुशा लेकर घर में बैठ कर यज्ञ की अग्नि में होम करता रहता है और अपनी आँखों को कडुए धुँए से कष्ट देता रहता है।

ये ब्राह्मण धर्म के वास्तविक और मिथ्या रुपों के बारे में हंस के समान नीर-क्षीर विवेक से शून्य होते हैं। धर्म क्या है ? और अधर्म क्या है ? , इसको जाने बिना ही ये भगवा भेष धारण कर माथे पर त्रिपुण्ड लगाए इस मिथ्या संसार के वाह्य स्वरुप में ही उलझे रहते हैं। कोई अपनी देह पर मृगछाला लपेट कर मस्तक पर बड़ी-बड़ी जटाये धारण करते हैं और घर के कोने में दीपक जलाकर

घंटी बजाते है। कुछ आँख मूँद कर , आसन जमाकर, मन्द-मन्द स्वरों में फुसफुसाते हुए मंत्रों का जाप करते रहते हैं। कुछ अपने नाखूनों को बढ़ाकर नग्न होकर अपनी देह के केशो को उखाड़कर और मलिन वेष धारण कर समझते हैं कि वे ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। सरहपा कहते है कि वास्तव में इस प्रकार के साधनों को अपनाकर वे मोक्ष गंवा रहे हैं। सरहपा की दृष्टि में धर्म का मूल तत्त्व अति सूक्ष्म है, उसे सहज साधना मार्ग से ही पाया जा सकता है। उस तत्त्व की प्राप्ति में वाह्याचारों, कर्मकाण्डो की कोई आवश्यकता नहीं है, बल्कि ये वाह्य उपादान तो उस तत्त्व की प्राप्ति में बाधक ही हैं।

जई णग्गाविअ होई मुत्ति, ता सुणह सिआलह।

लोम उपाडण अत्थि सिद्धि, ता जुवइ-णिअम्बह।।

पिच्छि गहणे दिट्ठ मोक्ख, ता मोरह चमरह।

उच्छ भोजणे होइ जाण, ता करिह तुरंगहु।। (सरहपा)

अर्थ- सिद्ध कवि सरहपा कहते है यदि नंगा होने से मुक्ति मिलती, तो सियार और कुत्ते तो जन्म से ही नंगे हैं, उनकी मुक्ति तो कब की हो जानी चाहिए। यदि केशों को मुंडाने से मुक्ति मिलती तो युवतियों के नितम्ब तो स्वभावतः केशरहित हैं, पहले उन्हे मुक्ति मिल जानी चाहिए। यदि पीछे देखने से, अर्थात परंपरा के अनुकरण से ही मुक्ति मिलती तो मोर बार-बार पीछे मुड़कर अपने चमकीले पंखो को ही देखता रहता है। इसलिये सबसे पहले मोर को मुक्ति मिलनी चाहिए। इसी प्रकार यदि उच्छिष्ट भोजन करने से मुक्ति मिलती तो घोड़े आदि पशु तो उच्छिष्ट भोजन ही करते है उन्हें मुक्ति क्यों नहीं मिलती ?वास्तव में सरहपा का कहना यह है कि धर्म के नाम पर समाज में जो पांखड चल रहा है उस पाखंड का धर्म के वास्तविक तत्त्व से कोई सम्बन्ध नहीं है। उस तत्त्व को तो सहज साधना के मार्ग से ही पाया जा सकता है। आप देख सकते हैं कि सरहपा ने धर्म के नाम पर चल रहे पाखंडों का खंडन सहज स्वाभाविक रुप से सामान्य उदाहरणों के द्वारा किया है। आगे चलकर कुछ ऐसी ही पंक्तियां कबीर के यहाँ भी मिलती हैं-

मूंड मुँडाये हरि मिलै, हर कोई मूँड मुँडाये।

सौ बार के मूँडने, भेड़ न बैकुंठ जाय।।

तित्थ तपोवण म करहु सेवा। देह सुचीहि ण सन्ति पावा।।

बम्हा-विह्नु महेसुर देवा। बोहिसत्व मा करहू रे सेवा।।

देव ण पूजहू तित्थ ण जावा। देव पुजाही मोक्ख ण पावा।।

बुद्ध अराहहु अविकल चित्ते। भव णिब्बाणे ण करहु थित्ते। (तिलोपा)

अर्थ- सिद्ध कवि तिलोपा उपर्युक्त पंक्तियों में कहते हैं कि न तो तीर्थों तपोवनों में सेवा करने से, और न ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओं की उपासना करने से देह पवित्र होती है। इससे पापों का उन्मोचन भी नहीं होता है। देव पूजा और तीर्थों की यात्रा व्यर्थ है, क्योंकि इनसे व्यक्ति मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। मात्र अविकल चित्त से बुद्ध की आराधना करने से ही संसार से निर्वाण प्राप्त हो सकता है।

पंडित सअल सन्त बक्खाणइ। देहहि बुद्ध बसंत न जाणइ।

अमणागमण ण तेन विखंडिअ। तोवि णिलज्ज भणइ हउँ पंडिआ।। (सरहपा)

अर्थ- उपर्युक्त पंक्तियों में सिद्ध कवि सरहपा अंतः साधना पर बल देते हुए पंडितो को फटकारते हैं और कहते हैं कि पंडित लोग हमेंशा सत्य बोलने का दावा करते हैं जबकि उन्हें शरीर और बुद्वि के विषय में कुछ पता नहीं होता। वे आवागमन को तो समाप्त नही कर पाते, फिर भी बिना किसी संकोच के अपने को पंडित कहते हैं। ब्राह्मण अपने को विद्वान मानते है पर उन्हे अंतः साधना का कुछ पता नहीं, वे जीवन के बाहरी आवरणों में ही उलझे रहते है।

अक्खर बा ा। सअल जगु, णाहि निरक्खर कोइ।

ताव से अक्खर घोलिया, जाव निरक्खर होइ।। (सरहपा)

अर्थ- सरहपा के अनुसार सारा संसार अक्षर अर्थात शास्त्रज्ञान से बाधित है, निरक्षर कोई नहीं है। इसलिए उतना ही अक्षर ज्ञान घोलो, अर्थात उतना ही शास्त्रज्ञान पर्याप्त है जिससे निरक्षरता यानी शास्त्रों के ज्ञान का खंडन किया जा सके।

आगम-वेअ-पुणेहि, पण्डिअ माण बहन्ति।

पक्क सिरीफले अलिअ जिम, बाहेरीअ भमन्ति।। (कण्हपा)

अर्थ- उपर्युक्त पंक्तियों में सिद्ध कवि कण्हपा वेद पुराण के ज्ञान की आलोचना करते हुए लिखते है कि विद्वान समझे जाने वाले लोग आगम वेद पुराण को ही सर्वस्व मानकर ोते रहते है। वस्तुतः वे

मूलतत्त्व के पास भी फटकने नहीं पाते। कण्हपा का आशय यह है कि धर्म का मूलतत्त्व शब्दों से या शास्त्र ज्ञान से प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

लोअह गस्ब समुब्बहइ , हउ परमत्थे पवीण।

कोटिह मज्झे एक्कु जइ, होइ णिरंजण लीण।। (कण्हपा)

अर्थ- सिद्ध कवि कण्हपा कहते हैं कि लोग व्यर्थ में ही गर्व करते है कि हम परमार्थ में प्रवीण हैं, जबकि करोड़ो लोगो के मध्य कोई एक ही निरंजन पुरूष ऐसा होता है जो वास्तव में परमार्थ में लीन होता है। कहने का आशय यह है कि साधारण लोग परमार्थ का झूठा गर्व करते है। क्योकि उनके परमार्थ में भी कोई न कोई स्वार्थ निहित रहता है, जबकि निरंजन पुरूष अर्थात जिसे आत्मज्ञान की प्राप्ति हो चुकी है, वह वास्तविक करूणा से भरा होकर परमार्थ में ही जीवन लगा देता है।

10.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके है कि आदिकालीन सिद्ध साहित्य में वर्णाश्रम व्यवस्था का खंडन वाह्याचारो तथा धर्मकांडो का विरोध,सहज जीवन और प्रवृति मार्ग का प्रतिपादन तथा महासुख आदि का वर्णन किया गया है। सिद्ध कवियो के दोहो और चर्यागीतो में प्रयुक्त भाषा में अंतर है। इस इकाई को प ने के बाद आप आदिकालीन सिद्ध साहित्य की विषयवस्तु और भाषा के स्वरुप को परिचित हो सकेंगे।

10.7 शब्दावली

लवणों	-	नमक
तरुफल	-	वृक्ष पर लगे फल
कूव	-	कुँआ
नावड़ि	-	नाव
सुरसरि	-	गंगा
रअणी	-	रात

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

आदिकालीन सिद्ध साहित्य की पाठगत विशेषतायें।

(1) (घ) ब्रह्मचर्य

आदिकालीन सिद्ध साहित्यय सैद्धान्तिक पाठ।

(1) (ग) सरहपा

10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) हिन्द काव्य-धारा, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, 1945

(2) हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, डॉ.नामवर सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971।

10.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

(2) हिन्दी साहित्य का आदिकाल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

(3) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. रामकुमार वर्मा,लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) दोहा एवं चर्या गीतों में क्या अन्तर है? उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

(2) आदिकालीन सिद्ध साहित्य की विषयगत तथा भाषागत विशेषताओं का उदाहरण सहित परिचय दें?

इकाई11 आदिकालीन नाथ साहित्य: परिचय एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उददेश्य
11.3 नाथ सम्प्रदाय
11.4 आदिकालीन नाथ साहित्य
11.4.1 वर्ण्य विषय/काव्यवस्तु
11.4.2 भाषा-शैली
11.5 प्रमुख नाथ कवि
11.6 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
11.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.12 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन कविता पाठ एवं आलोचना से संबंधित यह तीसरी इकाई है। इसके पहले की दो इकाइयों में आप आदिकालीन सिद्धों की मान्यताओं एवं उनके साहित्य की विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं। नाथ पंथ या सम्प्रदाय को सिद्धों की परम्परा का ही संशोधित रूप माना जाता है। प्रस्तुत इकाई में नाथों की साधना पद्वति और मान्यताओं का परिचय देते हुए आदिकालीन नाथ साहित्य की विशेषताओं और प्रमुख नाथ कवियों का परिचय दिया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप आदिकालीन सिद्धों की मान्यताओं से नाथ सम्प्रदाय की भिन्नता, नाथ साहित्य की प्रवृत्तिगत एवं भाषागत विशेषताओं तथा परवर्ती हिंदी साहित्य पर पड़ने वाले इसके प्रभाव को जान सकेंगे।

11.2 उददेश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि नाथ सम्प्रदाय की क्या-क्या विशेषताएँ हैं।
- आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- परवर्ती भक्तिकालीन हिंदी साहित्य (निर्गुण या संत काव्य) पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव की पहचान कर सकेंगे।

11.3 नाथ सम्प्रदाय

इससे पहले की इकाइयों में आपने आदिकालीन सिद्ध साहित्य का परिचय प्राप्त किया है। नाथों का समय इन सिद्धों से थोड़ा बाद का है। चौरासी सिद्धों की सूची में कुछ नाथों के नाम भी मिलते हैं। इसीलिए नाथों का संबंध इन बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों से माना जाता है। हालाँकि सिद्ध कवि देश के पूर्वी हिस्से में रह रहे थे जबकि नाथों का निवास स्थान देश के पश्चिमोत्तर हिस्से में (राजपूताना और पंजाब) में बताया जाता है। नाथ पंथ या सम्प्रदाय को "सिद्धमत","सिद्धमार्ग", "योगमार्ग", "योग सम्प्रदाय' तथा "अवधूत मत" भी कहा गया है। डा. रामकुमार वर्मा के अनुसार – "सिद्धों की विचारधारा और उनके रूप को लेकर ही नाथ-वर्ग ने उनमें नवीन विचारों की प्रतिष्ठा की और उनकी व्यंजना में उनेक तत्त्वों का सम्मिश्रण किया।"

नाथों की संख्या नौ मानी जाती है। इन्हें "नवनाथ' के नाम से जाना जाता है। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं-आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, गाहिणीनाथ, चर्पटनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृनाथ और गोपीचंदनाथ। नाथपंथी अपनी गुरू परंपरा शंकर (शिव) से आंरभ करते हैं। शंकर इस प्रकार आदिनाथ कहलाए। एक जनश्रुति के अनुसार शंकर ने सर्वप्रथम पार्वती को योग

का रहस्य बतलाया था। मत्स्येन्द्रनाथ या मच्छंदरनाथ ने नदी की मछली का रूप धारण कर यह संवाद सुन लिया। इस कारण शंकर ने उन्हें इन्द्रिय-सुख में बँध जाने का श्राप दे दिया। बाद में मत्स्येन्द्रनाथ के ही शिष्य गोरखनाथ ने अपने गुरू का उद्धार किया। वास्तव में इस जनश्रुति से हमें गोरखनाथ द्वारा अश्लील तांत्रिकता का विरोध कर उसके स्थान पर ब्रह्मचर्य या इन्द्रिय संयम पर आधारित योगमार्ग को प्रतिष्ठित करने का संकेत मिलता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आदिनाथ शिव से शरू हुई परम्परा को मत्स्येन्द्रनाथ ने आगे बढ़ाया और उनके शिष्य गोरखनाथ ने इसे एक सम्प्रदाय या पंथ के रूप में प्रतिष्ठित किया।

मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ के नाम सिद्धों की सूची में भी मिलते हैं। लेकिन गोरखनाथ सिद्धों की वाममार्गी भोगप्रधान साधना-पद्धति के विरोधी थे। नाथ सम्प्रराय दार्शनिकता की दृष्टि से शैवमत के अंतर्गत है और व्यावहारिकता की दृष्टि से पतंजलि के योग से संबंधित है। गोरखनाथ ने इनके मेल से **हठयोग** रूपी साधना-पद्धति का प्रवर्तन किया। उन्होंने ब्रह्मचर्य, वाक्संयम, शारीरिक-मानसिक पवित्रता को अपनाने तथा मांस-मदिरा का त्याग करने की शिक्षा दी। उनका मानना था- **"जोई-जोई पिंड सोई ब्रहमांड"**, अर्थात जो शरीर में है वहीं ब्रहमांड है। इस प्रकार गोरखनाथ नाथ मत या सम्प्रदाय के प्राणदाता कहे जा सकते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- "शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित व्यक्तित्व भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष के कोने-कोने में उनके अनुयायी आज भी पाये जाते हैं। भक्ति आंदोलन के पूर्व सबसे शाक्तिशाली धार्मिक आंदोलन गोरखनाथ का भक्ति मार्ग ही था। गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे।"

नाथ सम्प्रदाय ने सिद्ध सम्प्रदाय की रूढ़ियों का खंडन करते हुए ही अपनी साधना पद्धति विकसित की। नाथों ने सदाचार का आश्रय लेकर काया (शरीर) में ही तीर्थ की अनुभूति की। गोरखनाथ ने पाखंडों का खंडन किया और मंत्रों को व्यर्थ बताया। योग द्वारा शरीर का कायाकल्प करना नाथों की साधना का आवश्यक अंग रहा है। क्योंकि जब तक शरीर चैतन्य और तेजयुक्त नहीं होगा, तब तक अविरत साधना नहीं हो सकती है। **नाथ** का अर्थ **मुक्तिदान करन वाला** माना गया है। जो स्वयं **मुक्त** होगा वही मुक्ति का दान कर पाएगा। इसीलिए नाथ सम्प्रदाय में संसार के बंधनों से मुक्त होने की विधि बताई गई है। संसार के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि विषयों से तभी मुक्ति मिल सकती है, जब मन में वैराग्य की भावना स्थिर हो। यह वैराग्य- भाव गुरू की सहायता से ही उत्पन्न हो सकता है। इसके बाद योगी इन्द्रिय-निग्रह, प्राण- साधना और मन-साधना की ओर अग्रसर होता है। गोरखनाथ ने इन्द्रियों के लिए सबसे बड़ा आकर्षण **नारी** को बताया और अपने अनुयायियों के लिए नारी से दूर रहने का कड़ा नियम बनाया। इसके बाद प्राण- साधना का स्थान है, अर्थात प्राण-वायु के नियमित संचालन का अभ्यास। मन-साधना का अर्थ है संसार के विभिन्न आकर्षणों की ओर से मन को खींचकर अपने अन्तःकरण की ओर उन्मुख कर लेना। इन सब की सिद्धि के बाद योगी में नाड़ी- संचालन और कुंडलिनी- जागरण की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों और नाथों में अंतर था। सिद्ध निरीश्वरवादी थे, जबकि नाथ ईश्वरवादी थे। हालाँकि नाथों के ईश्वर सगुण न होकर निर्गुण निरंजन थे। नाथों ने जाति-पांति का भेद नहीं माना। गोरखनाथ स्वयं ब्राहमण थे, लेकिन उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था को नहीं माना। मध्यकाल में मुस्लिम शासन की स्थापना होने पर हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया। ऐसे जाति-परिवर्तित गरीब मुसलमानों में बहुत से लोगों ने नाथ पंथ को अपना लिया। इस तरह नाथ सम्प्रदाय के अनुयायियों की नई और अनोखी जाति बन गई जिसके सदस्य न तो हिन्दू थे, न ही मुसलमान। इस युगीन प्रक्रिया ने धार्मिक सामाजिक भेदभाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नाथों ने वर्णगत ऊँच- नीच, जातिगत भेदभाव और धर्मगत विभेद को अस्वीकार किया।

नाथ मत के व्यापक प्रचार-प्रसार होने का कारण यह भी था कि नाथों ने वज्रयानी सिद्धों के तंत्र में मौजूद वीभत्स आचारों को नहीं अपनाया। उन्होंने तंत्र जन्य वीभत्स चमत्कारों से विचलित जनता को ब्रहमचर्य और योगाभ्यास रूपी नए विकल्प दिए। इसके अलावा, नाथों के ईश्वर भले ही निर्गुण या निरंजन थे, लेकिन उनमें एक सर्वोच्च सत्ता के प्रति आस्था थी। इस कारण भी देश के पारंपरिक रूप से आस्थावान लोगों का झुकाव नाथ सम्प्रदाय की ओर हुआ। नाथ ईश्वर की स्थिति घट(शरीर) में मानते थे। वे भक्ति विरोधी थे। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने कहा- **"गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।"** लेकिन कबीरदास ने गोरखनाथ के प्रति आदर व्यक्त किया है। इससे पता चलता है कि नाथों की मान्यताओं की विरासत आगे चलकर कबीर आदि निर्गुण संतो के पास गई। डा. रामकुमार वर्मा ने नाथ मत के प्रचार-प्रसार में गोरखनाथ की भूमिका के विषय में लिखा है- ‘‘गोरखनाथ ने नाथ-सम्प्रदाय को जिस आंदोलन का रूप दिया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ। उसमें जहाँ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गई वहाँ दूसरी ओर धर्म को विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रू ियों पर कठोर आघात भी किया गया। जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहज मार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने किया।"नाथ पंथ या सम्प्रदाय के अनुयायी ‘कनफटे’ कहलाते है, क्योंकि ये अपने कानों के मध्य भाग को फाडकर उसमें बड़ा छेद कर लेते है। वे इसमें स्फटिक का कुंडल धारण करते है। नाथ सम्प्रदाय के अनुयायियों की दो शाखाएँ हैं। उत्तर-पूर्वी भारत में रहने वाले अनुयायी गोरखनाथ को अपना गुरू मानते है और पश्चिमी भारत मे रहने वाले अनुयायी स्वयं को गोरखनाथ के ही शिष्य धर्मनाथ की परम्परा में मानते है।

यह पहले बताया जा चुका है कि नाथ सम्प्रदाय के उपदेशों का प्रभाव हिंदुओं के साथ-साथ मुसलमानों पर भी पड़ा था। नाथपंथ के इस प्रभाव की निरंतरता के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है - "अब भी इस प्रदेश में बहुत से मुसलमान जोगी गेरूआ वस्त्र पहने, गुदड़ी की लंबी झोली लटकाऐं, सारंगी बाजा बजाकर ‘कलि में अमर राजा भरथरी’ के गीत गाते फिरते हैं और पूछने पर गोरखनाथ को अपना आदि गुरू बताते हैं। ये राजा गोपीचंद के भी गीत गाते है जो बंगाल में

चटिगांव के राजा थे और जिनकी माता मैनावती कहीं गोरख की शिष्या और कहीं जलंधर की शिष्या कही गई हैं। ”

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए

(क) नाथों की संख्या.....मानी जाती है।
(ख) नाथ सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने का श्रेय.....को है।
(ग) नाथ योगी .....कहलाते हैं।

2. सत्य/असत्य बताइए

(क) नाथ कवि मुख्यतः देश के पूर्वी भागों में रहते थे।

(ख) गोरखनाथ ने इंद्रिय-संयम पर अधिक जोर नहीं दिया।

(ग) नाथ ईश्वरवादी थे।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न

i. सिद्धों की सूची में किसका नाम मिलता है-

(क) चौरंगीनाथ (ख) चर्पटनाथ
(ग) भर्तृनाथ (घ) गोरखनाथ

ii. ‘हठयोग‘ का प्रवर्त्तन किसने किया-

(क) आदिनाथ (ख) मत्स्येन्द्रनाथ
(ग) गाहिणीनाथ (घ) गोरखनाथ

iii. नाथ योगियों की साधना पद्धति का अंग नहीं है-

(क) इंद्रिय -संयम (ख) उपवास
(ग) प्राण-साधना (घ) मन-साधना

11.4 आदिकालीन नाथ साहित्य

इससे पूर्व के खंड में आपने नाथ सम्प्रदाय की विशेषताओं का परिचय प्राप्त किया। आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप से परिचित होने के लिए इसे जानना आवश्यक है। इस खंड में नाथ साहित्य के वर्ण्य विषयों या काव्यवस्तु, भाषा-शैली तथा प्रमुख नाथ कवियों से आपका परिचय कराया जाएगा।

11.4.1 वर्ण्य विषय/काव्यवस्तु

आदिकालीन नाथ साहित्य में मुख्यतः इस पंथ या सम्प्रदाय के सैद्धांतिक मतों का परिचय मिलता है। यह स्वाभाविक है कि योग साधना में रत् नाथ योगियों के लिए शुद्ध साहित्य या साहित्य-संस्कार का कोई मतलब नहीं था। इसीलिए उनके साहित्य को इस दृष्टि से देखना उचित नहीं।

नाथों ने तीन बातों पर जोर दिया है- (1) योगमार्ग (2) गुरू महिमा (3) पिंड ब्रह्मांडवाद। बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की साधना लोकबाह्य और अमांगलिक है जबकि नाथ योगियों का हठयोग आंतरिक है। गुरू के बिना हठयोग की जटिल प्रक्रिया संभव नहीं, इसलिए नाथ साहित्य में गुरू की महिमा गायी गई है। नाथ साहित्य में गुरू महिमा, इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मन-साधना, कुंडलिनी जागरण, शून्य समाधि आदि की चर्चा मिलती है। इसमें ईश्वरोपासना के बाहरी तौर-तरीकों के प्रति उपेक्षा प्रकट की गई है और घट के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने पर जोर दिया गया है। मन और आचरण की शुद्धता अर्जित करके शून्य-समाधि में ब्रह्म का साक्षात्कार करना नाथों का परम लक्ष्य था। गोरखनाथ के अनुसार योगी का चित्त विकार के साधन होने पर भी विकृत नहीं होता-

नौ लख पातरि आग नाचैं, पीछ सहज अखाड़ा।
ऐस मन ल जोगी खल, तब अंतरि बस भंडारा।।

नाथ साहित्य मे साधना-पद्धति के निरूपण के अलावा उन सभी रूढ़ियों का खंडन भी है जो सिद्धों के यहाँ पाया जाता है। नाथों की कविता में किसी एक सम्प्रदाय या धर्म और जाति की जगह मानव-मात्र की बात की गई है। साथ ही, इसमें वेद-शास्त्र आदि के अध्ययन को व्यर्थ तथा तीर्थाटन आदि को निष्फल बताया गया है। नाथ साहित्य की इन विभिन्न प्रवृतियों का परिचय देने वाले पाठों का अध्ययन आप अगली इकाई में करेंगे।

11.4.2. भाषा-शली

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, नाथ पंथ का अधिक प्रचार-प्रसार देश के पश्चिमोत्तर भाग अर्थात् राजपूताना और पंजाब की ओर अधिक हुआ। इसीलिए जब मत के प्रचार के लिए देशी भाषा में रचनाएँ की गई तो उस क्षेत्र में प्रचलित भाषा का ही व्यवहार किया गया। साथ ही, नाथ कवि अपनी बात कहने के क्रम में मुसलमानों को भी ध्यान में रखते थे जिनकी बोली दिल्ली के

आसपास प्रचलित खड़ी बोली थी। इसके कारण नाथ कवियों की बानी पर इस बोली का भी असर मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस संदर्भ में लिखा है- "इस प्रकार नाथपंथ के इन जोगियों ने परंपरा साहित्य की भाषा या काव्यभाषा से, जिसका ढ़ाँचा नागर अपभ्रंश या ब्रज का था, अलग एक "सधुक्कड़ी" भाषा का सहारा लिया जिसका ाँचा कुछ खड़ी बोली लिए राजस्थानी था।" यहाँ 'सधुक्कड़ी' भाषा का अर्थ बिगड़ी हुई भाषा नहीं है, बल्कि मिश्रित भाषा है। आप जानते हैं कि साधु-संत प्रायः भ्रमण करते रहते हैं। इसीलिए उनकी भाषा पर विभिन्न क्षेत्रों या प्रदेशों की भाषा की रंगत चढ़ जाती है। इसी कारण ऐसी भाषा को "सधुक्कड़ी" भाषा कहते हैं। आगे चलकर कबीर की भाषा का स्वरूप भी कुछ ऐसा ही मिलता हैं। इसके अलावा, नाथपंथी योगी तथा अनुयायी जहाँ-जहाँ गए वहाँ के लोगो के बीच नाथ गुरूओं के उपदेशों का प्रचार करने के क्रम में उन्होंने स्थानीय शब्दों और भाषिक प्रयोगों का भी सहारा लिया। डा0 पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने बताया है कि गोरखनाथ की रचनाएँ आज जिस रूप में मिलती हैं उनमें इसी कारण गुजराती, मराठी जैसी अन्य भाषाओं के भी प्रभाव मौजूद हैं।

नाथ कवियों ने प्रायः दोहा छन्द में अपनी भावनाओं और अनुभूतियों को व्यक्त किया है। उन्होंने राग-आधारित गेय पद भी रचे, जिन्हें "शब्द" या "सबदी" कहा जाता है। सैद्धांतिक निरूपण के लिए नाथों की कविता में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। नाथ कवियों ने अपनी अंतस्साधनात्मक अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए अचरज और विसंगतियों से युक्त कथन-शैली अर्थात् उलटबाँसी का भी प्रयोग किया। जो कुछ लोक या जनसामान्य में विश्वसनीय ढ़ंग से कहा जाता है, उसे उलटकर कहना ही उलटबाँसी है। उलटबाँसियों में असामान्य प्रतीकों का प्रयोग होता है, जिनका अर्थ खुलने पर ही ये समझी जा सकती हैं।

11.5 प्रमुख नाथ कवि

गोरखनाथ ही नाथ साहित्य के प्रवर्त्तक माने गए हैं। नाथ सम्प्रदाय के अन्य कवियों का भी साहित्य मिलता है, लेकिन उनमें ज्यादातर गोरखनाथ की बातों का ही दुहराव मिलता है। गोरखनाथ के अलावा कुछ अन्य नाथ कवियों के नाम हैं- मत्स्येन्द्रनाथ, गाहिणीनाथ, चर्पटनाथ, जलंधरनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचंदनाथ आदि। यहाँ कुछ नाथ कवियों का परिचय दिया जा रहा है-

मत्स्यन्द्रनाथ - मत्स्येन्द्रनाथ को मीननाथ और मछंदरनाथ भी कहा गया है। इन्होंने योग की शिक्षा आदिनाथ (शिव) से प्राप्त की थी। कहा जाता है कि शिवजी योग-विद्या का रहस्य पार्वती को सुना रहे थे तो इन्होंने मछली का रूप धारण करके इसे सुन लिया। इसी कारण उनका यह नामकरण हुआ। ये गोरखनाथ के गुरू थे। यह भी कहा जाता है कि चोरी से योग-विद्या का रहस्य जान लेने के कारण शिवजी ने इन्हें मोहपाश में बंध जाने का शाप दिया था, जिससे इनके शिष्य गोरखनाथ ने ही उन्हें

मुक्त किया। गोरखनाथ ने श्रद्धा और आस्था से अपने गुरू की भक्ति की थी, इसलिए गुरू ने उन्हें योग के प्रथम अधिकारी और आचार्य माने जाने का आशीर्वाद दिया था। इनकी कविता का उदाहरण है-

यों स्वारथ को जीवड़ो, स्वारथ छाड़ि न जाय।
जब गोरख किरपा करी, म्हारो मनवो समझायो आय।।

× × ×

जोगी सोई जोगी र, जुगत रह उदास।
तात नीरं जण पाइया, यो कह मत्स्यन्द्रनाथ।।

गोरखनाथ - गोरखनाथ की जन्मतिथि और जन्मस्थान के विषय में विद्धानों की अलग-अलग राय है। राहुल सांकृत्यायन ने इनका समय 845 ई. माना है और हजारी प्रसाद द्विवेदी भी इन्हें नवीं सदी का ही मानते हैं। डॉ.पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने गोरखनाथ को ग्यारहवीं सदी के मध्य का माना है। डॉ.रामकुमार वर्मा का भी मानना है कि गोरखनाथ तेरहवीं सदी के मध्य में हुए। इसी प्रकार कुछ विद्वान गोरख को दक्षिण देश का निवासी बताते हैं, कुछ नेपाल का और कुछ पंजाब का। समान्यतः उन्हें कांगड़ा-निवासी माना जाता है, जहाँ पर उनके प्रभाव अब भी मौजूद हैं।

डॉ.पीतांबरदत्त बड़थ्वाल के अनुसार गोरखनाथ का उत्तराखंड से भी संबध रहा है। उन्होंने दक्षिण गढ़वाल के 'घौल्या उ ्यारी' (धवल गुहा) नामक गुफा में तपस्या कर सिद्वि प्राप्त की थी। इसलिए गढ़वाल के मंत्र-साहित्य पर भी गुरू गोरखनाथ का काफी प्रभाव रहा है। प्राचीन जनश्रुतियों में गोरखनाथ को सर्वशक्तिशाली मानते हुए उनमें देवत्व की स्थापना की गई है। उन्हें गोरखा राज्य का संरक्षक भी माना जाता है।

गोरखनाथ ने सिद्धों की पूर्वप्रचलित भोगप्रधान साधना-पद्वति का विरोध कर संयम पर आधारित 'हठयोग' रूपी साधना पद्धति को प्रतिष्ठित किया था। उस युग के साधु-संतों में भ्रमण या देशाटन की प्रवृत्ति रही थी। गोरखनाथ ने भी पंजाब, गुजरात, काठियावाड़, उत्तरप्रदेश, नेपाल, असम, उड़ीसा आदि की यात्रा करके अपने मत का प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने यात्राएँ ही नहीं की, बल्कि विभिन्न मतों के विद्वानों-आचार्यों से शास्त्रार्थ भी किया। उस युग में उत्तर भारत की स्थिति विषम थी। यह पूरा क्षेत्र राजनीतिक रूप से तो कई टुकड़ों में बँटा ही था, धार्मिक दृष्टि से भी अनेक मत-सम्प्रदायों में विभक्त था। इन मतभेदों के परिदृश्य में गोरखनाथ ने अपने सम्प्रदाय के माध्यम से धार्मिक एकसूत्रता लाने का प्रयास किया। इसलिए यह स्वाभाविक था कि वे एक लोकप्रिय धार्मिक नेता हो सके। गोरखनाथ नाथ साहित्य के सर्वप्रमुख रचनाकार हैं। उन्होंने संस्कृत और देशभाषा (हिंदी) दोनों में रचनाएँ कीं। मिश्र बंधुओं के अनुसार गोरखनाथ के नौ संस्कृत ग्रंथ है, जबकि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अट्ठाईस पुस्तकों का उल्लेख किया है। उनकी कई संस्कृत रचनाएँ आज उपलब्ध है,

लेकिन उनमें से कुछ की प्रामाणिकता संदिग्ध है। गोरख की कुछ संस्कृत रचनाओं के नाम है- 'सिद्ध सिद्वांत पद्वति', 'गोरक्ष संहिता' 'अमरौध-शासनम', 'विवेकमार्तण्ड', 'निंरजन पुराण', 'वैराट पुराण', 'योगचिंतामणि', 'चतुरशीत्यासन',। इनकी देश भाषा की रचनाएँ भी मिलती है। डॉ0 पीतांबर दत्त बडथ्वाल ने गोरखनाथ की इन रचनाओं का संकलन और संपादन करके 'गोरखबानी' शीर्षक से प्रकाशित करवाया है। उन्होने निम्नलिखित रचनाओं को प्रामाणिक माना है- 'सबदी', 'पद', 'सिष्या दरसन', 'प्राण संकली', 'नरवै बोध', 'अभैमात्रा जोग', 'आतम बोध', 'पन्द्रह तिथि' 'सप्तवार', 'मछीन्द्र गोरखबोध', 'रोमावली', 'ग्यानतिलक', 'ग्यान चौंतीसा' एवं 'पंचमात्रा'।

विद्वानों ने गोरख द्वारा रचित बताई जाने वाली कुछ अन्य पुस्तकों को उनके शिष्यों द्वारा रचित बताया है, जैसे कि 'गोरखनाथजी के पद' और 'दत्तगोरख संवाद'। इसके अलावा कुछ रचनाएँ उनकी ही संस्कृत रचनाओं का अनुवाद हैं। उदाहरण के लिए, 'विराट पुराण' को स्वयं गोरख की ही संस्कृत रचना 'वैराट पुराण' का अनुवाद माना जाता है। गोरखनाथ के विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने संस्कृत में सिद्वांत-ग्रंथो की रचना करने के साथ-साथ अपने मत के व्यापक प्रचार के लिए जनसमुदाय की भाषा को अपनाया।

इनकी कविता का उदाहरण है-

यंद्री का लड़बड़ा, जिम्भा का फूहड़ा।
गोरस कह त परतसि चूहड़ा।।
काछ का जती मुख का सती।
सो सत पुरूष उतमो कथी।।

बालानाथ:- पंजाब में इनके नाम पर 'बालानाथ का टीला' प्रसिद्ध रहा था। जायसी ने भी उसका उल्लेख किया है। इससे यह पता चलता है कि बालानाथ अपने समय के महत्वपूर्ण योगी रहे होंगे। इनकी कविता का उदाहरण है-

पहल पहर सब कोई जाग, दूज पहर भोगी।
तीज पहर तसकरि जाग, चौथ पहर जोगी।।

चर्पटनाथ:- ये कहीं गोरखनाथ के और कहीं बालानाथ के शिष्य बताए गए हैं। ये राजपूताना के रहने वाले थे। इन्हें संस्कृत ग्रंथ 'चर्पटमंजरी' का लेखक भी बताया जाता है। इनकी कविता का उदाहरण है-

किसका बटा किसकी बहू,
आप सवारंथ मिलिया सहू।।
जता पूला तती आल,

चरपट कह सब आल जंजाल।।

चौरंगीनाथ:- चौरंगीनाथ 'पूरन भगत' के नाम से भी प्रसिद्ध रहे थे। ये गोरखनाथ के शिष्य थे। इनके विषय में यह किंवदन्ति है कि अपनी विमाता के प्रणय की अवहेलना करने के कारण इनकी आँखें फोड़ दी गईं और हाथ-पैर काटकर कुएँ में डाल दिया गया। बाद में गोरखनाथ ने उन्हें सुंदर शरीर से सम्पन्न (चौरंगी) बनाकर किसी कुँवारी की बटी हुई रस्सी के सहारे कुएँ से बाहर निकाला।

इनकी कविता का उदाहरण है-

मारिवा तौ मन मीर मारिवा, लूटिबा पवन भंडारं।
साधबा तौ पंच तत सधिबा, सइबा तौ निरंजन निराकारं।।

इन कवियों के अलावा भी कई नाथ कवियों के नाम से रचनाएँ मिलती हैं। भर्तृनाथ और गोपीचंदनाथ राजा होते हुए भी योगी बन गए थे। भर्तृनाथ ही भर्तृहरि या भरथरी के नाम से प्रसिद्ध हुए। भरथरी और गोपीचंद के नाम से आज भी कई लोकगीत प्रचलित हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

(1) रिक्त स्थान भरिए

(क) उलटबाँसी में .....का प्रयोग होता है।
(ख) गोरखनाथ के गुरू ..... थे।
(ग) नाथ कवियों की भाषा को ..... भाषा कहा जाता है।

(2) सत्य/असत्य बताइए

(क) गोरखनाथ को नाथ साहित्य का प्रवर्त्तक माना जाता है।
(ख) नाथ कवियों ने वेद-शास्त्र आदि के अध्ययन को आवश्यक बताया है।
(ग) 'सधुक्कड़ी' भाषा का अर्थ बिगड़ी हुई भाषा है।
(घ) डा. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने 'गोरखबानी' नामक ग्रंथ में गोरखनाथ की रचनाओं का संकलन किया है।

(3) बहुविकल्पीय प्रश्न

i. नाथ साहित्य में किसकी चर्चा नहीं मिलती है -
(क) नारी साहचर्य (ख) गुरू महिमा
(ग) बाह्याचारों का विरोध (घ) वैराग्य

ii. नाथ साहित्य में क्या नहीं मिलता है-

(क) साखी (ख) उलटबाँसी

(ग) सबदी (घ) सोहर

iii. गोरखनाथ की रचना नहीं है-

(क) सिद्ध-सिद्धांत पद्धति (ख) बीजक

(ग) सबदी (घ) वैराट पुराण

11.5 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

आदिकालीन नाथ साहित्य का प्रभाव बाद के भक्तिकालीन संत साहित्य पर देखा जा सकता है। नाथ साहित्य ने परवर्ती ज्ञानमार्गी संतकाव्य को विषयतत्त्व के साथ-साथ काव्यशिल्प या काव्यपद्धति की दृष्टि से भी प्रभावित किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-''यदि कबीर आदि निर्गुणमतवादी संतो की वाणियों की बाहरी रूपरेखा पर विचार किया जाए तो मालूम होगा कि यह संपूर्णतः भारतीय है और बौद्व धर्म के अंतिम सिद्वों और नाथपंथी योगियों के पदादि से उसका सीधा संबध है। वे ही पद, वे ही राग-रागिनियाँ, वे ही दोहे, वे ही चौपाइयाँ कबीर आदि ने व्यवहार की हैं, जो उक्त मत के मानने वाले उनके पूर्ववर्ती संतों ने की थीं। क्या भाव, क्या भाषा, क्या अलंकार, क्या छंद, क्या पारिभाषिक शब्द, सर्वत्र वे ही कबीरदास के मार्गदर्शक हैं।"

नाथ सम्प्रदाय के हठयोग पर निश्चय ही कबीर की आस्था दिखती है। उनके काव्य में नाथपंथियों की अंतस्साधनात्मक रहस्य भावना, हठयोग, नाद, बिंदु, कुंडलिनी, षटचक्रभेदन आदि का वर्णन मिलता है। उन्होंने इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि के जरिए 'अनहद' नाद सुनने की रीति बताई है। इसके अलावा उन्होंने उलटबाँसियों का भी प्रयोग किया है। इस संदर्भ में डॉ0 पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने लिखा है-''हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भक्ति-धारा की दो शाखाओं के दर्शन कराए हैं- एक निर्गुण शाखा और दूसरी सगुण शाखा। निर्गुण शाखा वास्तव में योग का ही परिवर्तित रूप है। भक्ति-धारा का जल पहले योग के घाट पर बहा था।" नाथ सम्प्रदाय में माया की अवहेलना की गई है जो आगे चलकर संतों के यहाँ भी चेतावनी के रूप में आती है। कबीर की कविता में यत्र-तत्र नारी की निंदा मिलती है। इसे भी नाथों के इन्द्रिय-निग्रह और निवृत्तिमूलक दर्शन के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार, भक्तिकालीन संतकाव्य में धार्मिक रू ियों और बाह्य आडम्बरों का विरोध करते हुए अंतस्साधना पर जो बल दिया गया है उसे आदिकालीन सिद्ध नाथ कवियों के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है।

इस प्रभाव को काव्य पद्धति की दृष्टि से भी लक्ष्य किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, दोहा छंद में यदि सिद्धों की रहस्यवादी भावनाएं व्यक्त हुई थीं तो गोरखनाथ जैसे अलख जगाने वाले

नाथ योगियों की बानियाँ भी कहीं गईं। वास्तव में, नाथपंथियों और कबीर पंथियों के 'धर्म निरूपणपरक' दोहे ही 'साखी' कहे जाते हैं। 'साखी' नाथपंथ मे साहित्य में मिलती है और भक्तिकालीन संतो के साहित्य में भी। 'साखी' का अर्थ है- साक्षी देना, अर्थात् पूर्ववर्ती साधकों या गुरूओं द्वारा बताए गए सत्य का स्वयं अनुभव कर उसकी गवाही देना। धीरे-धीरे गुरू के वचनों को 'साखी' कहा जाने लगा होगा। गुरू के ऐसे वचन या उपदेश जनप्रचलित दोहा छंद में बद्ध थे। इसलिए कुछ दिनों बाद 'दोहा' और 'साखी' समानार्थक शब्द मान लिए गए होंगे। कबीर-साहित्य में तो दोहे का अर्थ ही साखी हो जाता है। इसके अलावा अन्य निर्गुण संतो के सम्प्रदाय में भी इस काव्यरूप का प्रचलन मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है- ''कबीर आदि संतों को नाथपंथियों से जिस प्रकार 'साखी' और 'बानी' शब्द मिले, उसी प्रकार 'साखी' और 'बानी' के लिए बहुत कुछ सामग्री और 'सधुक्कड़ी' भाषा भी"। सिद्वों और नाथों में 'शब्द' काव्यरूप भी प्रचलित था। 'शब्द' गेय पदों को कहा जाता है जो किसी-न-किसी राग में निर्दिष्ट होते हैं। भक्तिकालीन संतों ने भी इस पूर्व प्रचलित काव्यरूप को अपनाया। 'गोरखबानी' में उद्धृत ऐसे पदों को 'सबदी' कहा गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है-''जान पड़ता है, बीजक का 'शब्द' नाथपंथी योगियों का है और कबीरपंथ में वह सीधे वहीं से आया है।" भक्तिकालीन संतों ने नाथ कवियों के कई शब्द, पद, दोहे और उलटबाँसियों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया था। हालाँकि उनमें कहीं-कहीं थोडा बहुत परिवर्तन भी दिखता है। उदाहरण के तौर पर नाथ योगियों के पद और भक्तिकालीन संत दादू के पद में समानता देखी जा सकती है-

नाथयोगियों का पद-

उठ्या सारन् बठ्या सारन् सारन् जागत सूता ।
तिन भुवनें बिछाइना जाल कोइ जाबि र पूता।।

दादू का पद-

उठ्या सारं बठ विचारं संभारं जागता सूता।
तीन लोक तत जाल विडारन कहाँ जाइगा पूता।।

इसी प्रकार गोरखनाथ की एक उलटबाँसी है- **नाथ बोल अमृत बाणी। बरिसगी कंबली भीजगा पाणी।** यह रोचक है कि कबीरदास के नाम पर यही उलटबाँसी इस प्रकार मिलती है- **कबीरदास की उलटी बानी। बरस कंबल भीज पानी।** इस प्रकार के कई अन्य उदाहरण भी हैं। हालाँकि यह सही है कि कबीर आदि भक्तिकालीन संतों ने नाथ कवियों से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किए हैं, लेकिन उनकी साधना का स्वरूप थोड़ा भिन्न था। इसलिए भक्तिकालीन संतकाव्य में उपस्थित भक्ति का रस सिद्धों-नाथों की कविता में नहीं मिलता है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की मान्यताओं और साधना पद्धति में संशोधन करके नाथपंथी योगियों ने भक्तिकालीन संतों के लिए विचारधारात्मक पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। नाथ सम्प्रदाय को वास्तव में सिद्धों और संतों के बीच की कड़ी माना जाता है। डॉ0 रामकुमार वर्मा की राय में -''संत साहित्य का आदि इन्हीं सिद्धों को, मध्य नाथपंथियों को और पूर्ण विकास कबीर से प्रारंभ होने वाली संत-परम्परा में नानक, दादू, मलूकदास, सुन्दरदास आदि को मानना चाहिए।"

अभ्यास प्रश्न 3

(1) भक्तिकालीन संतकाव्य पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव के विषय में क्या असत्य है-

(क) माया की अवहेलना
(ख) अंतस्साधनात्मक रहस्यवाद
(ग) उलटबाँसियो का प्रयोग
(घ) भक्ति का तत्त्व

11.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की भोगप्रधान तांत्रिक साधना पद्वति तथा मान्यताओं में संशोधन करके गोरखनाथ ने इंद्रिय-संयम तथा सदाचार पर आधारित 'हठयोग' रूपी साधना पद्वति का प्रसार-प्रचार किया। आदिकालीन नाथ साहित्य में नाथ सम्प्रदाय की इस साधना पद्वति के निरूपण के साथ-साथ बाह्याचार तथा रू ियों का खंडन भी किया गया है। नाथ साहित्य ने परवर्ती भक्तिकालीन संत साहित्य को विषयवस्तु तथा शैली, दोनों ही दृष्टियों से प्रभावित किया है। इस इकाई के अध्ययन से आप आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप और महत्त्व से परिचित हो सकेंगे।

11.8 शब्दावली

हठयोग- 'सिद्ध-सिद्धांत पद्वति' ग्रंथ के अनुसार 'ह' का अर्थ है सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ है चंद्र। सूर्य और चंद्र क्रमशः दक्षिण और वाम स्वर के प्रतीक हैं। हठयोग में देह स्थित 'ह' अर्थात् ज्ञान, प्रकाश और शक्ति के वाचक सूर्य तथा 'ठ' अर्थात् आनंद, रस तथा शीतलता के वाचक चंद्र की संयुक्त साधना की जाती है। इस साधना का स्वरूप आंतरिक होता है।

अंतस्साधना- हृदय और मन द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की आंतरिक साधना पद्वति।

इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना- मेरूदंड में प्राण-वायु को वहन करने वाली कई नाड़ियाँ हैं। इनमें योग की दृष्टि से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना महत्त्वपूर्ण हैं। इड़ा नाड़ी बाई ओर तथा पिंगला नाड़ी दाहिनी ओर स्थित होती है। इन दोनों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी होती है। इसी नाड़ी के माध्यम से कुंडलिनी शक्ति ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। इसलिए योग साधना में सुषुम्ना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाड़ी मानी जाती है।इड़ा के लिए चंद्र, गंगा आदि प्रतीकों का; पिंगला के लिए सूर्य, यमुना आदि प्रतीकों का तथा सुषुम्ना के लिए अवधूती, सरस्वती, बंकनालि आदि प्रतीकों का भी प्रयोग किया जाता है।

षट्चक्र-भदन- कुंडलिनी द्वारा मेरूदंड के मूल से लेकर त्रिकुटी (भौंहों के मध्य) तक क्रमशः स्थित छह चक्रों- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्व और आज्ञा नामक चक्र - का भेदन करना। इसके बाद कुंडलिनी शून्य चक्र स्थित ब्रह्मरंध्र मे पहुँच जाती है।

अनाहत नाद- अरिवल ब्रह्मांड में अखंड भाव से व्याप्त नाद।

नाद- योगी की देह में स्थित कुंडलिनी जब सक्रिय होकर ऊर्ध्वगमन करती हुई शीर्षस्थ चक्र में पहुँचती है तो उससे स्फोट होता है, जिसे नाद कहते हैं।

बिंदु - नाद से जो प्रकाश उत्पन्न होता है उसे बिंदु कहते हैं।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. (क) नौ (ख) गोरखनाथ (ग) कनफटा

2. (क) असत्य (ख) असत्य (ग) सत्य

3. i. गोरखनाथ

ii. मच्छेन्द्रनाथ

iii. उपवास

(2) 1. (क) असामान्य प्रतीकों (ख) मत्स्येन्द्रनाथ (ग) सघुक्कड़ी

2. (क) सत्य (ख) असत्य (ग) असत्य (घ) सत्य

3. i. नारी साहचर्य

ii. सोहर

iii. बीजक

(3) 1. भक्ति का तत्त्व

11.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वर्मा, रामकुमार, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, , लोक भारती प्रकाशन।
2. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 2002
3. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
4. चातक, गोविन्द (सं.), डॉ. पीताम्बरदत्त बडथ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, तक्षशिला प्रकाशन।
5. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2006
6. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2010

11.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बडथ्वाल, पीताम्बरदत्त हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली 1995

2. सांकृत्यायन, राहुल, हिन्दी काव्य-धारा, किताब महल, इलाहाबाद 1945

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाथ सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने में गोरखनाथ की भूमिका पर प्रकाश डालें।
2. आदिकालीन नाथ साहित्य की विशेषताओं का परिचय दें।
3. परवर्ती हिन्दी साहित्य पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव को स्पष्ट करें।

इकाई 12: आदिकालीन नाथ साहित्य: पाठ एवं परिचय

इकाई का स्वरूप

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 आदिकालीन नाथ साहित्य: पाठगत विशेषताएँ
12.4 आदिकालीन नाथ साहित्य: सैद्धान्तिक पाठ
12.5 आदिकालीन नाथ साहित्य: गैर-सैद्धान्तिक पाठ
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
12.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री
12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन कविता से संबंधित यह चौथी इकाई है। इसके पहले की इकाई में आपने नाथ पंथ या सम्प्रदाय के उद्भव, उसे प्रतिष्ठित करने में गोरखनाथ की भूमिका, नाथ मत की हठयोग साधना तथा अन्य मान्यताओं के विषय में जाना। इसके अलावा आप आदिकालीन नाथ साहित्य और प्रमुख नाथ कवियों से भी परिचित हो चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में आदिकालीन नाथ साहित्य की पाठगत विशेषताओं से आपका परिचय कराया जा रहा है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नाथ साहित्य में व्यक्त विचारों को जान सकेंगे तथा परवर्ती हिन्दी साहित्य के संतकाव्य की प्रवृत्तियों से इसके संबंध की पहचान कर सकेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- आदिकालीन नाथ कवियों की कविता में व्यक्त सैद्धान्तिक मान्यताओं, रूढ़ि-विरोधी स्वर तथा नीतिपरक विचारों से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकालीन नाथ कवियों की रचनाओं की भाषा एवं शिल्प संबंधी विशेषताओं को जान सकेंगे।

12.3 आदिकालीन नाथ साहित्यः पाठगत विशेषताएँ

आप यह पढ़ चुके हैं कि आदिकालीन नाथ साहित्य में मुख्यतः इस पंथ या सम्प्रदाय के सैद्धांतिक मतों का परिचय मिलता है। लेकिन इसके साथ ही नाथ कवियों ने उन सभी रूढ़ियों का खंडन भी किया है जो सिद्धों के यहाँ पाया जाता है। उन्होंने दैनिक जीवन से संबंधित विषयों पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। इस प्रकार नाथ कवियों की रचनाओं को सैद्धांतिक और गैर-सैद्धांतिक कोटियों में विभाजित कर उनका अध्ययन किया जा सकता है।

सैद्धांतिक कोटि की रचनाओं में गुरू महिमा, इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मन-साधना,कुंडलिनी-जागरण, षट्चक्रभेदन, अनाहत नाद आदि विषयों से संबंधित रचनाएँ आती हैं। नाथ कवियों ने अपनी रचनाओं में ईश्वरोपासना के बाहरी तौर-तरीकों की जगह मन और आचरण की शुद्धता अर्जित करके घट (शरीर) के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने की विधि बताई है। अब भी गोरखनाथ, भरथरी (भर्तृहरि) और गोपीचंद के नाम से जनता में अनेक लोक-गीत प्रचलित हैं। इनमें

बड़े भावनामय ंग से संसार की नश्वरता और भौतिक सुख-साधनों की निस्सारता बताई जाती है। लोक भाषा में रचित इन गीतों में योग के सिद्धांत अत्यंत व्यावहारिक ंग से बताए गए हैं। डॉ0 रामकुमार वर्मा का मानना है कि- "भर्तृहरि और गोपीचंद के गीतों ने शताब्दियों तक जिस धार्मिक जीवन में आस्था रखने का संदेश दिया है, वह बड़े-बड़े तत्त्ववादियों द्वारा नहीं दिया जा सका।" वास्तव में इन लोक-गीतों ने नाथ मत के प्रभाव को जनता के हृदय तक पहुंचा दिया।

गैर-सैद्धांतिक कोटि की रचनाओं में रूढ़ि-विरोध, पाखंड-खंडन, आचार-संयम आदि से संबंधित रचनाएँ आती हैं। नाथ कवि जहाँ एक ओर सैद्धांतिक प्रतिपादन कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर वे तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों पर भी अपने विचार प्रकट कर रहे थे। नाथों ने अपनी कविता में मानव-मात्र की बात की है और सामान्य जन के दैनिक जीवन से संबंधित विषयों पर भी नीतिपूर्ण शिक्षा दी है। नाथ कवियों ने हिंसामूलक तथा दुर्नीतिमूलक आचरणों के प्रति तीव्र विरोध प्रकट किया है।नाथ कवियों की रचनाओं की भाषा से हिंदी के आरंभिक स्वरूप का परिचय मिलता है। ध्यान रहे कि आदिकालीन हिन्दी कविता की भाषा का कोई एकल स्वरूप नहीं था। आप अलग-अलग क्षेत्रों के कवियों की भाषा में बोलीगत भिन्नता और स्थानीय प्रभावों को स्पष्ट रूप से लक्ष्य कर सकते हैं। नाथ कवियों की रचनाओं की भाषा सधुक्कड़ी अर्थात मिश्रित प्रकृति की भाषा है। इनकी कविता में घणो, धीय, पाणी, जिनि, काहे, पढ़िबा, मांहि, कीजै, अजहुँ आदि भाषिक प्रयोगों से विभिन्न क्षेत्रीय प्रभावों की पुष्टि होती है। नाथ कवियों की भाषा में स्थानीय प्रभाव तो है ही, इसके अलावा सम्प्रदायगत पारिभाषिक शब्दावली तथा असामान्य प्रतीकों से युक्त उलटबाँसियों का प्रयोग भी इनकी भाषा की विशेषता है। नाथों की वैचारिक और भाषिक विशेषता की यह विरासत हम आगे चलकर भक्तिकालीन संतकाव्य में भी पाते हैं।

इस इकाई के अगले दो खंडों में आपका परिचय नाथ कवियों के सैद्धांतिक और गैर-सैद्धांतिक पाठ से कराया जा रहा है।

1. अभ्यास प्रश्न

(1) सत्य/ असत्य बताएँ

(क) नाथ कवियों ने सिद्धों की रूढ़ियों को अपनाया।

(ख) नाथ साहित्य में हठयोग के सिद्धांतों पर चर्चा मिलती है।

(ग) नाथ कवियों की भाषा में विभिन्न क्षेत्रों की भाषा का प्रभाव दिखता है।

(घ) आदिकालीन नाथ साहित्य का परवर्ती हिन्दी साहित्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

12.12 आदिकालीन नाथ साहित्यः सैद्धांतिक पाठ

(क) गुर कीजै गहिला निगुरा न रहिला, गुर बिन ग्यांन न पायला रे भाईला।।

दूधै धोया कोइला उजला न होइला, कागा कंठै पहुप माल हंसला न भैला।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ की इन पंक्तियों में गुरू की महिमा बताई गई है। साधना के मार्ग में सफलता प्राप्त करने के लिए गुरू का होना आवश्यक है। गोरखनाथ कहते हैं कि साधक को गुरू की तलाश करनी चाहिए, क्योंकि गुरू के बिना ज्ञान नहीं मिल सकता। वे उदाहरण देते हैं कि दूध से धोकर भी कोयला उजला नहीं हो सकता और कंठ में फूलों की माला धारण करके भी कौवा कभी हंस नहीं हो सकता है। उनके आंतरिक गुण ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं। इसलिए गोरखनाथ साधक को अपने अज्ञान और अनाड़ीपन को दूर करने के लिए गुरू की तलाश करने को कहते हैं।

(ख) आसति छैहो पिडता नासति नांहि। अनभै होय परतीति निरंतरि मांही।।

ग्यांन षोजि अभे विग्यांन पाया। सति सति भाषंत सिध सति नाथ राया।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ की इन पंक्तियों में वैराग्य का महत्व बताया गया है। गोरखनाथ सांसरिक विषयों के प्रति आसक्ति का त्याग करने को कहते हैं। संसार के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि विषयों से मुक्त होकर ही 'अनभै', अर्थात् भयमुक्त हुआ जा सकता है। किसी वस्तु या विषय के प्रति आसक्ति के भाव में उसे खो देने का भय भी बना रहता है। इसीलिए आसक्ति को त्याग देने वाला मनुष्य स्वयं को निरंतर भयमुक्त अनुभव करता है। गोरखनाथ अपना अनुभव बताते हैं कि उन्होंने आसक्ति से मुक्ति का ज्ञान खोजकर अभय-रूपी विज्ञान, अर्थात् विशेष ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

(ग) भोगिया सूते अजहूं न जागे। भोग नहीं रे रोग अभागे।।

भोगिया कहै भल भोग हमारा। मनसइ नारि किया तन छारा।। (गोरखनाथ)

अर्थ- उपर्युक्त पंक्तियों में योगी के लिए ब्रह्मचर्य या इंद्रिय-निग्रह की आवश्यकता बताई गई है। गोरखनाथ भोग-विलास में डूबे पुरूष को सोया हुआ बताते हैं। भोग-वृत्ति के कुपरिमाणों की ओर से उदासीन पुरूष सोए हुए के समान है। भोगी पुरूष अपने आचरण को उचित मानता है, जबकि

गोरखनाथ के अनुसार यह रोग है। नारी पर ध्यान लगाने वाला पुरूष अपने शरीर को नष्ट कर देता है। साधना के मार्ग में नारी बाधा के समान है। प्रवृत्ति में लीन होकर निवृत्ति की ओर बढ़ना वैसे ही कठिन है, जैसे शर्बत पीते हुए उसका स्वाद न लेना। इसीलिए नाथ सम्प्रदाय में ब्रह्मचर्य और इंद्रिय-निग्रह पर जोर दिया गया है तथा नाथ योगियों के लिए नारी का निषेध किया गया है।

(घ) आसण बैसिवा पवन निरोधिवा, थांन मांन सब धन्धा।

बदंत गोरखनाथ आतमां विचारंत, ज्यूं लज दीसै चंदा।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ ने इन पंक्तियों में प्राण-साधना की विधि बताई है। प्राण-साधना से तात्पर्य शरीर के अंतर्गत प्राण-वायु के नियमित संचालन और कुम्भक आदि से है। श्वास-प्रश्वास संबंधी इस व्यायाम को प्राणायाम कहते हैं। पंतजलि के अनुसार आसनस्थ होकर श्वास-प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम कहलाता है। गोरखनाथ ने पतंजलि के योग को लेकर ही अपने हठयोग का स्वरूप तैयार किया था।

गोरख की उपर्युक्त पंक्तियों में प्राणायाम की प्रक्रिया समझाई गई है। प्राणायाम की पहली अवस्था अर्थात् 'रेचक' में श्वास को बाहर निकालकर गति का अभाव किया जाता हैं। पुनः 'पूरक' की अवस्था में श्वास को अंदर खींचकर गति का अभाव किया जाता है। अंततः, 'कुम्भक' या स्तंभवृति की अवस्था में दोनों का, अर्थात् श्वास-प्रश्वास की गतियों का एक साथ अभाव होता है। गोरखनाथ योगियों से कहते हैं कि आसन लगाकर बैठो, वायु को रोक लो और बाह्य-आंतरिक सभी प्रकार की गतिविधियों से स्वयं को परे कर लो। ऐसा कर लेने के बाद ही शीर्षस्थ चक्र में स्थित अमृत की वर्षा करने वाले चंद्रमा तक पहुँच हो सकेगी।

(ङ) नाथ बोलै अमृत बांणी। बरिषैगी कंबली पांणी।।

गाड़ि पडरवा बाँधिलै षूंटा। चलै दमामा बजिले ऊंटा।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ की ये पंक्तियाँ मन-साधना से संबंधित हैं। मन-साधना से प्रत्याहार, अर्थात् इंद्रियों का कार्य-व्यापार रूक जाना, सिद्व होता है। इसके बाद इंद्रियाँ योगी के वश में हो जाती हैं। गोरख यह अमृत के समान सिद्धिदायक उपाय बताते हैं कि इधर-उधर भटकने वाले पशु जैसे चित्त या मन को साधना रूपी खूँटे से बाँधकर स्थिर करने और श्वास-प्रश्वास को साध लेने के बाद अनाहत नाद उत्पन्न होगा। इससे ब्रह्मरंध्र स्थित सहस्त्रदल कमल से अमृत की वर्षा होगी और साधक उसमें भींग-भींगकर आनंदित होगा।

योगी अपने शरीर के अंतर्गत प्राण-वायु के संचालन में सिद्धहस्त होने के बाद मन-साधना की ओर प्रवृत्त होता है। विभिन्न प्रकार की सांसारिक, मायाजन्य प्रवृत्तियों की ओर से मन को खींचकर अन्तःकरण की ओर उन्मुख करना ही मन-साधना है। मन की स्वाभाविक गति बाहरी संसार की ओर होती है। इस स्वाभाविक गति को उलटकर अन्तर्मुख करना इस साधना की कसौटी होती है। उलटने की इस प्रक्रिया में सांसारिक कार्य-व्यापारों में विरोधाभास दिखता है। यह विरोधाभास ही नाथ योगियों की उलटबाँसियों का आधार है। गोरखनाथ की उपर्युक्त पंक्तियाँ उलटबाँसी का ही उदाहरण है। उलटबाँसी असामान्य या परस्पर विरोधाभासी दिखने वाले प्रतीकों से युक्त कथन-शैली है, जिसके द्वारा नाथ कवि सामान्य श्रोता को हतप्रभ कर देते हैं। इनमें प्रयुक्त प्रतीकों का अर्थ खुलने पर ही इनका तात्पर्य स्पष्ट होता है।

(च) सास उसास बाइ कौ भषिबा। रोकि लेहु नव द्वारं।।

छइै छमासि काया पलटिबा। तब उनमनी जोग अपारं।। (गोरखनाथ)

अर्थ- योगी रसायन या रस-विद्या की सहायता से शरीर की आंतरिक दुर्बलताओं और विकारों को दूर करता है। गोरखनाथ उपर्युक्त पंक्तियों में इसकी प्रक्रिया बताते हैं। उनके अनुसार इसके लिए शरीर के अंदर जाने वाली साँस और बाहर निकलने वाले उच्छवास रूपी प्राण-वायु को साधना पड़ता है। फिर शरीर के नौ द्वारों को बंद कर आंतरिक ऊर्जा का संरक्षण करने से कुछ ही दिनों में कायापलट हो जाता है और उनमनी की दशा प्राप्त होती है। जब प्राणायाम द्वारा वायु ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करता है तो जिस आनंदपूर्ण अवस्था को मन प्राप्त होता है उसे ही 'लय', 'मनोन्मनी' या उन्मनी कहते है। यह उस अवस्था का सूचक है जब संकल्प-विकल्पात्मक चंचल मन शांत हो जाता है और उसमें उच्चतर चेतना का आविर्भाव होता है।

(छ) अवधू ईड़ा मारग चन्द्र मणीजै। प्यंगुला मारग भानं।।

सुषमनां मारग बांणी बोलिये। त्रिय मूल अस्थांनं।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ की इन पंक्तियों में नाड़ी-साधना को समझाया गया है। इंद्रिय-निग्रह से आसन, प्राण-साधना से प्राणायाम और मन-साधना से प्रत्याहार सिद्ध हो चुकने के बाद साधक नाड़ी साधना में प्रवृत्त होता है। शरीर में प्राण-वायु को वहन करने वाली कई नाड़ियाँ हैं। इनमें तीन प्रमुख हैं- इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। इड़ा बाईं ओर स्थित होती है और पिंगला दाहिनी ओर। इन दोनों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी होती है, जिससे कुंडलिनी शक्ति उपर की ओर प्रवाहित होती है।

गोरखनाथ ने यहाँ इड़ा नाड़ी को चंद्र और पिंगला नाड़ी को सूर्य कहा है। वे कहते हैं कि मूलाधार चक्र के त्रिकोण में स्थित कुंडलिनी को ऊर्ध्वमुख या ऊपर की ओर सक्रिय करने के लिए सुषुम्ना-पथ को उन्मुक्त करना पड़ेगा। सांसारिक माया मे बँधे जीव की इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ ही सक्रिय रहती हैं। सुषुम्ना का मार्ग प्रायः बंद रहता है। इसलिए बद्धजीव की इंद्रियाँ और चित्त बहिर्मुख होते है। जब सुषुम्ना जागृत हो जाती है तो साधक में कुंडलिनी शक्ति भी जाग उठती है।

(ज) घसै सहंस इकीसौं जाप। अनहद उपजै आपदि आप ।।

बंकानालि मैं ऊगै सूर । रोम रोम धुनि बाजै तूर।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ की ये पंक्तियाँ कुंडलिनी-जागरण, षट्चक्र-भेदन, अजपा जाप और अनाहत नाद से संबंधित है। हठयोग में कुंडलिनी शक्ति को जगाया जाता है। समष्टि रूप से सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त महाकुंडलिनी व्यष्टि रूप से जीव में 'कुंडलिनी' नाम से स्थित होती है। सामान्य जीवों की कुंडलिनी शक्ति सुषुप्तावस्था में रहती है। योगी क्रमशः इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, मन-साधना, रसायन सिद्धि तथ नाड़ी-साधना के बाद इसे जागृत कर पाता है। शरीर में ऊर्ध्व रूप से स्थित क्रमशः छह चक्रों- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा नामक चक्र- का भेदन करती हुई कुंडलिनी सहस्त्रार स्थित ब्रह्मरंध्र का स्पर्श करती है। यहां सहस्त्रदल कमल स्थित चंद्र अमृत की वर्षा करता है। षट्चक्र-भेदन की इस प्रक्रिया के समानांतर "अजपा जाप" अर्थात् अव्यक्त आंतरिक जाप की प्रक्रिया भी जारी रहती है। षट्चक्र-भेदन के बाद सुरति, अर्थात् शब्द-योग की अनुभूति होती है, जिसे 'नाद' कहते हैं। इस आनंददायी अवस्था का सुख शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता।

गोरखनाथ उपरोक्त प्रक्रिया के बारे में ही बता रहे हैं। वे कहते हैं कि चक्रभेदन में पूर्णतः लीन होने और निरंतर अजपा जाप करने के बाद सुरति शब्द-योग की सिद्धि होगी, अर्थात अनाहत नाद उत्पन्न होगा। बंकानालि अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम से जब कुंडलिनी ब्रह्मरंध का स्पर्श कर लेगी तो ज्ञान का प्रकाश फैल जाएगा। इस अवस्था में साधक का रोम-रोम पुलकित हो जाता है।

(झ) मारिवा तौ मन मीर मारिवा, लूटिवा पवन भंडारं।

साधबा तौ पंच तत सधिबा, सेइबा तौ निरंजन निराकारं।।

माली लौं भल माली लौ, सीचैं सहज कियारी।

उनमनि कला एक पहूपन पाई, ले आवागमन निवारी।।

अर्थ- चौरंगीनाथ कहते हैं कि यदि मारना है तो शासनकर्ता मन को मारो और लूटना है तो शरीर के अन्दर संचरित होने वाली प्राण-वायु के भंडार को लूटो। उनका तात्पर्य यहाँ मन-साधना और प्राण-साधना से है। वे पुनः कहते हैं कि यदि साधना है तो पांच तत्त्वों से निर्मित इस शरीर को साधो और सेवा या आराधना करनी है तो निराकार परम तत्त्व की करो। चौरंगीनाथ की शिक्षा है कि सच्चे गुरू रूपी माली का साथ करने से साधना रूपी क्यारी को सींचनें में आसानी होगी। इसके बाद उनमनी कला के माध्यम से जो पुष्प प्राप्त होगा उससे सांसारिक चक्र से मुक्ति मिल जाएगी।

कुंडलिनी जब ब्रह्मरंध्र का स्पर्श कर लेती है तब मन पूर्णतः शांत हो जाता है और सांसारिक विषयों से उदासीन होकर अंतर्मुख बन जाता है, अर्थात् उसकी गति बाहर के बजाय भीतर की ओर हो जाती है। इसी स्थिति को उनमनी या उनमन दशा या अतिचेतनावस्था कहते हैं। इस दशा में पहुँचने के बाद ही साधक को अनाहत नाद सुनाई पड़ता है। साधक सहस्त्रदल कमल से बरसने वाला अमृत-रस चखता है और परमात्मा के प्रकाश से ऊर्जस्वित आनंदित होने लगता है।

2. अभ्यास प्रश्न

सत्य/असत्य बताएँ

(क) गोरखनाथ ने भोग को रोग के समान बताया है।

(ख) प्राण-साधना के अंतर्गत प्राण-वायु के नियमित संचालन का अभ्यास किया जाता है।

(ग) नाथों के अनुसार आसक्ति को त्याग देने वाला मनुष्य भयभीत रहता है।

(घ) नाथ साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग किया गया है।

12.5 आदिकालीन नाथ साहित्यः गैर सैद्धांतिक पाठ

(क) निसपती जोगी जानिबा कैसा। अगनी पाणी लोहा माने जैसा।
राजा-परजा सम करि देष। तब जानिबा जोगी निसपतिका भेष।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ ने इन पंक्तियों मे समदर्शी और निष्पक्ष होने की सलाह दी हैं। वे निष्पक्षता का उदाहरण अग्नि, जल और लोहे के गुणधर्म से देते है। जिस प्रकार ये तीनों अपने गुणधर्म के व्यवहार के क्रम में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करते, उसी प्रकार निस्पृह योगी को भी सबके साथ समान व्यवहार करना चाहिए। उदाहरण के लिए, अग्नि का गुणधर्म जलाना है और जब यह जलाती है तो

उसके मार्ग में जो कुछ भी आता है उसे बिना किसी पक्षपात के जलाती चलती है। इसलिए गोरखनाथ राजा और प्रजा के साथ एकसमान व्यवहार करने अर्थात् ऊंच-नीच का भेद न मानने की शिक्षा देते हैं।

(ख) हसिबा खेलिबा गाइबा गीत।

दृढ़ करि राषि अपना चीत।।

षाए भी मरिए अपखाए भी मरिए।

गोरख कहै पूता संजमि ही तरिए।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ ने हठयोग रूपी साधना-पद्धति प्रदान की थी, लेकिन वे शरीर को केवल कष्ट देने के पक्षधर नहीं थे। इसीलिए इन पंक्तियों में वे कहते हैं कि हंसते-खेलते-गाते हुए, अर्थात् प्रसन्नचित रहते हुए चित्त की दृढ़ता बनाए रखनी चाहिए। मनुष्य के लिए चित्त की दृढ़ता आवश्यक है और इसके लिए प्रसन्नचित्त रहना आवश्यक है।

इसी प्रकार, अधिक मात्रा में खाने से भी मृत्यु निश्चित है और कम मात्रा में भी खाने से भी। इसीलिए संयम बरतने में ही भलाई है। गोरखनाथ के अनुसार किसी भी प्रकार का अतिवाद नाश को निमंत्रण देता है, जबकि संयम सफलता की कुंजी है।

(ग) थोड़ो खाइ तो कलपै झलपै, घणों खाइ तो रोगी।

दहूँ पषा की संधि विचारैं, ते को बिरला जोगी।।

यह संसार कुबधि का खेत, जब लगि जीवे तव लगि चेत,

आँख्याँ देखै, कान सुणै, जैसा बाहै तैसा लुणै। (जलन्धरनाथ)

अर्थ- आवश्यकता से कम खाने वाला अशक्त शरीर के कारण रोता-कलपता है और आवश्यकता से अधिक खाने वाला रोगग्रस्त हो जाता है। जो दोनों परिणतियों को ध्यान में रखकर बीच का रास्ता अपनाता है वह दुर्लभ योगी के समान है। यह संसार तमाम तरह की कुव्याधियों से पटा पड़ा है। इसीलिए मनुष्य जब तक जीवित है तब तक उसे सचेत होकर रहना चाहिए। उसे अपने पर्यवेक्षण (देखे और सुने) के आधार पर विवेक का प्रयोग करते हुए निर्णय लेना चाहिए।

जलन्धरनाथ ने इन पंक्तियों में दो अतिवादों के मध्य संतुलन साधने और सांसारिक मामलों में विवेक का प्रयोग करने की शिक्षा दी है।

(घ) संयम चितवो जुगत अहार। न्यंद्रा तजौ जीवन का काल।

छाड़ौ तंत्र-मंत्र वेदंत। जंत्रं गुटिका घात पषंड।

जड़ी-बूटी का नांव जिनि लेहु। राज-दुवार पाव जिनि देहु।

थंभन मोहन वसिकरन छाड़ौ औचाट। सुणौ हो जोगेसरो जोगारंभ की बाट।

जड़ी-बूटी भूलै मति कोइ। पहली रांड वैदकी होइ।

जड़ी-बूटी अमर जे करै। तौ वैद धनंतर काहे को मरै।

छोड़ो बैद-वणज-व्यौपार। पढ़िबा गुणिबा लोकाचार।

पूजा-पाठ जपौ जिनि जाप। जोग मांहि बिटंबौ आप।। (गोरखनाथ)

अर्थ: गोरखनाथ ने इन पंक्तियों में भोली-भाली जनता को फुसलाने-बहकाने वाले पाखंडी-पुरोहितों और झाड़-फूँक करने वाले तांत्रिकों के साथ-साथ नीम-हकीमों की भी खबर ली है। वे कहते है कि चित्त और खान-पान में संयम धारण करना चाहिए। उन्होंने निद्रा को जीवन के लिए काल के समान बताया है। यहाँ निद्रा का तात्पर्य अपने परिवेश की विसंगतियों, झूठ-फरेब आदि की ओर से आँखें मूँद लेना है। गोरखनाथ इसलिए तंत्र-मंत्र और वेद-पुराण के साथ-साथ यंत्र-ताबीज आदि पाखंडों को भी त्यागने को कहते हैं।

गोरखनाथ योगियों को योग-मार्ग अपनाने से पहले कुछ सलाह देते हैं। उनकी सलाह है कि जड़ी-बूटी के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए और राज दरबार में भी नहीं जाना चाहिए। वे जादू-टोने, सम्मोहन-वशीकरण आदि को भी त्यागने को कहते हैं। इन निषेधों या अस्वीकार के बाद ही योग का मार्ग आरंभ होता है। गोरखनाथ का तर्क है कि जड़ी-बूटी से कुछ नहीं होता, क्योंकि वैद्य की पत्नी ही पहली विधवा होती है। जो वैद्य दूसरों को रोगमुक्त करता चलता है वह स्वयं भी काल के ग्रास से बच नहीं पाता। उनका अमोघ प्रश्न है कि यदि जड़ी-बूटी से मनुष्य अमर हो सकता तो फिर प्रसिद्ध वैद्य धन्वंतरि की मृत्यु क्यों हो गई? यहाँ उल्लेखनीय है कि निरूत्तर कर देने वाले ऐसे ही अमोघ प्रश्न हम आगे चलकर कबीर की कविता में भी पाते हैं। उदाहरण के लिए-

जो तू बाभन बभनी जाया, आन बाट ह्वै काहे न आया।

जो तू तूरक तुरकनी जाया, भीतरि खतना क्यों न कराया।।

गोरखनाथ उपरोक्त खंडनों के बाद यह सलाह देते है कि इन पाखंडपूर्ण व्यापारों से परे रहकर लोकाचार अर्थात् जनसामान्य में प्रचलित व्यवहारों को भली-भांति देखना-परखना चाहिए और पूजा-पाठ आदि कर्मकांडों के बजाय योग के द्वारा अपना उत्कर्ष स्वयं साधना चाहिए।

(ङ) इक लाल पटा एक सेत पटा। इक तिलक जनेऊ लमक लटा।

जब लहीं ऊलटी प्राण घटा। तब चरपट भूले पेट नटा।

जब आवैगी काल घटा। तब छोड़ि जाइगे लटा पटा।

सुणि सिखवंती सुणि पतिवंती। इस जग महि कैसे रहणां।

अखी देखन कंणी सुनण मुख सो कछू न कहना

बकते आगे स्रोता होइ रहु धौक आगे मसकीना।

गुरू आगे चेला होइबो एहा बात परबीना

मन महि रहना भेद न कहना बोलिबो अमृत बानी

अगला अगन होइबा औधू आप होइबा पानी

इहु संसार कंटिकों की बाड़ी निरख निरख पगु धरना

चरपट कहै सुनहु रे सिधो हठि करि तपु नहीं करना (चर्पटनाथ)

अर्थ- चर्पटनाथ इन पंक्तियों में व्यावहारिक शिक्षा दे रहे हैं। वे कहते हैं कि कोई लाल वस्त्र, कोई श्वेत वस्त्र और कोई तिलक-जनेऊ के साथ-साथ लहराती हुई चोटी धारण किए घूम रहा है। लेकिन जब मृत्यु आएगी तो नट रूपी इस पेट को, जो मनुष्य से तरह-तरह के स्वांग रचवाता है, भूलना पड़ेगा। उस समय ये वस्त्र और चोटी साथ नहीं देंगी। इसलिए चर्पटनाथ परमात्मा के प्रति पतिव्रता नारी के समान समर्पित जीवात्मा रूपी मनुष्य को इस संसार में रहने का तरीका समझाते हैं।

वे कहते हैं कि देखो-सुनो, लेकिन कुछ कहो मत। बहस करने वाले के सामने श्रोता बनकर रहो, जिस प्रकार ताप उगलती धौंकनी के सामने जल से भरा मशक शांत रहता है। गुरू अर्थात् ज्ञानी

पुरूष के सामने चेला अर्थात् जिज्ञासु बन कर रहना बड़ी बात है। वे यह भी सीख देते हैं कि अपने रहस्यों को दूसरों के सामने प्रकट नहीं करना चाहिए और सामने वाला यदि क्रोध में है तो स्वयं को शांत रखना चाहिए। चूंकि यह संसार समस्याओं से भरा है, इसलिए सोच-समझकर कदम उठाना चाहिए। अंततः चर्पटनाथ की सलाह यह है कि जिद पर आकर तपस्या अर्थात् कोई विशेष या महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं करना चाहिए।

(च) हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा धीरै धरिबा पांव।

गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरष रांव।।

यंद्री का लड़बडा जिम्भा का फूहड़ा, गोरब कहें ते परतषि चूहड़ा।

काछ का जती मुख का सती, सो सत पुरूष उतमो कथी। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ की इन पंक्तियों में आचार-संयम और इंद्रिय-संयम पर बल दिया गया है। गोरख की शिक्षा यह है कि बिना सोचे-विचार और हड़बडी में नहीं बोलना चाहिए। इसी प्रकार, पैरों को पटक-पटककर चलने के बजाए धीरे-धीरे संभलकर पाँव रखने चाहिए। मनुष्य को घमंड न करके सरल और सहज भाव से रहना चाहिए। गोरख कहते हैं कि जिस पुरूष का अपनी इंद्रिय पर नियंत्रण नहीं है, अर्थात् जो काम-वासनाओं पर नियंत्रण नहीं करता और जिसकी बातें फूहड़ हों उस पुरूष को पतित या निम्न कोटि का मनुष्य समझना चाहिए। श्रेष्ठ पुरूष वह कहलाता है जिसका अपनी कामेच्छाओं पर नियंत्रण होता है और जिसके मुख से सद्-वचन निकलते हैं।

(छ) अवधू मांस भषन्त दयाधरम का नास
मद पीवत वहाँ प्राण नीरास
भांगि भषंत ग्यांन ध्यांन षोवंत
जम दरबारी ने प्राणी रोवंत (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ ने माँसभक्षण और नशा-सेवन का घोर विरोध किया है। इन पंक्तियों में वे कहते है कि माँस खाने से मनुष्य के अंदर का दयाभाव नष्ट हो जाता है और मदिरा या शराब पीने से उसकी जीवनशक्ति क्षीण होती है। इसी प्रकार, भाँग खाने से मनुष्य का बुद्धि-विवेक लुप्त हो जाता है। इन चीजों का सेवन करने वाले प्राणि को यमराज के दरबार में रोना पड़ता है, अर्थात् आसन्न काल के समक्ष उसकी एक नहीं चलती। अतः मनुष्य को अपने अंदर के दयाभाव, जीवनशक्ति और बुद्धि-विवेक के संरक्षण के लिए इन चीजों का सेवन नहीं करना चाहिए। गोरखनाथ ने इन चीजों को योगियों के लिए भी त्याज्य और निंदा का कारक बताया है-

जोगी होइ पर निंदा झखै। मद माँस अरू भांगि जो भखै।

इकोतर सैं पुरिषा नरकहिं जाई। सति-सति भाषंत श्री गोरख राई।।

(ज) बैठे राजा बैठे परजा,

बैठे जंगल की हिरणी।

हम क्यों बैठे रावल बावल,

सारी नगरी फिरणी।

ना घरि तिय ना पर तिय रता,

ना घरि धन न जीवन मता।

ना घरि पूत न धीय कुंआरी,

ताते चरपट नींद पियारी।।

(चर्पटनाथ)

अर्थ: चर्टपनाथ की इन पंक्तियों से योगी-सुलभ मनमौजीपन झलकता है। वे कहते हैं कि राजा और प्रजा अर्थात् पूरे समाज के साथ-साथ, स्वभावतया विचरण करने वाली जंगल की हिरणी भी बैठ जाए तो क्या। हम बावले योगी तो हर जगह विचरण करते फिरेंगे, क्योंकि हमें कोई चिंता या किसी वस्तु अथवा विषय के प्रति आकर्षण नहीं है। न घर में स्त्री (पत्नी) है और न ही मैं किसी पराई नारी में अनुरक्त हूँ। साथ ही, न घर में धन है और न ही कोई पुत्र या कुंवारी पुत्री है। चर्पट कहते हैं कि इसीलिए हमें तो नींद ही प्यारी है।

3. अभ्यास प्रश्न

(1) 'थोड़ो रवाइ तो कलपै झलपै, घणो खाइ तो रोगी।' इस पंक्ति के रचनाकार कौन हैं-

(क) गोरखनाथ (ख) चर्पटनाथ

(ग) जलंधरनाथ (घ) चौरंगीनाथ

(2) गोरखनाथ के अनुसार इनमें से कौन अपने व्यवहार में निष्पक्ष होते हैं-

(क) अग्नि, राजा, लोहा (ख) जल, अग्नि, दूध

(ग) लोहा, दूध, जल (घ) अग्नि, जल, लोहा

(3) सत्य/असत्य बताएँ

(क) गोरखनाथ ने योगी के लिए मांस-मंदिरा का सेवन आवश्यक बताया है।

(ख) गोरखनाथ ने निद्रा को जीवन के लिए काल के समान बताया है।

(ग) चर्पटनाथ ने क्रोध का जवाब क्रोध से देने को कहा है।

(घ) नाथ कवियों ने आचार-संयम पर जोर दिया है।

12.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि आदिकालीन नाथ साहित्य में साधना-पद्धति के निरूपण के अलावा वाह्याचारों का विरोध, रूढ़ियों का खंडन तथा नीतिपरक उपदेश भी मिलते हैं। नाथ कवियों की रचनाओं में क्षेत्रीय भाषिक प्रयोगों के साथ-साथ पारिभाषिक शब्दों तथा प्रतीकों का प्रयोग भी मिलता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप आदिकालीन नाथ साहित्य की विषय और भाषा के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।

12.7 शब्दावली

पंच तत - क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर नामक पाँच तत्व।
पहूप-पुष्प।
पषा - पक्ष।
पडरवा - पशु।
रावल - राजा, संतों- साधुओं के लिए आदरसूचक संबोधन।
दमामा - नगाड़ा।
ऊँटा - श्वास।
धौक - लुहार की धौंकनी।
बंकानालि- सुषुम्ना नाड़ी।
मसकीना- मशक या चमड़े से बनी पानी रखने की थैली।

घणो- अधिक।
यंद्री- इंद्रिय।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. आदिकालीन नाथ साहित्य: पाठगत विशेषताएँ

(1) (क) असत्य (ख) सत्य (ग) सत्य (घ) असत्य

2. आदिकालीन नाथ साहित्य: सैद्धांतिक पाठ

(क) सत्य (ख) सत्य (ग) असत्य (घ) सत्य

3. आदिकालीन नाथ साहित्य: गैर-सैद्धांतिक पाठ

(1) (ग) जलन्धर नाथ (2)(घ) अग्नि, जल, लोहा

(3) (क) असत्य (ख) सत्य (ग) असत्य (घ) सत्य

12.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. गोरखबानी, (सं0) डॉ. पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् 1999
2. हिन्दी काव्य-धारा, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, 1954
3. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ.रामकुमार वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007

12.10उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. डॉ.पीताम्बरदत्त बडथ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, (सं.) डॉ.गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
2. हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा, पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
3. हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

12. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली

5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

(1) आदिकालीन नाथ साहित्य की विषयगत तथा भाषागत विशेषताओं का उदारण सहित परिचय दें।

(2) गोरखनाथ की किसी उलटबाँसी का उदाहरण देते हुए उसका अर्थ स्पष्ट करें।

इकाई 13 आदिकालीन जैन साहित्यः परिचय एव स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्धेश्य
13.3 आदिकालीन जैन साहित्य
13.3.1 प्रबंधात्मक साहित्य
13.3.2 मुक्तक साहित्य
13.4 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव
13.4.1 काव्यवस्तु संबंधी प्रभाव
13.4.2 काव्यरूप संबंधी प्रभाव
13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.9 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन कविता से सम्बन्धित यह इकाई जैन काव्य साहित्य से सम्बंधित है। इसके पूर्व की इकाइयों में आप आदिकालीन सिद्ध और नाथ साहित्य की विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं। सिद्ध-नाथ साहित्य के समान आदिकालीन जैन साहित्य भी आदिकालीन हिन्दी साहित्य का महत्त्व पूर्ण अंग है।

प्रस्तुत इकाई में आदिकालीन जैन साहित्य की विशेषतओं का परिचय देते हुए परवर्ती हिन्दी साहित्य पर इसके प्रभाव को स्पष्ट किया गया है।

13.2 उद्देश्य

आदिकालीन जैन साहित्य अपभ्रंश भाषा में रचा गया है। पुष्पदंत, स्वयंभू जैसे महाकवियों ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम अपभ्रंश को बनाया। स्थानभेद की विशेषताओं के आधार पर अपभ्रंश के दो रूप किए गए हैं-पूर्वी अपभ्रंश और पश्चिमी अपभ्रंश । जैन कवियों की रचनाएँ पश्चिमी अपभ्रंश का उदाहरण है। आदिकालीन जैन साहित्य का अधिकांश देश के पश्चिमी भागों- गुजरात, राजस्थान आदि- से प्राप्त हुआ है। जैन साहित्य की प्रामाणिकता और महत्व पर प्रकाश डालते हुए पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- दसवीं शताब्दी से पहले की जो रचनाएँ निस्संदिग्ध रूप से 'हिन्दी रचनाएँ मानी जाती है, उनमें प्रायः सबकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। और यदि किसी प्रकार उनके मूल रूप का पता लग भी जाए तो भी वे मध्यप्रदेश के किनारे पर पड़े हुए प्रदेशों की रचनाएँ हैं। परन्तु इन जैन आचार्यों और कवियों की रचनाएँ निसंदेह मूल रूप में और प्रमाणिक रूप में सुरक्षित हैं। उनके अध्ययन से तत्कालीन साहित्यिक परिस्थिति पर जो भी प्रकाश पड़ता है वह वास्तविक और विश्वसनीय है।'' जैन साहित्य में प्रबन्धात्मक ओर मुक्तक काव्यधाराएँ मिलती है। प्रबन्धकार कवियों में स्वयंभू, पुष्पदन्त, हरिभद्रसूरि, विनयचन्द्र सूरि, कनकामर मुनि, धनपाल आदि प्रमुख हैं। मुक्तक काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं- जाइन्दू, रामसिंह और देवसेन। जैन प्रबन्धात्मक काव्यों की तीन काटियॉ हैं - पुराणकाव्य, चरित्रकाव्य और कथाकाव्यं

पुराण काव्य - ब्राह्मणों ने जिस प्रकार पुराणों की रचना की उसी प्रकार जैनों का भी अपना पुराण साहित्य है। सामान्य तौर पर दिगंबर जैनों के धार्मिक साहित्य का चार भागों में बांटा जाता है- प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और दुव्यानुयोग। प्रथमानुयोग में तीर्थकारों के चरित्र का वर्णन किया जाता है। यही महापुराण है। महापुराण या पुराण साहित्य में जैन तीर्थकारों, बलदेव, वासुदेवों, प्रतिवासुदेवों आदि तिरेसठ महापुरूषों की जीवनगाथाओं को लेकर विशाल साहित्य सृजन हुआ है।जैन साहित्य में पुष्पदन्त कवि का महापुराण अथवा ति-सठि महापुराण काव्य का उदाहरण है, जिसमें 24 तीर्थकारों, 12 चक्रवतियों, 9 बलदेवों, 9 नारायणों और 9 प्रतिनारायणों का जीवनचरित्र काव्यात्मक ंग से वर्णित है। 'महापुराण' दो भागों में विभाजित है- आदिपुराण और

उत्तर पुराण में राम और कृष्ण की कथा भी वर्णित है जो हिन्दी साहित्य में रामकाव्य, और कृष्णकाव्य की दृष्टि से महत्त्व पूर्ण है।

चरितकाव्य-पौराणिक चरित्रों के अतिरिक्त आदिकालीन जैन साहित्य में कुछ ऐसे चरित्र काव्य हैं जसे जैन परम्परा के लोकप्रिय चरित्रों को आधार बनाकर लिखे गए हैं। पुष्पदन्त का 'णायकुमार चरिउ' (नागकुमार चरित) और 'जसहर चरिए' तथा कनकामर मुनि का 'करकडु चरिउ' जैन परम्परा में लिखे गए इसी प्रकार के चरितकाव्य हैं।

कथाकाव्य - पुराण और चरित काव्यों में जहाँ पौराणिक चरित्रों और जनश्रुतियों में प्रसिद्ध राजकुमारों के चरित्रों का काव्यात्मक वर्णन हुआ है वहीं कथाकाव्य में कथा कवि की कल्पना से जन्मी है या फिर किसी लोकथा को आधार बनाकर कवि ने अपनी कल्पना को परवान चढ़ाया है। ऐसे कथाकाव्यों का चरितनायक कोई सामान्य वणिक-पुत्र होता है। उदाहरण के तौर पर धनपाल द्वारा रचित 'भविस्सत कहा' (भविष्यस्त कथा) में वणिक-पुत्र भविष्यस्त की कथा कही गई है।प्रबन्धात्मक श्रेणी की उपरोक्त रचनाओं के अतिरिक्त जैन मतावलम्बी कवियों की मुक्तक रचनाएँ भी मिलती है। इनमें जोइन्दु कवि की ' परम्म पयासु' (परमात्म प्रकाश) और योगसार और मुनिरा सिंह की 'पाहुड़ दोहा' महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में सामान्य ंग से रूढ़ियों का खंडन, रहस्यवाद और नीति एवं आचार विषयक शिक्षा दी गई है। आदिकालीन जैर साहित्य की विपुल सामग्री आज उपलब्ध है। अगले दो उपखंडों में आप प्रमुख जैन कवियों की प्रबन्धात्मक एवं मुक्तक रचनाओं की विशेषताओं से परिचित होंगे।

अभ्यास प्रश्नः-

1- सत्य असत्य बताएं

क- आदिकालीन जैन साहित्य अधिकांशतः पश्चिमी अपभ्रंश में रचित हैं।

ख- जैन साहित्य प्रामाणिक रूप में उपलब्ध नहीं होता ।

ग- आदिकालीन जैन कवियों ने मुक्तक काव्य रूप नहीं अपनाया।

13.3 आदिकालीन जैन साहित्य

13.3.1 प्रबन्धात्मक साहित्य-

पुराण काव्य - जैन कवियों ने पौराणिक कथानकों को लेकर काफी मात्रा में रचनाएँ की हैं। इन रचनाओं में यद्यपि पौराणिक परम्परा के जैन तीर्थकारों के अतिरिक्त राम-कृष्ण आदि नायकों को लेकर भी प्रबन्ध रचनाएँ हुई हैं। किन्तु राम, कृष्ण आदि की कथाओं को जैन मत के अनुसार

रूपांतरित करने का प्रयत्न भी जैन कवियों ने किया है। इन रचनाओं में धर्म, उपदेश और साहित्यिकता का समावेश मिलता है। प्रबंधात्मक जैन साहित्य के पुराण काव्य की विशेषतओं से परिचित होने के लिए स्वयंभू और पुष्पदन्त के काव्य का प्रतिनिधिक उदाहरण लिया जा सकता है।

स्वयंभू का काव्य - स्वयंभू को अपभ्रंश का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। इन्हें 'अपभ्रंश का वाल्मीकि' कहा गया है। इनका समय आठवीं शताब्दी है। स्वयंभू मूलतः उत्तर के निवासी थे, परन्तु बाद में वे अपने संरक्षक रथडा धनंजय के साथ दक्षिण के राष्ट्रकूट राज्य में चले गए। स्वयंभू द्वारा रचित चार ग्रन्थ बताए जाते हैं- 'पउम चरिउ' (पद्मचरित अथवा रामचरित),'रिट्ठनेमिचरिउ' (अरिष्टनेमि चरित या हरिवंशपुराण), ' पंचमिचरिउ' (नागकुमार चरित) और 'स्वयंभू छन्द'. स्वयंभू की ख्याति का आधार उनका 'परउमचरिउ' अथवा 'रामचरित' नामक काव्यग्रन्थ है। पॉच कांडों और तिरासी संधियों में विभक्त यह रचना अपभ्रंश का आदिकाव्य मानी जाती है। अपने इस महाकाव्य के आरम्भ में स्वयंभू ने पंडितों से निवेदन करते हुए लिखा है-' मेरे समान कुकवि कोई दूसरा न होगा, न तो मैं , कुछ व्याकरण जानता हूँ और न वृत्तिकासूत्र की व्याख्या ही कर सकता हूँ, न मैंने पाँचों महाकव्यों को सुना है न पिंगल प्रस्तार आदि छन्द लक्षण ही जानात हूँ। भामह, दन्डी आदि के अलंकारशास्त्र से भी मैं परिचित नहीं हूँ फिर भी मैं काव्यरचना का व्यवसाय छोड़ने में असमर्थ हूँ।' स्वयंभू का यह कथन उनकी विनम्रता का प्रदर्शन है। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मैं 'गामेल्ल भास' अर्थात् जनता की भाषा में जनता के लिए काव्य का निर्माण कर रहा हूँ। स्वयंभू के राम तुलसी के राम की तरह परब्रह्म के अवतार नहीं हैं, अपनी सम्पूर्ण मानवीय दुर्बलताओं के साथ मानवीय शक्ति के प्रतिनिधि हैं। स्वयंभू ने राम को एक सामान्य मनुष्य के रूप में चित्रित किया है जो आपदाओं के विरूद्ध लड़ते हुए पौरूष के प्रतिमा है तो दसूरी ओर लक्ष्मण को शक्ति लगने पर एक साधारण मनुष्य की तरह रोते-बिलखते भी हैं। वे कर्मयोद्धा हैं। अपनी पत्नी को वापस पाने के लिए वे समुद्र पार करके रावण से युद्ध करते हैं और जब अपनी पत्नी को रावण के चंगुल से छुड़ाने में सफल हो जाते हैं तो एक सामन्य पुरूष की भांति उसके चरित्र पर शक करते हैं, उसकी अग्निपरीक्षा लेते हैं।बड़े कवि को प्रबन्धकाव्य में मार्मिक प्रसंगों का ज्ञान होना चाहिए। इन मार्मिक प्रसंगों के वर्णन में उसका मन रमना चाहिए। स्वयंभू अपभ्रंश के बड़े कवि हैं। 'पउमचरिउ' के मार्मिक प्रसंगों के वर्णन में वे रमते हैं। अपने वाक्कौशल एवं कल्पना-कौशल के द्वारा उन्होंने कई मार्मिक प्रसंगों का अद्भुत संवेदनशील चित्रण किया है। नारी के प्रति पुरूष के दृष्टिकोण को राम के चरित्र के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए स्वंयभू लिखते हैं-

''पुक्क-विमाणे चडिए अणुराएं परिमिय विज्जाहर- संधाएं

कोशल-ण्यरि पराइय जावहिं दिणमणि गउ अत्थ वण होतावटिं

जत्थ हो पियगमेण णिरवासिम। ''

अर्थात्- सीता पुष्पक विमान पर चढ़कर बड़े अनुराग से अयोध्या आती है, विद्वानों का समूह उन्हें घेरे हुए है। लकिन सीता को कोशल नगरी पराई लगने लगती है क्योंकि सूर्यास्त के बाद भी उन्हें महल में जगह नहीं दी जाती है पति महल में है और पत्नी उपवन में रात गुजार रही है। नारी के प्रति पुरूष का दृष्टिकोण निम्न पंक्तियों में और अधिक उभरता है- 'कंतहि तणिय कंति पेक्खेप्पिणु

पभणइ पोम जाहु विहसेप्पिणु

जइ कि कुलग्गयाउ णिरवज्जहु

महिलउ होंति असुद्ध णिलज्जउ।'

राम और सीता एक-दूसरे को देखते हैं। दोनों की ऑखों में मिलन की आकांक्षा दिखती है, पर राम व्यंग्य से मुस्कराते हुए धिक्कार भरे स्वर में कहते हैं- नारी अशुद्ध होती है, निर्लज्ज होती है और मलिनमति होती है। वह त्रिभुवन में अपने कुल को अशुद्ध कर अपयश फैलाती है।जैसा कि बताया जा चुका है, स्वयंभू के राम और सीता परब्रह्त या शिव-शक्ति के अवतार नहीं हैं। वे साधारण स्त्री-पुरूष के रूप में चित्रित हुए हैं। हालांकि स्वयंभू की सीता पुरूष का अनुकरण करने वाली सीधी-सादी स्त्री के रूप में नहीं आती, बल्कि वह पुरूष के आचारण एवं नैतिकता पर प्रश्न उठाने वाली तेजस्वी नारी के रूप में चित्रित हुई है. राम की मलिन वाणी सुनकर भी सीता भयभीत नहीं होतीं वह कहती हैं कि पुरूष गुणवान होकर भी विहीन होते हैं, वे मरती हुई स्त्री का भी विश्वास नहीं करते। वे उस रत्नाकर की तरह होते हैं जो क्षर देकर भी नदियों से नहीं विरमता। स्त्री-पुरूष के अन्तर को उदाहरण द्वारा समभाती हुई सीता कहती है कि दोनों में अन्तर इतना ही है कि मरने पर भी लता तरूवर को नहीं छोडती। स्त्री-हृदय की पीडा़ की अभिव्यक्ति इससे बढ़कर और क्या होगी, जब सीता कहती है कि इस दोष से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि कुछ ऐसा किया जाय जिससे स्त्री योनि में फिर से जन्म न लेना पड़े -

'एमहि तिह करोमि पुणु रहुवइ

जिह ण होमि पडि वार तिय भई।'

स्वयंभू ऐसे संवेदनशील कवि थे जो विभिन्न परिस्थितियों के मध्य पड़े मनुष्य के भावों, विचारों और किकारों की सच्ची परख रखते थे। स्वयंभू के रामकाव्य में आहत लक्ष्मण के लिए राम का विलाप और मृत रावण के लिए विभीषण का विलाप जैसे कई प्रसंग है जहाँ उनकी लेखनी पाठक को भाव-मग्न कर देती है।'रिट्ठनेमिचरउि' या 'हरिवंशपुराण' में स्वयंभू ने जैन परम्परा के बाइसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि और कृष्ण की कथा का वर्णन किया है।

पुष्पदन्त का काव्य - पुष्पदन्त अपभ्रंश के दूसरे बड़े कवि हैं। इनका समय दसवीं शताब्दी का है। ये ब्राहमण थे और रौव मतानुयायी थे। बाद में इन्होंने जैन धर्म की दीक्षा ली। इनका अधिकांश समय राष्ट्रकूट राज्य की राजधानी मान्यरवेत में व्यतीत हुआ था। पुष्पदन्त स्वभाव से अक्खड़, स्वाभिमानी और स्पष्टवादी थे। उन्होंने बड़े गर्व से स्वयं को 'अभिमान मेरू' कहा है। पुष्पदन्त की रचनाओं में 'महापुराण' तथा 'णायकुमार चरिउ' महत्त्वपूर्ण हैं। वैसे पुष्पदन्त की ख्याति का आधार 'महापुराण' ही है। इसमें उन्होंने रामकथा, कृष्णकथा और जैन तीर्थकारों की जीवनगाथाओं का वर्णन किया है। कट्टर जैन धर्मावलम्बी होने के कारण उन्होंने जैन तीर्थकारों को राम-कृष्ण से अधिक महत्त्व दिया है।

पुष्पदन्त की रामकथा ब्राहमण परम्परा के विरूद्ध जैन परम्परा की रामकथा को स्थापित करने का प्रयास है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा है- ''वाल्मीकि और व्यास के वचनों ने सबको प्रवंचित किया है..... इन्हीं भ्रमों के दूर करने के लिए गौतम राम की कथा कहते हैं। ..... श्रेणिक गौतम के समान ये शंकाएं रखते हैं कि दशमुख दस मुखों के साथ कैसे पैदा हुआ? वह राक्षस था या मानुष? क्या सचमुख उसके बीस हाथ और बीस आँखें थी?.....क्या विभीषण आज भी जीवित है? क्या कुंभकर्ण छह महीने की घोर निद्रा में सोता था? इन्हीं शंकाओं के निवारण के लिए पुष्पदन्त ने अपनी रामकथा रची है। स्वाभाविक है कि उनकी रामकथा में अतार्किक और अलौकिक बातों से बचने का प्रयास हुआ है।पुष्पदन्त की रामकथा तथ्यात्मक रूप से भी वाल्मीकि और तुलसी की परम्परा से भिन्न है। पुष्पदन्त की रामकथा में राम कौशल्या के नहीं, सुबला के पुत्र हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण सुमित्रा के नहीं, कैकेयी के पुत्र हैं। सीता के अतिरिक्त राम की सात पत्नियॉ और थीं। सीता जनक की पुत्री नहीं, बल्कि रावण की पुत्री थी। वानरादि वास्तव में वानर नहीं, बल्कि विद्याधर थे। हनुमान रूद्र के नहीं, कामदेव के अवतार थे, आदि-आदिं. हालांकि पुष्पदन्त ने राम की कथा में अलौकिक प्रसंगों से बचने का प्रयास किया है, लेकिन उनमें स्वयंभू के समान मार्मिक प्रसंगों में रमने की प्रवृत्ति नहीं मिलती। रामकथा में उनका कवित्व उतना नहीं उभरता जितना कृष्णकथा में। 'महापुराण' के उत्तरार्ध में ही उन्होंने कृष्णकथा भी कही है। कृष्ण की बाल-लीला के वर्णन में उन्हें सफलता मिलती है। उदाहरण के तौर पर-

'धूलि धूसरेण वर मुक्क सरेण तिणा मुरारिणा

कीला रस वसेण गोवालय-गोवी हियय हारिणा

रंगतेण रमत रमंते

मंथउ धरिउ भमंत अणंते।'

अर्थात् - धूल से सना वह कृष्ण ब्रज की गोपियों के हृदय को हरने वाला है। वही क्रीडा़ करता है, गोपियाँ उसकी क्रीडाएं देखकर मुग्ध होती हैं। वह आंगन में दौड़ता फिरता कमी मथानी उठाता है, कभी दही की हांडी तोड़ देता है। स्वयंभू काव्यरचना के क्रम में अपने धार्मिक आग्रहों की बीच में

आने नहीं देते। उनमें धार्मिक उदाहरण मिलती है, जबकि पुष्पदन्त में जैन धर्म के प्रति पूर्वाग्रह दिखता है। अपने 'महापुराण' में उन्होंने रामकथा और कृष्णकाव्य की अपेक्षा ऋषभदेव की कथा को अधिक विस्तार दिया है। इन सबके बावजूद पुष्पदन्त की काव्यप्रतिभा उन्हें अपभ्रंश का दूसरा बडा कवि बनाती है। डा.नामवर सिंह के शब्दों में '' स्वयंभू और पुष्पदन्त दानों ही कवि अपभ्रंश साहित्य के सिरमौर हैं। यदि स्वयंभू में भावों का सहज सौंदर्य है तो पुष्पदन्त में बंकिम भंगिमा है। स्वयंभू की भाषा में प्रच्छन्न प्रवाह है तो पुष्पदन्त की भाषा में अर्थगौरव की अलंकृत भांकी। एक सादगी का अवतार है तो दूसरा अलंकरण का उदाहरण।''जैसा कि आपको बताया जा चुका है कि आदिकालीन जैन कवियों का प्रबंन्धात्मक साहित्य तीन प्रकार का है- पुराण काव्य, चरित्रकाव्य और कथाकाव्य। आपने पुराणकाव्य की विशेषताओं को जाना। अब हम चरित्रकाव्य और कथा-काव्य पर विचार करेंगे।

चरितकाव्य - जैन कवियों ने लोकप्रसिद्ध चरित्रों को केंन्द्र में रखकर कई काव्यों की रचना की। नेमिनाथ, यशोधर, करकंहु आदि कुछ ऐसे विशिष्ट व्यक्ति है जिनके चरित्र को आधार बनाकर जैन कवियों ने चरितकाव्यों की रचना की है। नेमिनाथ को लेकर हरिभद्र सूरि (11139 ई0) की लिखी - नेमिनाथ चरिउ' और विनयचन्द्र सूरि (1200ई0) की लिखी 'नेमिनाथ चरिपई' ऐसी ही रचनाएँ हैं। 'नेमिनाथ चरिउ'में बारहमासा वर्णन मिलता है। आगे चलकर हिन्दी में बारहमासा वर्णन अधिक प्रचलित हुआ।

जैन चरितकाव्यों में पुष्पदन्त का 'णायकुमार चरिउ' (नागकुमार चरित) और ' जसहर चरिउ' (यशोधर चरित) तथा कनकामर मुनि का ' करकंडु चरिउ' अधिक महत्त्व पूर्ण है।नागकुमार चरित पुष्पदन्त की दसरी रचना है। यह नौ संधियों का छोटा-सा प्रंबधकाव्य है। इसकी रचना श्रुत पंचमी के माहात्म्य को दर्शाने के लिए की गई है। इस रचना में राजकुमार नागकुमार के जन्म, विवाहों, सौतेले भाई से संघर्ष और वीरता का वर्णन मिलता है।'जसहर चरिउ' चार संधियों का छोटा प्रबंधकाव्य है। इसमें कापालिक मत के ऊपर जैन धर्म की विजय की कहानी प्रभावपूर्ण ंग से कहीं गई है।करकंडु के जीवनचरित पर कनकामर मुनि (10613ई0) का 'करकंडु चरिउ' प्राप्त होता है। जैन पररम्परा के अनुसार करकुडु ईसा से लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व हुए थे और इनका बडा सम्मान था। दस संधियों के इस प्रबन्धकाव्य में तीन-चौथाई में थरकुंड का जीवनचरित्र एव महत्त्वपूर्ण घटनायें वर्णित हैं शेष में अन्य कथाएं कहीं गई है। इन कथाओं का उद्धेश्य जैन धर्म के सिद्धान्तों की स्थापना करना है।

कथाकाव्य - कथाकाव्य वह काव्य है जहॉ मुख्य चरित्र या तो पूर्णतः कविकल्पना की उपज होता है या फिर वही लोक कथाओं का कोई पात्र होता है। इस दृष्टि से आदिकालीन जैन साहित्य में कवि धनपाल (10वीं सदी) द्वारा रचित ' भविस्सत कहा' (भविष्यदत्त कथा) विशेष रूप से उल्लेखनीय है।'भविस्सत कहा' बाइस संधियों का प्रबंधकाव्य है जो एक लोकप्रचलित कथा पर आधारित है।

इसमें वणिक- पुत्र भविष्यदत्त की करूण गाथा है जो अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त के द्वारा कई बार धोखे का शिकार होता है और अन्त में जिन महिमा के कारण सुख पाता है।आदिकालीन जैन प्रबंधकाव्यों में विभिन्न रसों की अवतारण की गई है। डा.नामवर सिंह ने इन काव्यों के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है- '' इतने संधि, कुलक, चउपई, आराधाना, रास, चॉचर, फाग, स्तुति, स्तोत्र, कथा, चरित, पुराण आदि प्रकार के काव्यों में मानव जीवन और जगत की अनेक भावनाओं और विचरों की वाणी मिली है। -- यदि एक ओर धार्मिक आदर्शों का व्याख्यान है तो दूसरी ओर लोकजीवन से उत्पन्न होने वाले ऐहिक रस का रागरंजित अनुकथन है । यदि यह साहित्य नाना शलाका पुरूषों के उदार जीवन चरित से संपन्न परिपूर्ण है। ''

अब हम आदिकालीन जैन साहित्य की मुक्तक काव्यधारा की विशेषताओं से परिचित होंगे।

13.3.2 मुक्तक साहित्य-

जैन कवियों ने प्रबंधकाव्य तो लिख ही , साथ ही उन्होंने दोहों के माध्यम से मुक्तक-काव्य की रचना भी की। प्रबंधकाव्यों में जैन कवियों ने कथा को जैन सिद्धान्तों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया, लेकिन मुक्तक रचनाएँ इस प्रकार के सम्प्रदायगत आग्रहों से मुक्त हैं। इन कवियों की कविता का मूल स्वर रहस्यवादी है। ऐसी रचनाओं में ब्राह्मण एव जैन धर्म की रूढ़ियों, बाह्याचारों और आडम्बरों का विरोध करते हुए लोकसामान्य के लिए सरला ंग से जीव-मुक्ति का संदेश प्रतिपादित हुआ है। पं.हजारी प्रसाद द्विवदी ने इन मुक्तक काव्यों की साम्प्रदायिकता-मुक्त दृष्टि की प्रशंसा करते हुए लिखा है- '' इन दोहों का स्वर नाथ योगियों के स्वर से इतना अधिक मिलता है कि इनमें से अधिकांश पर से यदि जैन विशेषण हटा दिया जाय तो समझना कठिना हो जाएगा कि ये निर्गुणमार्गियों के दोहे नहीं हैं। भाषा, भाव, शैली आदि की दृष्टि से ये दोहे निर्गुणिया साधकों की श्रेणी में ही आते हैं। ''

अपभ्रंश में निर्गुण मुक्तक काव्य लिखने वाले कवियों में जोइन्दु (10वीं शताब्दी ई0) और मुनिराम सिंह (1100 ई0 के आस पास) प्रमुख हैं। जोइन्दु की रचनाएँ हैं परम्म पयासु' (परमात्म प्रकाश) और 'योगसार' तथा मुनिराम सिंह की काव्यकृति 'पाहुड़ दोहा' नाम से प्राप्त होती है।'परमात्म प्रकाश' दो अधिकारों में विभक्त 337 छन्दों में लिखी गई रचना है। इसमें आत्मा, परमात्मा, द्रव्य, गुण कर्म, सम्यक दृष्टि, मोक्ष, मोक्ष के फल आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। जैन कवियों ने उदार दृष्टि से रूढ़ियों, पाखंडों, बाह्याचारों आदि का खंडन करते हुए उस परम तत्व की साधना और उपासना पर बल दिया है जिसे भिन्न-भिन्न मत भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते है। जोइन्दु कहते हैं-

''जो परमप्पउ परम-पउ, हरि-हर-बंभु वि बुद्ध।
परम-पयासु भणंति मुणि, सो जिण-देउ विसुद्ध।।

जोइन्दु ने शास्त्र-ज्ञान की अपेक्षा स्वयं संवेध ज्ञान पर बल दिया। उनका मानना था कि अक्षरज्ञान या शास्त्रज्ञान से ही मुक्ति सम्भव नहीं है। शास्त्र मिथ्या भेद पैदा करने का कारण है। इसलिए ध्यान के द्वारा ही ज्ञानमय, परमात्मामय हुआ जा सकता है। इन्द्रियों को वश में करके ही परमतŸव को प्राप्त किया जा सकता है।

जो जाया झाणग्गिए, कम्म कलंक ऽहेवि।

णिच्च-णिरंजण-जाणमय, ते परमप्प णवेवि।।

अर्थात्,जो ध्यान की अग्नि से कर्मकलंकों को जलाकर नित्य निरंजन ज्ञानमय हो गए हैं, उन परमात्म को मैं नमन करता हूँ।'योगसार' अपेक्षाकृत सरल और मुक्त रचना है। इसमें कुल 108 छंद हैं। जोइन्दु की दानों कृतियॉ दोहा छन्द में रचित हैं। 'योगसार' में कवि कहता है-

''सो सिउ-संकरू विणहू सो, सो रूद्धवि सो बुद्धु।

सो जिणु ईसरू बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्ध ।।''

अर्थात् - वही शिव है, वही शंकर है, वही विष्णु है, वही रूद्र है, वही बुद्ध है, वही जिन है, वही ईश्वर है, वही ब्रह्मा है, वही अनन्त और वही सिद्ध है। मुनिराम सिंह की रचना 'पाहुड़ दोहा' 222 दोहों की रचना है। पाहुड़ दोहा का शाब्दिक अर्थ है- दोहों का उपहार! पाहुड़ संस्कृत शब्द 'प्रभृत' का रूपान्तर है जिसका अर्थ होता है 'उपहार'।'पाहुड़ दोहा' में राम सिंह ने पुराण पन्थी रू ि वादी प्रवृत्तियों का खण्डन किया है। उन्होंने षड्दर्शन का विरोध किया है जो एक ही ईश्वर के छह भेद कर देता है-

छह दसण धधदू पडिय, मणहंण फिट्टव भांति। ,

एक्कु देउ छह भेउ किउ, तेणण मोक्खछं जांति।

वे कहते हैं कि षड्दर्शन से भी मन की भ्रान्ति नही टूटी। एक देव के छह भेद किए, इसलिए मोक्ष नहीं मिला। मुनि राम सिंह 'पाहुड़ दोहा' में बाह्याचारों का विरोध करते हुए लिखते हैं कि जो इन सब पूजा-पाठ, व्रत, स्नान आदि में पड़ गया वह मूल तत्त्व तक कमी नहीं पहुँच सकता। यह वैसी ही मूर्खता है जैसे जड़ को छोड़कर डाल को पकड़नां क्या रूई को ओटाये बिना भी कपड़ा बुना जा सकता है-

मूल छांडि जो डाल चढ़ि, कहँ तह जोया भायसि।

चीरूणु बुणणहँ जाइ ब , विणु उट्टिई कपासि ।।''

जैन मतावलम्बी मुक्तक रचनाकरों के पाखंड विरोध के सम्बन्ध में डा. नामवर सिंह का कहना है- '' व्यवहार के क्षेत्र में यह शास्त्र विरोध और अक्षर खंडन धर्म के ठेकेदार पंडितों और पुरोहितों पर सीधा प्रहार था, दूसरी ओर इसके द्वारा उस जनसाधारण के लिए ज्ञान का सहज द्वार खुल गया जिन्हें पढ़ने-लिखने की सुविधा प्राप्त न हो सकी थी। ''जैन मुनियों का मानना था कि आत्मज्ञान ही वही ज्ञान है जिसके बाद कुछ जानना शेष नहीं रह जाता। आत्मा ही आत्मा को प्रकाशित करती है जैसे रवि का राग अम्बर को-

'अप्पु पयासइ अप्पु पइ, जिम अम्बरि रवि राउ।'

उन्होंने धर्मोपदेशकों द्वारा अपवित्र बताई जाने वाली देह को देवमन्दिर की गरिमा प्रदान की-

'देहा देवलि जो बसइ, देउ अणाइ अणंतु।'

परमात्मा के इस आवास को स्वच्छ और पवित्र रखा जाए क्योंकि चित्त की निर्मलता में ही देवता का निवास हो सकता है, जैसे सरोवर में हंस लीन रहता है-

''णिय-मणि णिम्मालि णाणियहँ , णिवसइ देउ अणाइ।

हंसा सरिवरि लीणु जिम, महु एहउ पडिहाई।। ''

अभ्यास प्रश्नः-

1- जैन मतावलम्बी चार प्रबंधकार कवियों और उनकी रचनाओं के नाम लिखें।

2- मुक्तक काव्य रचने वाले किन्हीं दो जैन कवियों के नाम बतायें ।

3. **सत्य/असत्य बताएँ -**

क- स्वयंभू के 'पउम चरिउ' में सीता तेजस्वी नारी के रूपम चित्रित हुई है।

ख- कथाकाव्य का मुख्य चिरत्र या नायक कवि कल्पना की उपज या लोकप्रचलित कथाओं से लिया गया होता है।

ग- 'पाहुड़ दोहा' के रचयिता पुष्पदन्त हैं।

घ- कनकामर मुनि को 'अभिमानमेरू' भी कहा जाता है।

ड- स्वयंभू 'अपभ्रंश के वाल्मीकि' माने जाते हैं।

13.4 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव-

इसके पूर्व आप आदिकालीन जैन कवियों के प्रबंधकाव्यों और मुक्तक रचनाओं की विशेषताओं का परिचय प्राप्त कर चुके है। अब आप परवर्ती हिन्दी साहित्य पर भाषा, शिल्प आदि दृष्टियों से आदिकालीन जैन साहित्य के प्रभाव का अध्ययन करेंगे।काव्य के दो पक्ष होते हैं- वस्तु और रूप। वस्तु से आशय है छन्द, काथानक रूि याँ, संरचना आदि। आदिकालीन जैन साहित्य ने वस्तु एवं रूप दोनों दृष्टियों से परवर्ती हिन्दी साहित्य को प्रभावति किया है।

13.4.1 काव्यवस्तु सम्बन्धी प्रभाव:

जैन साहित्य के अध्ययन के क्रम में आपने जाना कि प्रबंधकाव्य की रचना करने वाले कवियों ने रामकथा, कृष्णकथा के अतिरिक्त जैन तीर्थकारों तथा अन्य विख्यात चरित्रों को अपनी कविता का विषय बनाया। इनके अलावा उन्होंने ऐतिहासिक या लोकप्रचलित कथाओं के नायकों को लेकर उनके शौर्य, वीरता एवं श्रृंगार का वर्णन किया परवर्ती हिन्दी साहित्य के रासो काव्यों में इस परम्परा का ओर अधिक विकास हुआ।,

पुष्पदन्त के 'णायकुमार चरित' और 'जसहर चरिउ' में नायकों की वीरता और शौर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है । ये चरित्र पूर्णतः ऐतिहासिक नहीं है। यदि इतिहास में कहीं इनका उल्लेख हुआ भी है तो काव्य में इनकी सर्जना कल्पना प्रसूत ही है। ये वस्तुतः कविकल्पना से उत्पन्न चरित्र हैं। हिन्दी साहित्य में जो वीरगाथात्मक रासो ग्रन्थ लिख गए उनमें 'पृथ्वीराज रासो; ' हम्मीर रासो;' 'खुम्मानरासो'; 'परमाल रासों' आदि प्रमुख है। इनमें भी राजाओं की वीरता, वैभव, श्रृंगार आदि का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन ही मिलता है। जैन चरितकाव्यों के नायक लोककथाओं से लिए गए हैं या कविकल्पना की उपज है जबकि रासो काव्यों के नायकों के नाम ऐतिहासिक हैं, लेकिन उनका चरित्राकन कल्पना से रंगा हुआ है। उनमें ऐतिहासिक की सुरक्षा नहीं हो पाई है।भक्तिकालीन रामकाव्य और कृष्णकाव्य की परम्परा के बीज भी हम आदिकालीन जैर काव्य में पा सकते हैं। हालॉकि भक्तिकाल के कवियों ने राम- कृष्ण के चरित्र को भारतीय मुख्य परम्परा के अनुकूल बनाकर प्रस्तुत किया है। भक्तिकाल की मूल चेतना भक्ति थी। इस मूल चेतना के आलोक में भक्त कवियों ने राम और कृष्ण के चरित्र को परब्रह्म के अवतार के रूप में चित्रित किया है और साथ ही उनका मानवीय रूप प्रदर्शित किया है। जबकि जैन काव्य में राम-कृष्ण साधारण पौराणिक पात्रों के रूप में सामने आते हैं।

मुक्तक काव्य रचने वाल कवियों ने धर्म की रूि यों और बाह्याचारों का खंडन कर आत्ज्ञान की प्राप्ति पर बल दिया थां उन्होंने शास्त्रज्ञान की अपेक्षा अनुभव को अधिक महत्त्व दिया। इस दृष्टि से यदि भक्तिकालीन सन्त-साहित्य पर विचार करें तो सिद्ध-नाथ कवियों के साथ-साथ इन जैन कवियों का प्रभाव और प्रेरणा भी लक्ष्य की जा सकती है।

13.4.2 काव्यरूप सम्बन्धी प्रभावः-

काव्यरूप से आशय भाषा, छन्द, कथानक रूि यों एवं काव्यशिल्प से सम्बन्धित अन्य विशेषताओं से है। समय के साथ साहित्य की विषयवस्तु में परिवर्तन आता रहता है, परन्तु काव्य रूप लम्बे अरसे तक प्रयोग में लाए जाते हैं। आप प चुके हैं कि आदिकालीन जैन साहित्य अपभ्रंश में रचित है। काव्यरूप सम्बन्धी इसकी कई विशेषताएँ हिन्दी साहित्य में अपना ली गई।सर्वप्रथम यदि हम छन्द पर विचार करें तो पाएँगे कि अपभ्रंश से पहले छन्द तुकान्त नहीं होते थे। अपभ्रंश भाषा में पहली बार तुकान्त एवं मात्रिक छन्दों का प्रयोग आरम्भ हुआ। तब से आज तक हिन्दी में मात्रिक छन्दों का प्रचलन बना हुआ है। जैन चरितकाव्यों में पद्धड़िया छन्द अपनाया गया साथ ही बीच-बीच में एकरसता दूर करने के लिए दूसरे छन्दों का भी प्रयोग किया गया। परवर्ती हिन्दी साहित्य के 'रामचरितमानस' और 'पद्मावत' जैसे प्रबंधकाव्यों में भी तुलसी तथा जायसी ने यह पद्धति अपनायी हैं हिन्दी के प्रबंधकाव्यों के लिए चौपाई प्रमुख छन्द बन गयां कवियों ने चौपाइयों के बीच-बीच में दोहा-सोरठा आदि का प्रयोग किया ताकि कथानक की एकरसता समाप्त हो जाए और नवीनता बनी रहे। दोहा अपभ्रंश का विशिष्ट छन्द है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार- ' सच्चाई यही है कि श्लोक संस्कृत का, गाथा प्राकृत का और दोहा अपभ्रंश का अपना छन्द है।'' दोहा मुक्तक काव्य के लिए अन्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल तक में मुक्तक रचनाओं के लिए यह हिन्दी के कवियों का प्रिय छन्द रहा है। चौपाई छन्द के विषय में हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि इसका संबंध अपभ्रंश के छन्द से है। अपभंश में चउपई नामक छन्द भी मिलता है जिसमें 113-113 मात्राएँ होती हैं, जबकि हिन्दी चौपाई में में प्रत्येक चरण में 16-16 मात्राएँ होती हैं। तुलसी, जायसी जैसे महाकवियों द्वारा प्रयुक्त चौपाई छन्द का मूल भी अपभ्रंश काव्य में ही है। इसी प्रकार हिन्दी का एक बहुप्रयुक्त छन्द 'रोला' है। जैन कवि धनपाल की रचना ' भविस्सत कहा;' में इसका प्रयोग मिलता है।प्रत्येक दौर के साहित्य में रूप विधान से जुडी़ हुई कुछ रूि यों पाई जाती है जिनका कवियों द्वारा निर्वाह किया जाता है। प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से मंगलाचरण, आत्मनिवेदन, दुर्जन निंदा और सज्जन प्रशंसा आदि कुछ ऐसी ही रूि यॉ हैं आदिकालीन जैन प्रबंधकाव्यों की ये रूि यों तुलसी के 'रामचरित- मानस' में भी प्रयुक्त हुई है। और जायसी ने भी 'पद्मावत' में कथानक-रूि यों का प्रयोग किया है। अधिकांश जैन प्रबन्ध काव्यों में कथा की शुरूआत दो व्यक्तियों के प्रश्नोत्तर के रूप में हुई है। ऐसे ही 'पृथ्वीराज रासो', शुक-शुक संवाद के रूप में है और 'रामचरितमानस' शिव-पार्वती संवाद के रूप में लिखा गया है।

अभ्यास प्रश्न-

13. आदिकालीन जैन साहित्य में प्रयुक्त उन छन्दों के नाम लिखें जिनका प्रयोग परवर्ती हिन्दी साहित्य में हुआ।

6. आदिकालीन जैन प्रबंधकाव्यों में प्राप्त कथानक- रू ियों के नाम लिखें जिनका निर्वाह परवर्ती हिन्दी साहित्य में मिलता है।

13.5 सारांश-

इस इकाई को प ने के बाद आप जान चुके हैं कि आदिकालीन जैन साहित्य प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य के रूप में रचा गयां स्वंयभू, पुष्पदन्त, धनपाल, कनकामरमुनि, नेमिनाथ आदि प्रमुख प्रबंधकार कवि हैं जबकि जोइन्दु एवं मुनिराम सिंह प्रमुख मुक्तक रचनाकार हैं। प्रबंधकाव्यों में प्रसिद्ध जैन तीर्थकारों, राम-कृष्ण के चरितों के अलावा लोककथाओं के चरित्रों का वर्णन करते हुए जैन धर्म के सिद्धान्तों और महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। मुक्तक काव्य में धर्म के बाह्याचार, शास्त्रज्ञान आदि का खंडन कर सहज आत्मज्ञान की प्राप्ति पर बल दिया गया है। जैन साहित्य ने परवर्ती हिन्दी साहित्य को काव्यवस्तु एवं काव्यरूप, दोनों ही दृष्टियों से प्रभावित किया है।

13.6 शब्दावलीः-

प्रबंधकाव्य : प्रबंधकाव्य में पूर्वापर सम्बन्धों में बँधी हुई कथा होती है। कथा होने के कारण कवि द्वारा इसमें घटनाओं और चरित्रों की योजना की जाती है। कवि घटना और चरित्रों के प्रसंग में विभिन्न रसों की अवतारण करता है। प्रबंधकाव्य के दो भेद होते हैं- महाकाव्य और खंडकाव्य।

मुक्तक काव्य : जब कवि स्वतंत्र रूप से, बिना किसी कथा या घटना के अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है तो वह काव्यरूप मुक्तक कहा जाता है।

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क-सत्य ख-असत्य ग-असत्य

2. स्वयंभू- पउमचिरउ, रिट्ठनेमि चरिउ, हरिवंश पुराण

पुष्पदन्त- महापुराण, णायकुमार चरिउ, जसहर चरिउ

कनकामर मुनि- करकंडु चरिउ

धनपाल - भविस्सत कहा

3. जोइन्दु - परमात्म प्रकाश, योगसार

   मुनि राम सिंह- पाहुड़ दोहा

4. क- सत्य ख-सत्य ग-असत्य ध- असत्य ड-सत्य

5. दोहा, रोला, चउपई

6. मंगलाचरण, आत्मनिवेदन, दुर्जन निंदा, सज्जन प्रशंसा, संवाद या प्रश्नोत्तर शैली, बारहमासा वर्णन आदि।

13.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006

2. 'हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास',हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली, 1999

3. 'हिन्दी साहित्य की भूमिका ',हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

4. 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग', डॉ.नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971

13.9 निबंधात्मक प्रश्नः

1. प्रमुख जैन प्रबंधकार कवियों की रचनाओं का परिचय देते हुए उनकी काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

2. आदिकालीन जैन साहित्य ने परवर्ती हिन्दी साहित्य को किस प्रकार प्रभावित किया? स्पष्ट कीजिए।

इकाई 14: आदिकालीन जैन साहित्यः पाठ एवं परिचय

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्धेश्य
14.3 आदिकालीन जैन साहित्यः पाठगत विशेषताएँ
14.4 आदिकालीन जैन प्रबंधकाव्य: चयनित पाठ
14.5 आदिकालीन जैन मुक्तककाव्य: चयनित पाठ
14.14 सारांश
14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.8 संदर्भ गन्थ-सूची
14.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.10 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में आप आदिकालीन जैन साहित्य के स्वरूप से परिचित हो चुके हैं। आपने प्रबंधकाव्य और मुक्तककाव्य रचने वाले आदि कालीन कवियों की विशेषताओं को भी जाना। प्रस्तुत इकाई में आदिकालीन जैन साहित्य के चयनित पाठों से आपका परिचय कराया जा रहा है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जैन साहित्य में व्यक्त विचारों-भावों ओर अभिव्यक्ति की कलात्मकता से परिचित हो सकेंगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- आदिकालीन जैन कवियों द्वारा रचित प्रबंधकाव्यों में अभिव्यक्त मानव जीवन की विभिन्न भावदशाओं से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकालीन जैन कवियों की मुक्तक रचनाओं में अभिव्यक्त विचारों को जान सकेंगे और सिद्ध-नाथ कवियों एवं भक्तिकालीन संतकाव्य की प्रवृत्तियों से उसके साम्य की पहचान कर पाएंगे।

14.3 आदिकालीन जैन साहित्यः पाठगत विशेषताएँ

पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि आदिकालीन जैन साहित्य में दो प्रकार के कवियों की रचनाएँ सम्मिलित हैं- प्रबंधकाव्य की रचना करने वाले कवि और मुक्तक रूप में रचना करने वाले कवि। स्वयंभू, पुष्पदन्त, धनपाल आदि प्रसिद्ध प्रबंधकार कवि हैं और जोइन्दु, मुनि राम सिंह, देवसेन आदि की मुक्तक रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। जैन प्रबंधकाव्यों में प्रसिद्ध जैन तीर्थकरों तथा राम-कृष्ण के चरितों के अतिरिक्त प्रसिद्ध लोककथाओं के चरित्रों का वर्णन करते हुए जैन धर्म के सिद्धान्तों और महत्व का प्रतिपादन किया गया है। प्रबन्ध रचने वाले जैन कवियों ने मानव जीवन की भिन्न भावदशाओं को कलात्मक अभिव्यक्त दी है। उनकी रचनाओं में उपयुक्त उपमाओं के जरिए सुघड़ सादृश्य-विधान प्रस्तुत किया गया है।जैन मुक्तककाव्य में धर्म के बाह्याचारों तथा शास्त्रों का ज्ञान आदि का खंडन किया गया है। मुक्तक रचने वाले जैन कवियों ने मुख्यतः नीति-उपदेश, वैराग्य और आत्मज्ञान की बातें की है। यह प्रवृत्ति सिद्धों, नाथों और जैन मुक्तक कवियों में इतनी प्रमुखता से मौजूद है कि यदि कवि का नाम न दिया जाए तो आप देखेंगे कि इन सबकी कविता की विषयवस्तु लगभग समान है।

इस इकाई के अगले दा खंडों में आपका परिचय जैन कवियों द्वार रचित प्रबंधकाव्यों और मुक्तक काव्य के चयनित पाठों से कराया जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न

1 सत्य/असत्य बताएं

(क) प्रबंधकाव्य के रचियता जैन कवियों ने मुख्यतः नीति, वैराग्य तथा आत्मज्ञान की चर्चा की है।

(ख) आदिकालीन जैन मुक्तक काव्य में पौराणिक और लोक-विख्यात चरित्रों की कथा कही गई है।

(ग) सिद्ध-नाथ काव्य और मुक्तक काव्य में प्रवृत्तिगत समानता मिलती है।

14.4 आदिकालीन जैन प्रबंधकाव्यःचयनित पाठ

क- पुक्क विमाणे चडिय अणुरायें, परिमिय विज्जाहर संधाएँ

कोशल-णयरि पराइय जावहिं, दिणमणि गउ अत्थ-वणहोतवहिं

जत्थहो पिययमेण णिव्वासिय, तव उववणहो मज्झे आवासिय

कहवि विहांणा भाण णहे उग्गउ, अहि-मुहु सज्जण-लोउ समागउ

दिण्णइ तरइ मंगलु घोसिउ, पट्टणु णिश्वसेसु परिओसउ

सीय पइट्ठ णिवट्ठ वरासणे, सासण-देवए जं जिण-सासणे

परमेसरि प म-समागमे भति णिहालिय हलहरेण।

सिय-पक्खहो दिवसे हिल्लए चंद लेह सायरेण।। (स्वयंभू- 'पउमचरिउ')

शब्दार्थ- पुक्क विमाणे - पुष्पक विमान, अणुरायें - अनुराग, विज्जाहर- विधाधर, णयरि-नगरी, दिणमणि -सूर्य, अत्थ-अस्त, उववणहो- उपवन में, विहांण- सुबर, हलहरेण-राम

अर्थ- प्रस्तुत पंक्तियॉ 'अपभ्रंश भाषा के वाल्मीकि' कहे जाने वाले कवि स्वयंभू के प्रबंधकाव्य 'पउमचरिउ' से उद्धत है। इन पंक्तियों में महाकवि स्वयंभू राम द्वारा लंका विजय के पश्चात् पुष्पक विमान पर चढ़कर सीता के अयोध्या लौटने का वर्णन कर रहे हैं। सीता के लंका से वापस आने पर एक ओर तो अयाध्या का भव्य वातावरण है और दूसरी ओर सीता के चरित्र पर शंका के कारण उनके प्रति उपेक्षिता-सा व्यवहार हो रहा हैं इस विरोध के द्वारा स्वयंभू सम्पूर्ण प्रसंग को मार्मिक और प्रभावशाली बना देते हैं।

स्वयंभू लिखते हैं कि पुष्पक विमान पर चढ़कर सीता अत्यन्त अनुराग के साथ अयोध्या आईं। विधाधरों का समूह उन्हें घेरे हुए था। वे जब कोशल नगरी पहुँचीं तो सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहे थे। बड़े अरमानों और अपेक्षाओं के साथ राजधानी लौटी सीता के साथ उपेक्षिता-सा व्यवहार होता है। उन्हें राजमहल में नहीं रखा जाता। राजा राम तो अपने राजमहल में रहने के लिए चले जाते हैं, लेकिन सीता को राजमहल के उपवन में ठहरा दिया जाता है। लंकापति रावण के यहाँ से उनका निर्वासन तो पूरा हो गया, किन्तु अब वे स्वयं अपने पति द्वारा निर्वासित कर दी जाती हैं। अन्ततः सुबह होती है, पूर्व दिशा में सूर्य उदित होते हैं। 'सज्जन लोग' अर्थात् नगर के भद्रजन वहॉ जुटने शुरू होते हैं। सूर्योदय पर मंगलघोष करने वाले तुर्य बजाए जाते हैं। लेकिन ये तूर्य अभी मंगलघोष करने के लिए नहीं, बल्कि सीता की अग्निपरीक्षा की घोषणा करने के लिए बजाए जाते हैं। प्रातःकाल की ऐसी बेला में सीता वहॉ प्रवेश करती हैं।

स्वयंभू स्थिरचित्र सीता की गरिमामय छवि का चित्रण करने के लिए सादृश्य-विधान का प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं बैठी-हुई सीता अग्नि की कांति से ऐसी प्रतीत हो रही हैं माने जिन शासन पर शासन देवता हैं। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में सीता पहली बार राम द्वारा देखी जाती हैं। दोनों का परस्पर देखना ऐसा था जैसे श्वेत पक्ष (शुक्ल पक्ष) के प्रथम दिन सागर चंद्रकिरण की ओर देखताहै। इस प्रकार स्वयंभू परिवेश की मार्मिकता और सीता की उपेक्षित छवि को साकार कर देते हैं।

ख- कंतहि तिणय कंति पेक्खेप्पिणु, पभणई पोम णाहु बिहसेप्पिणु

जइ वि कुलग्गयाउ णिरवज्जउ, महिलउ होंति असुद्ध णिलज्जउ

दस-दाविय कडक्ख विक्खेवउ, कुडिल-मइउ वड्ढि अ-अवलेवउ

बाहिर-धिट्ठउ गुण-परिहणीउ, णउ गणंति णिय कुल मइलंतउ

तिहुअणे अयस-पडहु महलंतउ, अंगु समोडेवि धिद्धिक्कार हो

वयण णिएति केम भरहो। - (स्वयंभू- 'पउमचरिउ')

शब्दार्थ- कंत-पति, पेक्खेप्पिणु-देखना, णाहु-नाथ, बिहसेप्पिणु- विहॅसना, कुलग्गयाउ-कुलको लांछित करना, णिलज्जउ-निर्लल्जता, विक्खेउ- विष, मइलंतउ- मलिन करना, तिहुअणे- त्रिभुवन या तीनों लोकों में, भत्तारहो - पति

अर्थ- उपरोक्त पंक्तियों में स्वयंभू ने राम के चरित्र के माध्यम से सामंती समाज की पुरूष नैतिकता को दर्शाते हुए स्त्री-पुरूष असमानता को रेखांकित किया है। अग्निपरीक्षा से पूर्व राम सीता की ओर देखकर विहॅसते हैं, उन पर लांछन लगाते हैं ओर धिक्कारपूर्ण बातें कहते हैं। स्वयंभू की इन पंक्तियों में राम सीता की शोभा देखते हुए व्यंग्य-भरी मुस्कान के साथ धिक्कारपूर्ण स्वर में कहते हैं कि जो

स्त्री कुल से बाहर रह जाती है या कुल की वर्जनाओं से बाहर हो जाती है वह स्त्री अशुद्ध हो जाती है, निर्लज्ज हो जाती है। ऐसी स्त्रियॉ मलिनमति होती हैं, कुल या परिवार से बाहर रहने पर वे विष से भर जाती हैं। बहिर्घृष्टा होने पर वे अपने कुल को तीनों लोकों में अपयश देती हैं। भला ऐसी स्त्री को कौन पति अपने अंगों से लगा सकता हैं, कौन ऐसा पति होगा जो ऐसी पत्नी का मुँह भी देखे ?

स्वयंभू ने इस प्रसंग में सामंती समाज में स्त्री-पुरूष संबंधी विभेद एवं असमान नैतिक आग्रहों को राम-सीता के माध्यम से उद्धरित कर दिया है।

ग- सीय ण भीय सइण-गव्वे

बलेवि पबोल्लिय गग्गर सद्दें

पुरिस णिहीण होंति गुणवत वि

तियहे ण पाज्जंति मरंतवि

खडु लक्कडु सलिल वहंतिहे पउराणियहे कुलग्गयहे।

रयणायरू खार इ देंतउ तो विण थक्कई ण पण्इहे।। (स्वयंभू- 'पउमचरिउ')

शब्दार्थ- सीय-सीता, भीय-डरना, सइण-संयत, गुणवत-गुणवान, णिहीण-विहीन, तियेह-पत्नी, पज्जंति-विश्वास, रयणायरू-रत्नाकर (समुद्र), खार-क्षार

अर्थ- स्वयंभू ने इन पंक्तियों के माध्यम से व्यथित-हृदय सीता का गरिमामय चरित्र उपस्थित किया है। राम के धिक्कार-भरे वचन को सुनकर भी सीता संयत बनी रहीं। तनिक भी भयभीत हुए बिना, सतीत्व के गर्व से सिर ऊँचा करके सीता ने कहा कि पुरूष गुणवान होकर भी विहीन होते हैं। स्त्री के प्रति सद्भाव का अभाव होना विहीन होना ही है। सीता कहती हैं कि पुरूष मरती हुई स्त्री पर भी विश्वास नहीं करते। वे उस समुद्र की भांति होते हैं जो क्षर देकर भी नदियों से नहीं विरमता।

घ- णर णारिहिं एवड्डउ अंतरू

मरणे वि वेल्लि ण मेल्लइ तरूवरू

एह पइ कवणा बोल्ल पाररंभिय

सइ-वडाय मइ अजु समुि भय

तुहु पेक्खंतउ अच्छु विसत्थउ

डहउ जलणु जय डहिवि समुत्थउ। - (स्वयंभू- 'पउमचरिउ')

शब्दार्थ - वेल्लि-लता, तरूवरू-पेड़ डहउ- जलाना

अर्थ- अपने प्रति राम के अविश्वास और फलतः अग्निपरीक्षा के प्रसंग में ही सीता का आक्रोश यहॉ व्यक्त हो रहा है। वे धैर्यपूर्वक राम के आरोप के प्रत्युत्तर में कह रही हैं स्त्री और पुरूष में यह अन्तर है कि जिस प्रकार मरने या सूख जाने के बाद भी लता पेड़ का साथ नहीं छोड़ती, उसी प्रकार विपरीत परिस्थितियों में भी स्त्री कभी पुरूष का साथ नहीं छोड़ती। स्वयं सीता ने राम के जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों में सदा उनका साथ दिया, लेकिन जब स्थितियॉ अनुकूल हो गईं तो राम ने सीता के चरित्र पर अविश्वास करके उनके साथ उचित व्यवहार नहीं किया।

स्वयंभू लिखते हैं कि इस प्रकार के करूण वचन सीता ने उस समूह के सम्मुख कहे। सीता ने राम से आगे कहा कि आप विश्वस्त होकर देखते रहें। यदि मेरा मन विशुद्ध है तो आग मुझे जला नहीं पाएगी।

ड- हा हा कइँ वु पइँ हलहर, दसहर-वंश-दीव जग सुंदर।

पइँ विणु को पल्लके सुवेसइ, पइँ विणु को अत्थाणे वईसइ।

पइँ विणु को हय-गयहुँ चडेसइ, पइँ विणु को झिंदुएण रमेसइ।

पइँ विणु रायलच्छि को माणई, पइँ विणु को तम्बोलु समाणइ।

शब्दार्थ- दसहर-दशरथ, दी-दीपक, पल्ल्के- पलंग, सुवेसइ-सोना, हय-गयहूँ- हाथी-घोड़े, रायलच्छि- राजलक्ष्मी, तम्बोलु- पान

अर्थ- प्रस्तुत पंक्तियों में महाकवि स्वयंभू ने राम-वनगमन के प्रसंग में माता कौशल्या के पुत्र-वियोग की व्यथा का सजीव चित्र उपस्थित किया है। इन पंक्तियों में माता के हृदय में व्याप्त पुत्र-प्रेम की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है।

राम के वनगमन के समय कौशल्या के हृदय में भावों का झंझावात उठ रहा है। वे सोचती हैं कि राजा दशरथ के वंश को प्रकाशित करने वाले दीपक के समान, जगत् विख्यात राज जब वन के लिए प्रस्थान कर जाएँगे तो उनका पलंग सूना हो जाएगा! उस शय्या का कौन सुशाभित करेगा, कौन बैठेगा? राम के न रहने पर कौन उनके हाथी-घोडों की सवारी करेगा। राजलक्ष्मी राम के बिना वैभवहीन हो जाएगी। उनकी जगह पान का स्वाद कौन लेगा ? यहाँ वियोग की कल्पना-मात्र से कौशल्या विचलित हो जाती हैं। राम के दैनिक उपभोग से जुडी हुई वस्तुओं के माध्यम से उनकी विह्वलता प्रकट होती है। स्वयंभू ने इन पंक्तियों में पुत्र-वियोग से कातर माता का नितांत स्वाभाविक और प्रामाणिक विलाप-चित्र खींचा है।

च- हा भायर दुण्णिद्दए मुत्रउ

सिज्जे मुएवि कि महियले सुउ

किं अवहेरि करेवि थिउ, सीसे चडाविय चलण तुम्हार।

अच्छामि सुट्ठम्माहियउ, हिअउ फुट्ट आलिंगी भडारा।।

शब्दार्थ- भायर-भाई, दुण्णिद्दए-दुर्निंद्रा, सिज्जे-सोना, महियले-भूमि पर, अवहेरि-अवहेलना, चलण-चरण, सुट्ठम्माहियउ-वीर, भट्टारक, हिअउ -हृदय

अर्थ- उपर्युक्त पंक्तियों में स्वयंभू रावण की मृत्यु पर उसके भाई विभीषण के हृदय की वेदना को वाणी दे रहे हैं।

रणभूमि में रावण की मृत देह को देखकर विभीषण विलाप करता हुआ कहता है- हे भाई! यह दुर्तिद्रा त्यागकर उठ खड़े हो जाओ। तुम आज अपनी शय्या छोड़कर भूमि पर पड़े हो। मेरे कहने से भी खड़े नहीं होते। इस प्रकार में अवहेलना मत करो। मैं अपना सिर तुम्हारे चरणों पर धरकर तुमसे विनती करता हूँ। हे परमभट्टारक! हे परमवीर ! तुम उठ खड़े हो, तुम्हारे आलिंगन के लिए मेरा हृदय फटा जा रहा है। स्वयंभू ने इन पंक्तियों में विभीषण के चरित्र को अपनी सहानुभूति देकर उस उज्जवल बना दिया है। वह विभीषण, जिसने अपने भाई रावण का साथ नहीं दिया था, अब रावण की मृत्यु के बाद ग्लानि और क्षोम से भरा हुआ है। यह रक्त-सम्बन्धों के प्रति सहज लगाव का ही सूचक है।

छ- तुहु पडिउसि ण, पडिउ पुरंदरू

मउडु ण भग्गु, भग्गु गिरि कंदरू

दिठि ण णट्ण, णट्ठ लंकाउरि

वयण ण णट्ण, णट्ठ मंदोयरि

हारू ण णट्ठ, तुट्ठ तारायणु

हियय न भिण्णु, भिण्णु गयणांगणु

आउ ण खुट्ट, खुट्ट रयणायरू

जीउ ण गउ, गउ आसा पोट्टल

तुहु ण सु, सुउ महिमंडल।

शब्दार्थ:- पडिउसि- पड़ा हुआ, पुरंदरू- इन्द्र, मउडु- मुकुट, भग्गु- भग्न, दिठि- दृष्टि या आँख, णट्ठ- नष्ट, वयण-वचन, आउ-आयु, महिमंडल- भूमंडल

अर्थ- महाकवि स्वयंभू की इन पंक्तियों में उस समय का चित्रण हुआ है जब राम के हाथों पराजित रावण का क्षत-विक्षत शरीर धराशायी है। उसका मुकुट एक और लुढ़का पड़ा है, गले का हार टूटकर बिखर गया है, उसके मुँह से शब्द नहीं निकल रहे हैं, आँखें बंद हो चुकी हैं। रावण की ऐसी मृत्यु देखकर विभीषण के हृदय में उठ रही वेदना को कवि स्वर देते हैं।

युद्ध में धराशायी अपने भाई रावण की दशा को देखने के बाद विभीषण के व्यथित हृदय में भावों का द्वंद्व चलता है। इसी मनः स्थिति में वह सोचता है कि यह मेरा भाई रावण नहीं, बल्कि साक्षात् पुरंदर आर्थात् इन्द्र है। यह रावण का मुकुट टूटकर नही गिरा पड़ा है, बल्कि यह तो मानो गिरिकंदर भग्न हुआ है। रावण की दृष्टि नहीं बंद हुई है, अपितु लंकापुरी नष्ट हुई है। उसके वचन या वाणी नष्ट नहीं हुई है, अपितु इनका आस्वादन करने वाली मंदोदरी नष्ट हुई है। यह जो रावण के हृदयस्थल पर लटकने वाला मोतियों का हार उसकी मृत्यु के पश्चात् टूटकर बिखर गया है, यह मानों गगनमंडल के तारे बिखरे पड़े हैं यह बिंधा हुआ विशाल हृदय रावण का नहीं है, यह तो मानों विश्वव्यापी आकाश बिंध कर गिरा पड़ा है।

विभीषण कहता है कि हे भाई! तुम्हारी आयु समाप्त नहीं हुई है, बल्कि कभी न घटने वाला रत्नाकर (समुद्र) ही समाप्त हो गया है। तुम्हारे मृत्युलोक जाने से एक-दो आशाएँ नहीं, आशाओं की पोटली ही रिक्त हो गई है, अर्थात् अनगिनत आशाएँ एक तुम्हारे न रहने से बुझ गई हैं। धरती पर सोए यह तुम नहीं, बल्कि समस्त भूमंडल है। इस प्रसंग में स्वयंभू ने अलंकारों के सर्वथा नवीन प्रयोग से रावण की मृत्यु पर व्यथित विभीषण के हृदय की दारूण दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

ज- धुलि धूसरेण वर-मुक्क सरेण तिणा मुरारिणा

कीला-रस कसेण, गोवालय-गोवी हियय-हारिणा

रंगतेण रमत रमंते, मंथउ धरिउ भमंत अणंते

मंदिरउ तोडिवि आ वट्टिउँ, अद्ध-विरोलिउ दहिउँ पलोट्टिउँ

कावि गोवि गोविंदहु लग्गी, एण महारी मंथणि भग्गी

एयहि मोल्लु देउ आलिंगणु, णं तो मा मेल्लहु मे प्रंगणु

कहिवि गोविहि पंडरू चेउऊँ, हरि-तणु तेएँ जायऊँ कालऊँ

म जलेण काईं पक्खालइ। - (पुष्पदन्त- 'महापुराण')

शब्दार्थः- मुरारिणा- श्रीकृष्ण, कीला-रस - क्रीडा़ रस, गोवालय- गोपालक, गोवी-गोपी, मंथउ- मथानी, मंदिरउ-मटकी, अद्ध-विरोलिउ- आधा बिलोया हुआ, पलोट्टिउँ पलट देना, मोल्लु - मूल्य, चेउऊँ, तणु- तन, पक्खालइ- पखारना, धोना

अर्थ- प्रस्तुत पंक्तियाँ जैन कवि पुष्पदन्त के 'महापुराण' नाम प्रबंधकाव्य से उद्धत है। स्वयंभू ने अपने काव्य में रामकथा का वर्णन किया है, जबकि पुष्पदन्त ने अपने काव्य में कृष्णलीला का भी वर्णन किया है। उपर्युक्त पंक्तियों में कृष्ण की बाल-लीली का वर्णन किया गया है।

कृष्ण-चरित्र में नछखट बालकृष्ण की लीलाओं ने कवियों को सदा से आकृष्ट किया है। सूरदास के कृष्ण की भांति पुष्पदन्त के कृष्ण भी नटखट हैं। वे लिखते हैं कि धूल-धूसरित श्रीकृष्ण कई प्रकार की क्रीड़ाओं से रस उत्पन्न करने वाले है। वे गोपालकों और गोपियों के हृदय को हर लेते हैं। अपनी लीलाओं से उन्होंने गोपालकों और गोपियों का मन जीत लिया है। बाल-कृष्ण आँगन में दौड़ते फिरते हैं, कभी मथानी लेकर दौड़ जाते हैं तो कभी दही की मटकी तोड़ देते हैं। ऐसा ही कभी वे आधा बिलोया हुआ दही लुढ़का देते हैं। जब गोपियाँ उन्हें पकड़ लेती हैं तो टूटी हुई मथानी और गिराए हुए दूध-दही का मूल्य उनसे उनके आलिंगन के रूप में माँगती हैं। श्याम वर्ण कृष्ण जब उनका आलिंगन करते हैं तो उनकी पीली चोली कृष्ण के तन से लगकर काली पड़ जाती है। पुष्पदन्त कहते हैं कि भोली गापियाँ अपनी चोली के श्यामपन को दूर करने के लिए उस जल से धोती हैं।

परम्परा से ही श्रीकृष्ण का बाल रूप अपने नटखटपन और लीलाओं के लिए कवियों में लोकप्रिय रहा है। पुष्पदन्त ने भी इसी रूप में श्रीकृष्ण का चरित्रांकन किया है।

झ- बहु सिक्खहिं सहियउ डंम धारि, धरि-धरि हिडंइ हुँकार कारि

सिर टोप्पी दिण्ण रवण्ण-वण्ण, सा झंपवि संठिय दोण्णि कण

अंगुल ु-तीस परिमाणु दंडु, हत्थें उफ्फालिवि गहइ चंडु

गलि जोगवट्टु सज्जिउ विचिन्तु, पाउडिय जम्मु पइदिण्णु दन्तु

तड-तड-तड तड-तड तडिय सिंगु, सिंगग्गु छेदि किउतेण चंगु।

शब्दार्थः- सिक्खहिं- शिष्यों, डंभधारि- दंभी, रवण्ण -वण्ण- अनके रंगों की, उफ्फालिवि-उछालता हुआ, दु-तीस बत्तीस, सिंगू-सींग का बना बाजा

अर्थ- उपर्युक्त पंक्तियाँ पुष्पदन्त के चरितकाव्य 'जसहरचरिउ' से उद्धत हैं। 'चसहरचरिउ' में कापालिक मत पर जैन धर्म की विजय प्रतिपादित की गई है। इन पंक्तियों में पुष्पदन्त ने एक कापालिक का सजीव चित्र खींचा है।

कापालिक के हाव-भाव और वेश-भूषा का वर्णन करते हुए पुष्पदन्त लिखते हैं कि वह कापालिक अपने बहुत से शिष्यों के साथ दंभपूर्वक भ्रमण कर रहा था। वह प्रत्येक घर में जाने के बाद जोर की हुँकार भरता था। उसने दोनों कानों को ँक देने वाली रंग-बिरंगी टोपी पहनी हुई थी। उसके हाथ में बत्तीस अंगुल लम्बा डंडा था, जिसे उछालते हुए वह चल रहा था। वह गले में विचित्र प्रकार के योगपट्ट धारण किए हुए था। वह गली-गली में दंभपूर्ण ंग से चंग खड़काते हुए और सिंगा बजाते हुए घूम रहा था।

ञ- गयं णिफफलं ताम सत्वं विणज्जं।

हुवं अम्ह गोतम्मि-लज्जा-वणिज्जं।।

ण ज ण विण मि ण गेहं।

ण धम्मं ण कम्मं ण जियं ण देहं।।

ण पु कलण इट्ठं ण दिट्ठं।

गयं गयउरे दूर-देसे पइट्ठं।। (धनपाल- 'भविस्सत कहा')

शब्दार्थ- णिफफलं- निष्फल, वणिज्जं-व्यापार, ज-यश, वि-धन, ण इट्ठं ण दिट्णं- न यहाँ का न वहाँ का

अर्थ- प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि धनपाल द्वारा रचित कथाकाव्य 'भविस्सत कहा' से उद्धत हैं। एक लोकप्रचलित प्रेमकथा पर आधारित अपनी इस रचना में धनपाल ने एक वणिकपुत्र भविष्य की भाग्यगाथा का वर्णन किया है। भविष्य बार-बार अपने सौतेले भाई द्वारा छला जाता है और अन्ततः जैन धर्म को स्वीकार करके सुखी होता है।

उपर्युक्त पंक्तियों में धनपाल वणिकपुत्र भविष्य के तिलकद्वाप में अकेले रहने का वर्णन करते हैं। भविष्य का सौतेला भाई बंधुद जब उसे तिलकद्वीप में अकेला छोड़कर चला जाता हे तो आहत भविष्यद अपने जीवन के विषय में सोचने लगता है। वही सोचता हे कि उसने कितने हौसले और आशाओं के साथ घर छोडा था, पर अब उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर चुका है। कवि ने यहाँ उसकी इसी मन: स्थिति को व्यक्त किया है। भविष्य सोचता है कि मैं व्यापार के उद्धेश्य से घर से निकला था, पर अन्त में सब निष्फल ही रहा। मैं व्यापार कर पाने में तो असफल रहा ही, साथ ही न यश मिला और न धन की प्राप्ति हो सकी । न किसी को मित्र बनाया और न ही कोई घर बना पाया, न धर्म की प्राप्ति हुई और न ही कोई काम किया। मेरे शरीर और प्राण भी थक चुके हैं। न पुत्र प्राप्त कर पाया। निष्फल भटकता हुआ मैं न यहाँ का रहा न वहाँ का। इस दशा में मैं घर से इतनी दूर निकल

आया हूँ कि यहाँ कोई भी नहीं रहता । मैं ऐसे प्रदेश में प्रवेश कर चुका हूँ जो पूरी तरह निर्जन है। धनपाल ने इस प्रकार चिंतित भविष्य के आत्मालाप का प्रामाणिक चित्रण किया है।

ट- सुरहि-गंध-परिमलं पसुणएहि फंसए

सो ण तित्थु जो करेण गिण्हिउण बासए।

पिक्स सालि-धण्णयं पणट्ठंयम्मि ताणए

सो ण तित्थु जो धरम्मि लेवि तं पराणए।

सर वरम्मि पंकयाइं भ मर-भमर-कदिरे

सो ण तित्थु जो खुडेवि णेइ ताइं मंदिरें

हत्थ-गिज्झ वर-भलाइ विंभएण पिक्खए

केण-कारणेण को वि तोडिउं ण भक्खए। (धनपाल- 'भविस्सत कहा')

शब्दार्थ- सुरहि गंध- सुरभि गंध, पसुण-प्रसून (फूल), करेण- हाथ, गिण्हिउण- सूँघने वाला, सालि धण्णयं- पका हुए धान, पणट्ठंयम्मि - बिखरना, पंकयाइं- कमल, खुडेवि-तोड़ने वाला, पिक्खए-पका हुआ, भक्खए-खाने वाला

अर्थ- धनपाल ने इन पंक्तियों में वणिकपुत्र भविष्य के तिलकद्वीप पहुँचने के बाद की स्थिति को वर्णित किया है। यह एक ऐसी जगह है जहाँ सुंदर प्राकृतिक वैभव है; फल-फूल, धन-धान्य सब कुछ है लेकिन यह नगरी जनविहीन है।

ऐसे नगर में पहुँचने के बाद भविष्य सोचता है कि यह कैसी विचित्र जगह है जहाँ के फूल सुगंध से भरे स्पर्श कर रहे हैं, लेकिन उन्हें हाथ में लेकर सूँघने वाला कोई नहीं है। खेतों में धान की फसल पकी हई है, उसके दाने बिखर रहे हैं, लेकिन उन्हें घर ले जाकर उनका उपभोग करने वाला कोई नहीं है। सरोवर कमलों से भरे पड़े हैं, उन पर भौंरे मँडरा रहें हैं लेकिन उन्हें तोड़कर मंदिर में च ़ने वाला कोई नहीं है। फलों के भार से वृक्ष स्वयं ही नीचे झुक आए हैं, किन्तु आश्चर्य कि उन्हें तोड़कर खाने वाला कोई नहीं है।

अभ्यास प्रश्न

1. सुमेलित करें-

स्वयंभू- भविस्सत कहा

पुष्पदन्त- पउमचरिउ

धनपाल- महापुराण

पुष्पदन्तु- जसहरचरिउ

2. सत्य/असत्य बताएँ-

क- 'पउमचरिउ' में वणिकपुत्र की कथा कही गई है।

ख- 'महापुराण' में कृष्णलीला का वर्णन भी मिलता है।

ग- 'जसहरचरिउ' में कापालिक मत पर जैन धर्म की विजय प्रतिपादित की गई है।

ध- 'भविस्सत कहा' में रामकथा वर्णित है।

14.5 आदिकालीन जैन मुक्तककाव्यः चयनित पाठ

क- जोइन्दु- 'परमात्म प्रकाश' और 'योगसार'

जो जाया झाणगिग्गयए, कम्म कलंक डहेवि।

णिच्च-णिरंजणा-णाणमय, ते परमप्प णवेवि।।

शब्दार्थ- झाणग्गियए- ध्यान की अग्नि, णिच्च- नित्य, णाणमय- ज्ञानमय, परमप्प- परमात्मा

अर्थ - जोइन्दु कहते हैं कि जो ध्यानग्नि से अपने कर्मों के कलंक को जलाकर नित्य, निरंजन, और ज्ञानमय हो गए हैं उन परमात्मा को मैं नमन करता हूँ।

रूवि पयंगा सद्दि मय, गय फांसहिं णांसति।

अलि-उल गंधहि मच्छ रसि, किमि अणुराउ करंति।।

शब्दार्थ- रूवि- रूप, पयंगा- पतंगा, सद्दि- शब्द, अलि- भौंरा, अणुराउ- अनुराग

अर्थ- कवि जोइन्दु कहते हैं कि रूप के मोह में पतंगे, शब्द के मोह में मृग, सुगंध के मोह में भौंरों का दल और रसना के मोह में पड़कर मछली नष्ट हो जाती हैं। यह जानकर भी कि लोभ नाश का कारण है, लोग विषयों के प्रति अनुराग बनाए रखते हैं। कवि ने यहाँ विषयासक्ति का निषेध किया है।

पंचहँ णायुकु वसिकरहु, जेंण होंति वसि अण्ण।

मूल विणट्ठइ तरूवरहँ, अवसइँ सुक्कहिं पण्णु।।

शब्दार्थ- णायुकु- नायक, स्वामी; अण्ण-अन्य, विणट्ठइ- विनाश सुक्कहिं- सूखना, पण्णु- पत्त

अर्थ- जोइन्दु कहते हैं कि मन को वश में करना ही सर्वाधिक आवश्यक है। उनके अनुसार पाँचों इंन्द्रियों के नायक या स्वामी मन को वश में करना चाहिए, फिर तो इन्द्रियाँ स्वयं ही वश में हो जाएँगी। वे एक उदाहरण के द्वारा अपनी बात समझाते हैं कि किसी पेड़ की जड़ काट देने पर उसके पत्ते अपने-आप सूख जाते हैं। जड़ काट देने के बाद प्रत्येक पत्ते को काटने का व्यथ्र परिश्रम नहीं करता पड़ता। उसी प्रकार अलग-अलग इद्रियों को नहीं, बल्कि मन को वश में करना चाहिए।

संता विसय जु परिहरइ, बलि किज्जउँ हउँ तासु।

सो दइवेण कि मुँडियउ सीसु खडिल्लउ जासु।।

शब्दार्थ- परिहरइ- छोड़ना, दइवेण- भाग्य से

अर्थ- जोइन्दु कहते हैं कि जो विद्यमान विषयों को छोड़ देता है उसकी मैं बलि जाता हूँ, अर्थात् उसके प्रति श्रद्धावनत हूँ। लेकिन जिसने सिर मुँडा रखा है वह तो भाग्य से ही मुँडा हुआ है। वह सच्चे अर्थों में संन्यासी नहीं कहा जा सकता । जोइन्दु का आश्य यह है कि विषयों को छोड़ देने वाला व्यक्ति की वास्तव में संन्यासी है, न कि धर्म के बाह्याचार-मात्र मानने वाला व्यक्ति। मुंडित व्यक्ति कहने को ही संन्यासी है, उसे धर्म के मूल तत्व का भी ज्ञान को आवश्यक नहीं।

जेहउ मण विसयहँ रमइ, तिमु जइ अप्प मुणेइ।
जोइउ भणइ हो जोइयहु लहु णिब्बाणु लहेई।।

शब्दार्थ- अप्प- आत्मा, मुणेइ- मनन करना, णिब्बाणु- निर्वाण

अर्थ- इन पंक्तियों में जोइन्दु योगियों से कहते हैं कि मन जिस प्रकार विषयों में रमता है उसी प्रकार यदि आत्मा का मनन करने में रम जाए तो जीव निर्वाण को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार वे विषयों के प्रति आसक्ति को त्यागकर आत्मज्ञान की प्राप्ति पर बल देते हैं।

सो सिउ-संकरू विण्हु सो, सो रूद्दवि से बुद्ध।
सो जिणु ईसरू बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्ध।।

शब्दार्थ- सिउ-संकरू- शिवशंकर, विण्हु- विष्णु, रूद्दवि- रूद्र, बंभु- ब्रह्मा

अर्थ- जोइन्दु ने इन पंक्तियों में परमतत्व की सर्वव्यापकता को दर्शाया है। वे कहते हैं कि वही शिवशंकर है, वही विष्णु, वही रूद्र और वही बुद्ध हैं वही जिन देवता, वही ब्रह्मा, वही अनंत और वही सिद्ध हैं कहने का आशय यह है कि परमतत्व को किसी भी रूप में जाना जाय उससे कोई अन्तर

नहीं पड़ता। वह एक ही तत्व है जो भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। आवश्यकता है उसे पहचानने, जानने-समझने की।

ख- मुनि रामसिंह-'पाहुड़ दोहा'

बहुयइँ पि यइँ मूढ़, पर तालु सुक्कई जेण।
एक्कुजि अक्खरू तं प हु, सिवपुरी गम्मई जेण।।

शब्दार्थ- मूढ़- मूर्ख, सुक्कई- सूखना, गम्मई- पहुँचना

अर्थ- जैन कवि मुनि रामसिंह ने इन पंक्तियों में कोरे अक्षरज्ञान का विरोध किया है। वे शास्त्रज्ञान की अपेक्षा अनुभव ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं। अक्षरज्ञान के प्रेमियों को संबोधित करते हुए वे व्यंग्यसिक्त स्वर में कहते हैं कि मूर्ख, तूने बहुत पढ़ा है और इसी कारण तुम्हारा तालू सूखता है। इतनी अधिक पढ़ाई करने से अच्छा है कि वह एक मात्र अक्षर पढ़ो, जिससे शिवपुरी पहुँचा जा सकता है।

हऊँ सुगुणी पिउ णिग्गुणहु, णिल्लक्खणु णीसंगु।
एकहि अंगि बसंतयहुँ, मिलिउ ण अंगहिं अंगु।।

शब्दार्थ- सुगुणी- सगुण, णिग्गुणहु- निर्गुण

अर्थ- इन पंक्तियों में मुनि राम सिंह ने सगुण-निगुण की भ्रांति पर विचार किया है। वे कहते हैं कि मैं सगुणी हूँ और प्रिय निर्गुण, निर्लक्षण तथा निसंग। एक ही अंग में बसकर भी अंग से अंग नही मिल पाया वस्तुतः सगुण और निर्गुण एक-दूसरे के विरोधी नहीं, ये तो मात्र अज्ञानवश विरोधी दिखते हैं। निर्गुण अपनी अभिव्यक्ति के लिए सगुण का सहारा लेता है और सगुण के भीतर ही निर्गुण समाया हुआ है।

मूलु छाँड़ि जो डाल चडि, कहँ तह जोयाभायसि।
चीरूणु वुणणहँ जाइ बढ़, विणु उट्टियइँ कपासि।।

शब्दार्थ- जोयाभायसि- योगाभ्यास, चीरूणु- कपडा, वुणणहं- बुनना, उट्टियइँ- ओटना

अर्थ- मुनिराम सिंह कहते हैं कि जो मूल यानि जड़ को छोड़कर सीधे डाल पर चढ़ने का प्रयास करता है उसके लिए योगाभ्यास कहाँ ? वे तर्क देते हैं कि भला कपास को ओटे बिना भी कहीं कपड़ा बुना जाता है। वस्तुतः उनकी सलाह यह है कि योगाभ्यास में क्रम बद्ध ढ़ग से ही आगे बढ़ना चाहिए ओर धैर्य से काम लेना चाहिए।

छह-दंसण धंधइ पाडिय, मणहँ ण फिट्टिव भँति।
एक्कु देउ छह भेउ किउ, तेण ण मोक्खहं जंति।।

शब्दार्थ- दंसण- दर्शन, भँति- भ्रांति, देउ- देवता, भेउ-भेद, मोक्खहं - मोक्ष

अर्थ- मुनि राम सिंह की इन पंक्तियों में शास्त्रों को विरोध है। वे कहते हैं कि छह दर्शनों के धंधे में पड़कर भी मन की भ्रांति नहीं मिटी। एक देवता के छह भेद कर दिए, इसलिए मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकी। यह वास्तव में भारतीय परम्परा के 'पड्दर्शन' का विरोध है।

ग- देवसेन- 'सावयधम्म दोहा'

काइँ बहुत्तइँ जंपिअइँ, जं अप्पणु पडिकूलु।

काइँ नि परहु ण तं करहि, एह जु धम्महु मूलु॥

अर्थ- जैन कवि देवसेन कहते हैं कि बहुत कल्पना करने से क्या, जो अपने प्रतिकूल हो उसे दूसरों के प्रति कभी नहीं करना चाहिए। यही धर्म का मूल है।

सत्थसएण वियाणियहँ धम्मु ण च इ मणे वि।
दिणयर सउ जइ उग्गमइ, घूयडु अंधड़ तोवि॥

अर्थ- देवसेन कहते हैं कि विपरीत ज्ञान वाले व्यक्ति का मन सैकड़ों शास्त्रों को जान लेने के बाद भी धर्म की राह पर नहीं चल सकता। वे उदाहरण देते हैं कि यदि सौ सूर्य भी उग जाएँ तब भी उल्लू के लिए अंधेरा बना ही रहता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. सुमेलित करें-

जोइन्दु	-	परमात्म प्रकाश
मुनिराम सिंह	-	योगसार
देवसेन	-	सावयधम्म दोहा
जोइन्दु	-	पाहुड़ दोहा

14.6 सारांश

इस इकाई का पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि आदिकालीन जैन साहित्य प्रबंधकाव्य तथा मुक्तककाव्य के रूप में उपलब्ध होता है। स्वयंभू, पुष्पदन्त तथा धनपाल आदि प्रबंधकाव्य रचयिता जैन कवियों ने मानव जीवन की विभिन्न भावदशाओं की मार्मिक एवं कलात्मक अभिव्यंजना की है। जबकि जोइन्दु, मुनि रामसिंह, देवसेन आदि जैन कवियों ने अपनी

मुक्तक रचनाओं में सिद्ध-नाथ कवियों के समान धार्मिक बाह्याचार, शास्त्रज्ञान आदि का खंडन करते हुए आत्मज्ञान प्राप्त करने पर बल दिया है।

14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क- असत्य ख- असत्य ग- सत्य

2. 1. स्वयंभू - पउमचरिउ

   पुष्पदन् - महापुराण

   धनपाल - भविस्सत कहा

   पुष्पदन्त - जसहरचरिउ

2. क- असत्य ख- सत्य ग- सत्य घ- असत्य

3. जोइन्दु- परमात्म प्रकाश

   मुनि राम सिंह- पाहुड़ दोहा

   देवसेन- सावयधम्म दोहा

   जोइन्दु- योगसार

14.8 संदर्भ गन्थ सूची

1. 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान' डॉ0 नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971

2. 'हिन्दी काव्य-धारा', राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, 1945

14.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 20014

2. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सवंत् 2058 वि0

3. 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', डॉ0 रामकुमारी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007

14.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. आदिकालीन जैन प्रबंधकाव्य तथा मुक्तककाव्य की प्रवृत्तिगत विशेषताओं पर सोदाहरण प्रकाश डालें।

इकाई 15 विद्यापतिः परिचय एवं पाठ

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 कवि -परिचय जीवन -परिचय
15.4 रचनाकार व्यक्तित्व
15.5 विद्यापति की रचनाएँ
15.6 सम्प्रदाय
15.7 काव्यपाठ तथा संदर्भ सहित व्याख्या
15.8 सारांश
15.9 शब्दावली
15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
15.12 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
15.13 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आप आदिकाल की पृष्ठभूमि से परिचित हो चुके हैं। आपने आदिकाल के प्रमुख कवियों का समग्र अध्ययन कर लिया है। आप जानते ही हैं कि रचनाकार अपने युग की प्रवृत्तियों से प्रभावित होता है तथा लोक से बहुत कुछ ग्रहण करता है। वह लोक के जितना ही निकट होता है, उतना ही लोक को प्रभावित भी करता है। प्रस्तुत इकाई में संक्रांत काल (आदिकाल एवं भक्तिकाल के संधिकाल) के ऐसे ही एक विशिष्ट रचनाकार विद्यापति के जीवन, रचनाकार व्यक्तित्व और कृतित्व का विश्लेषणात्मक परिचय दिया गया है। तथा कुछ अंशों की व्याख्या की गयी है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप विद्यापति के रचनाकार व्यक्तित्व और कृतित्व का विश्लेषणात्मक परिचय दे सकेंगे। विद्यापति के काव्य का अध्ययन कर उसका रसास्वादन करेंगे तथा व्याख्या कर सकेंगे।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :-

- हिन्दी साहित्य के आदिकाल एवं भक्तिकाल के संधिकाल के एक विशिष्ट रचनाकार के रूप में विद्यापति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विश्लेषण करेंगे।
- हिन्दी साहित्य में विद्यापति का स्थान निर्धारित करेंगे।
- विद्यापति की लोकचेतना को अनुभूत करेंगे।
- विद्यापति के काव्य का रसास्वादन कर सकेंगे

15.3 कवि परिचय

हिन्दी साहित्य के अभिनव जयदेव के नाम से प्रख्यात विद्यापति का जन्म मिथिला के बिसपी नामक गांव में हुआ था। इनका जन्म 1352 में हुआ माना जाता है। इनकी माता का नाम हंसिनी देवी और पिता का नाम गणपति ठाकुर था। इनके पिता राजा शिवसिंह के सभासद थे। विद्यापति के पदों में यत्र-तत्र राजा शिवसिंह और रानी लखमा देवी का जिक्र आया है। बहुत सारे अन्य पुराने रचनाकारों की भांति विद्यापति के जीवन के संदर्भ में भी ऐतिहासिक प्रमाणों पर मतभेद मिलते हैं। इस संदर्भ में उनकी रचनाओं को आधार बनाया गया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'सम्भवतः इनका जन्म 1368ई. में हुआ है कीर्तिलता में इन्होंने अपने को कीर्तिसिंह का लेखन-कवि कहा है जो सम्भवतः उन्हें कीर्तिसिंह का बाल्य -बंधु सिद्ध करता है। इस हिसाब से इनका जन्म समय कुछ और पहले होना चाहिये। विद्वानों का अनुमान है कि इस हिसाब से इनका जन्म 1360 ई. हुआ

होगा। विद्यापति मिथिला के बिसपी नामक गांव के रहने वाले थे। ये मिथिला के राजा कीर्तिसिंह और शिव सिंह के दरबारी कवि रहे।'

श्री नगेन्द्र नाथ गुप्त इनका जन्म 1358 ई. बताते हैं, महामहोपाध्याय पं0 हरप्रसाद शास्त्री1357 ई., श्री रामवृक्ष बेनीपुरी 1350ई. और डा. बाबूराम सक्सेना1357 ई. से 1359 ई.के बीच किसी भी समय। श्री रामनाथ झा, श्री शिवनंदन ठाकुर एवं डा. जयकांत मिश्र आदि 1360 ई. में विद्यापति का जन्म मानते हैं। जन्मकाल की ही भांति इनका मृत्युकाल भी अनुमान का विषय बना हुआ है। राजा शिवसिंह विद्यापति के परम मित्र और हितैषी थे। उनकी मृत्यु के बीस वर्ष बाद कवि ने राजा को स्वप्न में देखा यह उल्लेख **सपन दखल हम सिवसिंध भूप** कवि की ही रचना में मिलता है। विद्यापति को अपनी मृत्यु का पूर्वज्ञान हो गया था। उन्हें अपने पूर्वज,गुरूजन स्वप्न में दिखाई देने लगे थे- **बहुत गुरुजन-प्राचीन।/ आव मलहु हम आयु विहीन।।** अंत निकट देख वे गंगा लाभ को चले गए और बनारस में उनका देहावसान कार्तिक धवल त्रयोदशी को सन १४४० ई. में हुआ।यह उन्हीं की इन पंक्तियों से पता चलता है। विद्यापतिक आयु अवसान। कार्तिक धवल त्रयोदसी जान।।प्राचीन काल में हमारे यहाँ परम्परा रही है कि लोग अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वानप्रस्थ आश्रम में चले जाया करते थे अर्थात् सांसारिक जीवन को छोड़कर प्रभुभक्ति में लीन हो जाते थे और काशी तथा गंगावास करते थे। इसी परम्परा का निर्वाह विद्यापति ने भी किया है।

(क) महाकवि विद्यापति ठाकुर के पारिवारिक जीवन का कोई स्वलिखित प्रमाण नहीं है, किन्तु मिथिला के उतेढ़पोथी से ज्ञात होता है कि इनके दो विवाह हुए थे। प्रथम पत्नी से नरपति और हरपति नामक दो पुत्र हुए थे और दूसरी पत्नी से एक पुत्र वाचस्पति ठाकुर तथा एक पुत्री का जन्म हुआ था। लोगों का एक विचार है, संभवत: 'दुल्लहि' इनकी पुत्री थी जिसका जिक्र अन्तिम दिनों में रचित इनके एक गीत में है। नरपति ठाकुर ज्योतिष शास्त्र के परम विद्वान थे। इन्होंने ज्योतिष सम्बन्धी एक ग्रन्थ दैवज्ञ आंधव लिखा भी था। मैथिल भाषा में इनकी कुछ कवितायें भी उपलब्ध हैं। कहा जाता है कि इनकी पुत्रवधू चन्द्रकांता भी अच्छी कविता करती थी।

विद्यापति ने ओईनवार राजवंश के अनेक राजाओं के साथ रहकर अपनी विद्वत्ता एवं दूरदर्शिता से उनका मार्गदर्शन किया। जिन राजाओं ने महाकवि विद्यापति को अपने यहाँ सम्मान के साथ रखा उनमें प्रमुख है:

(क) देवसिंह (ख) कीर्तिसिंह (ग) शिवसिंह (घ) पद्मसिंह (च) नरसिंह (छ) धीरसिंह (ज) भैरवसिंह और (झ) चन्द्रसिंह।

महाकवि इसी राजवंश की तीन रानियों के सलाहकार भी रहे। ये रानियाँ है:

(ख) लखिमादेवी (ख) विश्वासदेवी (ग) धीरमतिदेवी।

(ग) स्पष्ट है कि विद्यापति को न केवल वाग्देवी का वरदान प्राप्त था वरन् राज्याश्रय और लोकप्रियता भी मिली। ''विद्यापति उन इने–गिने सौभाग्यशाली व्यक्तियों में से थे जिन्हें कवित्वशक्ति, प्रतिष्ठा, विद्वत्ता और सांसारिक वैभव युगपत् प्राप्त होते हैं। उनकी पदावली में उनके कई उपनाम हैं।जैसे अभिनव जयदेव, कविराज, कविकण्ठहार, कविरंजन, कविशेखर,दशावधान, राजपंडित आदि।'' इनका मानना है कि उस युग में उपाधि या उपनाम राजाओं से ही प्राप्त होते थे। विद्यापति को कवि कोकिल अथवा मैथिल कोकिल के नाम से भी अभिहित किया गया है।

बोध प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

क. विद्यापति को ..... के नाम से भी अभिहित किया गया है। (वासंती कोकिल / मैथिल कोकिल)

ख. विद्यापति मिथिला के ..... नामक गांव के रहने वाले थे। (बिसपी /ईसपी)

ग. विद्यापति ..... के राजा कीर्तिसिंह और शिव सिंह के दरबारी कवि रहे।'। (वैशाली / मिथिला)

2. एक पंक्ति में उत्तर दीजिए

अ. विद्यापति ओईनवार राजवंश की किन रानियों के सलाहकार रहे हैं?

.....

ब. विद्यापति के पाँच उपनाम बताइए।

.....

.....

स. विद्यापति की पुत्रवधू के बारे में बताइए।

.....

.....

15.4 रचनाकार व्यक्तित्व

ये अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे । इनकी अधिकांश रचनाएं अवहट्ठ एवं संस्कृत में हैं। कीर्तिलता एवं 'कीर्तिपताका ' इनकी अवहट्ठ रचनायें हैं जिनमें इनके आश्रयदाता राजा शिवसिंह की प्रशंसा है। इनकी 'पदावली की रचना मैथिली में हुई है। कहा जाता है इन्होंने बड़ी लम्बी उम्र पाई थी, कई राजघरानों के हेर-फेर अपनी आंखों से देखे थे। बूढ़े राजाओं, बूढ़ी रानियों से लेकर अविकसित राजकुमारों व राजकुमारियों तक से कवि का अति निकट का सम्पर्क रहा। राजपुरुषों के कूटनीतिक दांव-पेंच उन्हें भली-भांति मालूम थे।उन्होने संस्कृत के माध्यम से दसियों नीतिग्रन्थ और शिक्षाग्रंथ भी तैयार किए थे। एक राजा पड़ोसी देश के राजा को किस प्रकार पत्र लिखेगा,एक सेनापति एक अधिकार-प्राप्त युवराज को किस तरह अपनी बात सूचित करेगा, दासों के लिए 'मुक्ति-पत्र' किस प्रकार लिखे जाएंगे-इस प्रकार के व्यवहारिक पत्र -लेखन के दर्जनों नमूने अपनी पुस्तक 'लिखनावली' में हमें दे गए हैं। राजकुमारों की नीति-शिक्षा के लिए समकालीन ऐतिहासिक-सामाजिक पात्रों के आधार पर नीति-शिक्षा की पुस्तक तैयार की थी। एक किंवदन्ती के अनुसार विद्यापति बाल्यावस्था से ही तीव्र -बुद्धि और कवि स्वभाव वाले थे। जब ये मात्र आठ वर्ष के थे तब एक बार अपने पिता के साथ राजा शिवसिंह के दरबार में गए वहां राजा शिवसिंह के कहने पर उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियों की रचना की - पोखरि रजोखरि अरु सब पोखरा ।

राजा शिवसिंह अरु सब छोकरा।।

मिथिला में इनके लिखे पदों को घर घर में हर मौके पर, हर शुभ कार्यों में गाया जाता है, चाहे उपनयन संस्कार हों या विवाह। शिव स्तुति और भगवती स्तुति तो मिथिला के हर घर में बड़े ही भाव भक्ति से गायी जाती है। :

जय जय भैरवी असुर-भयाउनी
पशुपति- भामिनी माया
सहज सुमति बर दिय हे गोसाउनी
अनुगति गति तुअ पाया। ।

शास्त्र और लोक दोनों ही संसार में इनका असाधारण अधिकार था। कर्मकांड हो या धर्म दर्शन हो या न्याय, सौन्दर्य शास्त्र हो या भक्ति रचना, विरह व्यथा हो या अभिसार, राजा का महिमा गान हो या सामान्य जनता के लिए गया में पिण्डदान, सभी क्षेत्रों में विद्यापति अपनी कालजयी रचनाओं की बदौलत जाने जाते हैं।

विद्यापति का व्यक्तित्व नाना प्रकार की परस्पर विरोधी विचारधाराओं का साक्ष्य है। ये दरबारी होते हुए भी जनकवि हैं ,श्रृंगारिक होते हुए भी भक्त हैं,शैव या शाक्त या वैष्णव कुछ भी होते हुए भी वे धर्म-निरपेक्ष हैं ,संस्कारी ब्राह्मण वंश में पैदा होते हुए भी वे मर्यादावादी या रूढ़िसंत्रस्त नहीं हैं। कवि

कोकिल की कोमलकान्त पदावली वैयक्तिकता, भावात्मकता, भावाभिव्यक्तिगत स्वाभाविकता, संगीतात्मकता तथा भाषा की सुकुमारता एवं सरलता का अद्भुत प्रस्तुतीकरण करती है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से इनकी पदावली अगर एक तरफ इनको रससिद्ध, शिष्ट एवं मर्यादित श्रृंगारी कवि के रुप में प्रेमोपासक, सौन्दर्य पारसी तथा पाठक के हृदय को आनन्द विभोर कर देने वाले माधुर्य का स्रष्टा सिद्ध करती है तो दूसरी ओर इन्हें भक्त कवि के रुप में शास्त्रीय मार्ग एवं लोकमार्ग दोनों में सामंजस्य उपस्थित करने वाला धर्म एवं इष्टदेव के प्रति कवि का समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय देने वाला एक विशिष्ट भक्त हृदय का चित्र उपस्थित करती है साथ ही साथ लोकाचार से सम्बद्ध व्यावहारिक पद प्रणेता के रुप में इनको मिथिला के सांस्कृतिक जीवन का कुशल अध्येता प्रमाणित करती है। इतना ही नहीं, यह पदावली इनके जीवन्त व्यक्तित्व की भोगी हुई अनुभूति का साक्षी बन समाज की कुरीतियों, आर्थिक वैषम्य, समाज में मौजूद अन्धविश्वास, भूत-प्रेत, जादू-टोना, आदि का उद्घाटन भी करती है। इसके अलावा पदावली का भाषा-सौष्ठव, लालित्य, पदविन्यास, रसात्मकता, प्रभावशाली अलंकार योजना, सुकुमार भाव व्यंजना एवं सुमधुर संगीत आदि विशेषताओं ने इसको एक उत्तम काव्यकृति के रुप में भी प्रतिष्ठित किया है। (विकिपीडिया से साभार) विद्यापति की पदावली में अधिकांश पद राधा-कृष्ण ही की प्रेमलीलाओं से सम्बन्ध रखते हैं।

15.5 पुस्तक परिचय

विद्यापति का संस्कृत, अपभ्रंश तथा लोकभाषा मैथिली (हिन्दी की उपभाषा) पर पूर्ण अधिकार था। इन्होंने संस्कृत में 12 पुस्तकों भू-परिक्रमा, पुरुषा परीक्षा, लिखनावली,शैव सर्वस्वसार, गंगावाक्यावली, विभागसार, दानवाक्यावली, दुर्गा भक्ति तरंगिनी, गयापत्तलक, वर्षकृत्य, पांडव-विजय और मणिमंजरी की रचना की है। कीर्तिपताका संस्कृत और अपभ्रंश दोनों भाषाओं में है। पदावली मैथिली भाषा में है। पदावली ने इन्हें सर्वाधिक लोकप्रिय बनाया। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी इन्होंने 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' कहकर लोकभाषा को आदर दिया। विद्यापति ने कहा- सक्कअ वाणी अहुअ न भावइ। पाउअ रस को मम्म न पावइ।।

देसिल बअना सब जन मिट्ठा। तैं तैंसन जम्पओ अवहट्ठा।।

जैसाकि सभी प्रारम्भिक रचनाकारों के साथ दिखाई देता है, विद्यापति की रचनाओं के साथ भी उपलब्धता और प्रामाणिकता के प्रश्न जुड़े हैं।

कीर्तिलता : यह विद्यापति का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। सौभाग्यवश विद्यापति की कीर्तिलता में कोई नहीं हो सका है। यद्यपि यह पुस्तक भी आश्रयदाता समसामयिक राजा की कीर्ति गाने के उद्देश्य से ही लिखी गयी है और कविजनोचित अलंकृत भाषा में रची गयी है, तथापि इसमें ऐतिहासिक तत्व कल्पित घटनाओं अथवा सम्भावनाओं के द्वारा धूमिल नहीं हो गया है।उस काल के मुसलमानों का

,हिन्दुओं का,सामन्तों का , शहरों का,लड़ाइयों का, सेना के सिपाहियों का इतना जीवन्त और यथार्थ चित्रण अन्यत्र मिलना कठिन है। बहुत कम स्थलों पर न केवल सम्भावनाओं का वृहदाकार बनाया है। कीर्तिसिंह का वीरत्व भी स्पष्ट हो जाता है और जौनपुर के सुलतान फीरोजशाह के सामने बैठकर अति नम्र भक्तिमान रूप भी स्पष्ट हुआ है। इन चित्रणों में कवि ने कीर्तिसिंह के द्वितीय रूप को दबाने या उच्चतर रूप में चित्रित करने का प्रयास नहीं किया, बल्कि ऐतिहासिक तथ्य को इस भाँति रखने का प्रयत्न किया है कि जिस स्थान पर कथानायक झुकता है, वहाँ भी वह पाठक की सहानुभूति और परिशंसन का पात्र बना रहता है।

कीर्तिपताका: यह पुस्तक कीर्तिसिंह के प्रेम प्रसंगों पर आधारित है।

भू-परिक्रमा : राजा शिवसिंह की आज्ञा से लिखित भूगोल-सम्बन्धी ग्रन्थ है।

पुरुषा परीक्षा: इतिहास और नीतिशास्त्र का ज्ञान है।

लिखनावली : संस्कृत में पत्र लेखन कला सिखाने के उद्देश्य से लिखित ग्रन्थ है।

शव सर्वस्वसार : राजा पद्मसिंह की रानी विश्वास देवी की प्रेरणा से यह ग्रन्थ लिखा गया। इस ग्रन्थ में भगवान् शिव की पूजा आराधना की विधि है।

गंगा काव्यावली : इसमें हरिद्वार से लेकर गंगासागर तक गंगा के तट पर स्थित तीर्थों, गंगास्नान, गंगा तट पर किये गये दान आदि के महात्म्य का वर्णन है।

विभाग सार : राजा शिवसिंह के चचेरे भाई नरसिंह देव नरेश के आदेश पर रचित इस ग्रन्थ में सम्पत्ति के विभाजन के नियमों पर प्रकाश डाला गया है। इस रचना से तत्कालीन मिथिला की सामाजिक स्थिति का पता चलता है।

दान वाक्यावली : महाराज नरसिंहदेव की रानी धीरमती के आदेश पर रचित इस ग्रंथ में दान की महिमा और व्याख्या तथा बारहों महीनों के दानों की विधियाँ हैं।

दुर्गा भक्ति तरंगिनी : यह कवि की अन्तिम रचना मानी जाती है। इसमें भगवती दुर्गा की पूजा-विधि और माहात्म्य का प्रमाण सहित वर्णन है।

बोध प्रश्न

3 .निम्नलिखित कथनों में सही कथन क सामन सही (√) गलत कथन क सामन गलत (×) का चिह्न लगाइए।

अ. विद्यापति की 'पदावली' की रचना मैथिली में हुई है।

ब. विद्यापति वीररस के कवि हैं।

स. भू-परिक्रमा भूगोल-सम्बन्धी ग्रन्थ है।

द. दुर्गा भक्ति तरंगिनी विद्यापति की अन्तिम रचना मानी जाती है।

15.6 विद्यापति का सम्प्रदाय

कहा जाता है कि स्वयं भोले नाथ ने कवि विद्यापति के यहाँ उगना (नौकर का नाम) बनकर चाकरी की थी। विद्यापति के साहित्य में इतनी और ऐसी विविधता है कि उन्हें किसी एक मत का मान लेना कठिन हो जाता है। एक ओर वे **शव सर्वस्वसार और शिव-स्तुतियाँ** लिखकर मतावलम्बी जान पड़ते हैं। दूसरी ओर दुर्गा भक्ति-तरंगिणी और देवी-स्तुतियाँ लिखकर जान पड़ते हैं। उन्होंने गंगा-स्तुतियाँ भी लिखी हैं। राधा-कृष्ण सम्बन्धी पद उन्हें वैष्णव मतावलम्बी दर्शाते हैं।

विद्यापति की पदावली में अधिकांश पद राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं से सम्बन्ध रखते हैं। कहते हैं चैतन्य महाप्रभु विद्यापति के पदों को गाते-गाते इतना भाव-विभोर हो जाते थे कि उन्हें मूर्छा आ जाती थी। महाप्रभु की शिष्य परम्परा में आज भी विद्यापति के पद उसी भक्तिभाव से गाये जाते हैं। सहजिया सम्प्रदाय के भक्त, जो स्त्री-प्रेम को साधन मानकर ईश्वरी-प्रेम की ओर अग्रसर होते हैं, विद्यापति को सात रसिक भक्तों में से एक मानते हैं। विद्यापति के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वे शिव के अधिक भक्त थे या राधा-कृष्ण के। उन्होंने तुलसीदासजी की तरह दोनों को एक रूप में देखा है। जिस प्रकार तुलसीदासजी ने राम को प्रधानता देकर उनका शिव से तादात्म्य किया है, उसी प्रकार विद्यापति ने भी शिव और विष्णु की साथ वन्दना करते हुए दोनों को समान आराध्य मानकर उनके प्रति अपनी अनन्य भक्ति भावना को प्रकट किया है।

भल हर, भल हरि भल तुअ कला। खन पितवसनखनहिं बघछला।।

खन पंचानन खन भुजचारि। खन संकर खन देव मुरारि।।

साथ ही यह भी सत्य है कि विद्यापति दरबारी कवि थे। उन्होंने अपने आश्रयदाता राजाओं के मनोविनोद के लिए इन पदों की रचना की थी। इनके पदों में अनेक स्थानों पर अंत में इनके आश्रयदाता राजाओं और रानियों के नाम भी आये हैं। कई पद ऐसे भी हैं जिनमें राधा और कृष्ण का नाम भी नहीं है -

ससन-परस रबसु अस्बर र दखल धनि दह। नव जलधर तर चमकय र जनि बिजुरी-रह।।
आजु दखलि धनि जाइत र मोहि उपजल रंग। कनकलता जनि संचर र महि निर अवलम्ब।।
ता पुन अपरुब दखल र कुच-जुग अरविन्द। विकसित नहि किछुकारन र सोझा मुख चन्द।।
विद्यापति कवि गाओल र रस बुझ रसमन्त। दवसिंह नृप नागर र, हासिनि दइ कन्त।।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री विद्यापति को पंचदेवोपासक मानते हैं। किंतु सूर्य और गणेश की स्तुति में कवि का मन रमा हुआ नहीं दिखाई देता। राधाकृष्ण सम्बन्धी पदों को भक्ति के पद नहीं कहा जा सकता। यदि हम उनके प्रार्थना के गीत देखें तो हम पायेंगे कि विद्यापति शिव एवं शक्ति दोनों के प्रबल भक्त थे। शक्ति के रुप में उन्होंने दुर्गा, काली, भैरवि, गंगा, गौरी आदि का अपनी रचनाओं में यथेष्ठ वर्णन किया है।

15.7 काव्यपाठ तथा संदर्भ सहित व्याख्या

किसी भी साहित्यिक रचना को समझने के लिए उसका पाठ करने तथा व्याख्यायित करने की आवश्यकता होती है। कुछ अंशों में विषय की गहराई में जाने अथवा मूल कथ्य को समझने के लिए भी व्याख्या एवं विश्लेषण की आवश्यकता होती है। 'विद्यापति की पदावली' के कुछ महत्वपूर्ण पदों की संदर्भ सहित व्याख्या यहॉ दे रहे हैं। इसके बाद आप स्वयं संदर्भ-पुस्तकों से विद्यापति के और पाठों का अध्ययन तथा व्याख्या कर सकते हैं।

1. भल हर, भल हरि भल तुअ कला। खन पितवसन खनहिं बघछला।।

खन पंचानन खन भुज चारि। खन संकर खन देव मुरारि।।

खन गोकुल भए चराइअ गाय। खन भिख मॉगिए डमरू बजाय।।

खन गोविन्द भए लिअ महिदान। खनहि भसम भरु कांख बोकान।

एक सरीर लेल दुइ बास। खन बैकुण्ठ खनहि कैलास।।

भन विपरित बानि। ओ नारायन ओ सुलपानि।।

शब्दार्थ : हरि = विष्णु रूप। महिदान = महीदान, छाछ मांगना। हर = शिव। बोकान= धूल , चूर्ण । विपरित बानि= विरोधी वाणी

संदर्भ : प्रस्तुत पद विद्यापति पदावली से उद्धृत है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में कवि हर अर्थात् शिव तथा हरि अर्थात् विष्णु दोनों की एक साथ वन्दना करते हुए दोनों को समान आराध्य मानकर उनके प्रति अपनी अनन्य भक्ति भावना को प्रकट करते हैं।

अर्थ : इस पद में कवि ने एक ही ईश्वर का दो रूपों- शिव-रूप तथा विष्णु-रूप में वर्णन किया है। वे कहते हैं,- हे भगवान्! आपके शिव-रूप तथा विष्णु-रूप दोनों ही सुन्दर हैं तथा आपके दोनों ही रूपों की कलों अत्यंत रमणीय हैं। आप क्षण भर में पीताम्बरधारी विष्णु और क्षण् भर में बाघम्बरधारी शिव बन जाते हैं। आप एक पल में पांच मुख वाले शिव और अगले ही पल में चार भुजा वाले विष्णु बन जाते हैं। आप क्षण भर में गोकुल पहुँचकर कृष्ण के रूप में गाय चराने लगते हैं और क्षण भर में शिव के रूप में डमरू बजाकर भीख मांगने लगते हैं। क्षण भर में कृष्ण बनकर गोपियों से छांछ मांगने लगते हैं और क्षण भर में ही भस्म लगाकर शिव का वैरागी रूप धारण कर लेते हो। हे प्रभु! मैं तुम्हारे इस रूप का कैसे वर्णन करूँ? तुम्हारे एक ही शरीर ने दो स्थानों पर निवास बना रखा है. क्षण भर में ही तुम बैकुण्ठ में हो तो क्षण मात्र में ही कैलास पर्वत पर विराजमान दिखाई पड़ते हो। विद्यापति कहते हैं कि मैं अपनी पिरीत वाणी से आपका वर्णन करता हूँ। कभी आपको नारायण रूप में वर्णित करता हूँ और कभी त्रिशूलधारी महादेव के रूप में। ये दोनों रूप एक-दूसरे के विपरीत हैं, किन्तु मैं अपनी वाणी से इनका एक साथ वर्णन कर रहा हूँ।

विशष :

- यह स्तुतिपरक पद है।
- इसमें विद्यापति ने पौराणिक हरीशंकरी मूर्ति का सजीव एवं चित्रोपम वर्णन किया है।
- विद्यापति ने ईश्वर के दो रूपों और उनके विविध कार्यों का कलात्मक वर्णन किया है। वैष्णव-भक्ति एवं शैव-भक्ति का समन्वय प्रस्तुत किया है।
- हर-हरि, खन-खनहि, भसम-भर, विद्यापति-विपरति-वानि में अनुप्रास, खन शब्द का अनेक स्थानों पर दो बार प्रयोग होने से पुनरुक्तिप्रकाश तथा ण्क ही ईश्वर का दो रूपों में विविध तरीकों से वर्णन होने से उल्लेख अलंकार है।
  भाषा मैथिली है तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है ।
- पद में गेयात्मक्ता है।

2. चाँद सार लए मुख घटना,करु लोचन चकित चकोरे।।
अमिय धोय आँचर जनि पोछलि दह दिसि भेल उँजोरें।।
कामिनी कोने गढ़ली।
रूपसरूप मोये कहइत असँभव लोचन लागि रहलौ।।
गुरू नितम्ब भरे चलए न पारए माझ खानि खीनि निभाई।
भागि जाइत मनसिज धरि राखलि त्रिवलि-लता उरजाई।।

भनइ विद्यापति अद्भुत कौतुक ई सब वचन सरूपे।
रूपनारायण ई रस जानवि सिवसिंध मिथिला भूपे।।

संदर्भ : प्रस्तुत पद विद्यापति पदावली से उद्धृत है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में कवि ने नायिका के अद्भुत सौन्दर्य का वर्णन किया है। नायिका की सखी कृष्ण के प्रति उसके रूप का वर्णन कर रही है।

अर्थ : कवि नायिका की सखी के माध्यम से कहते हैं- ऐसा जान पड़ता है जैसे विधाता ने चन्द्रमा का सार-तत्व लेकर नायिका के मुख की रचना की है और चकोर पक्षी की चंचलता का भाव ऑखों में भर दिया है। इसीलिये जब नायिका ने अपने मुख को पानी से धोकर ऑचल से पोछा तब दसों दिशाओं में उजाला फैल गया। सखी आश्चर्य व्यक्त करती है- किसने ऐसी सुन्दर स्त्री की रचना की? उसे नायिका के सौन्दर्य का वास्तविक वर्णन करना असम्भव लगता है। यह सौन्दर्य तो ऑखों में बस गया है। भारी नितम्बों के भार से वह चल नहीं सकती, मध्यभाग अर्थात् कमर इतनी पतली है कि लगता है, वह है ही नहीं। कहीं नायिका की पतली कमर नितम्बों के भार से टूट न जाये इस भय से कामदेव ने त्रिवली-रूपी लता से उसे बॉध रखा है। विद्यापति कहते हैं कि नायिका का यह रूप विचित्र और अद्भुत जान पड़ता है, लेकिन यह सत्य है। वह कहते हैं कि मिथिला के राजा शिवसिंह पारखी हैं, रूप के पुजारी हैं, वह इस रस को जानते हैं।

विशष :

- इस पद में नायिका का रूपवर्णन है।
- इसमें विद्यापति ने पौराणिक हरीशंकरी मूर्ति का सजीव एवं चित्रोपम वर्णन किया है।
- चाँद-सार लए मुख घटना.....में मुख और लोचन का 'घटना करु' का एक धर्म होने से दीपक, 'अमिय धेए ऑचर धनि पोंछल दहि दिस भेल उजोरे' में अत्युक्ति भागि.....में अहेतु में हेतु की सम्भावना होने से हेतूत्प्रेक्षा और असम्बन्ध में सम्बन्ध कल्पित होने से सम्बन्धाश्योक्ति, चकित-चकोरे, दह-दिसि, कामिनी-कोने, खनि-खीन, सिब-सिंध में अनुप्रास तथा रूप-सरूप में सभंगपदयमक अलंकार है।
- राजा शिवसिंह का उल्लेख इस बात की पुष्टि करता है कि कवि ने राजा के मनोरंजन को ध्यान में रखते हुए काव्य-रचना की है।

- विद्यापति ने ईश्वर के दो रूपों और उनके विविध कार्यों का कलात्मक वर्णन किया है। वैष्णव-भक्ति एवं शैव-भक्ति का समन्वय प्रस्तुत किया है।

- हर-हरि, खन-खनहि, भसम-भर, विद्यापति-विपरति-वानि में अनुप्रास, खन शब्द का अनेक स्थानों पर दो बार प्रयोग होने से पुनरुक्तिप्रकाश तथा ण्क ही ईश्वर का दो रूपों में विविध तरीकों से वर्णन होने से उल्लेख अलंकार है।

- भाषा मैथिली है तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

- पद गेय है।

3. सैसव जौवन दुहु मिल गेल। श्रवनक पथ दुहु लोचन लेल।।

वचनक चातुरि नहु-नहु हास। धरनिये चान कयल परकास।।

मुकुर हाथ लय करय सिंगार। सखि पूछय कइसे सुरत-विहार।।

निरजन उरज हेरत कत बेरि। बिहुँसय अपन पयोधर हेरि।।

पहिले बदरि सम पुन नवरंग। दिन-दिन अनंग अगोरल अंग।।

माधव देखल अपरूब बाला। सैसव जौवन दुहु एक भेला।।

विद्यापति कह तुहु अगेआनि। दुहु एक जोग इह के कह सयानि।।

संदर्भ : प्रस्तुत पद मैथिल कोकिल के नाम से विख्यात कविवर विद्यापति की विद्यापति पदावली से लिया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद विद्यापति की पदावली से उद्धृत है। इसमें कवि ने नायिका के वय:संधिकाल का वर्णन किया है। वय:संधिकाल अर्थात् वह अवस्था जब नायिका बाल्यावस्था से युवावस्था में प्रवेश करती है।

अर्थ - कवि बताते हैं कि नायिका के शरीर में शैशव और यौवन दोनों अवस्थाओं का संगम हो गया है। शिशुता की झलक अभी छूटी नहीं है लेकिन अंग-प्रत्यंग से यौवन झलकने लगा है। नेत्र कर्णचुम्बी हो गए हैं,अर्थात् नेत्र बड़े-बड़े हो गण् हैं और नेत्रों ने कटाक्ष करना सीख लिया है,वह सीधे-सीधे न देखकर कनखियों से तिरछी नजरों से केखने लगी है। बोलचाल में सहज

सरलता के स्थान पर मन्द-मन्द हास चतुराई घुलटमिल गई है। उसे देखकर लगता है जैसे चन्द्रमा पृथ्वी पर उतरकर अपनी चॉदनी की छटा गिखेर रहा हो। अब वह शीशे में देख-देखकर श्रृंगार करने लगी है।सहेलियों से रति -क्रीड़ा सम्बंधी बातें पूछने लगी है। एकांत में बार-बार अपने उरोजों को देखती है और उन्हें बढ़ता हुआ देखकर प्रसन्न होती है। जो पहले बेर के समान छोटे थे अब नारंगी के समान बड़े हो गए हैं। कामदेव का प्रभाव नित्य उसके अंग-प्रत्यंगों पर बढ़ता जा रहा है। नायिका का सखी श्रीकृष्ण को बताती है कि उसने उस अपूर्व सुन्दरी बाला को देखा है जिसके शरीर में शैशव और यौवन दोनों एक साथ दिखाई दिये हैं। विद्यापति कहते हैं हि माधव(श्रीकृष्ण) ने कहा कि वह(नायिका की सहेली) अज्ञानी है ,ऐसा कैसे हो सकता है कि दोनों अर्थात् शैशव(बालपन) और यौवन एक साथ हों

4. नन्दनक नन्दन कदम्बक तरु तर, धिरे-धिरे मुरलि बजाब।
समय संकेत निकेतन बइसल, बेरि-बेरि बोलि पठाव।।
साभरि, तोहरा लागि अनुखन विकल मुरारि।
जमुनाक तिर उपवन उदवेगल, फिरि फिरि ततहि निहारि।।
गोरस बेचरा अबइत जाइत, जनि-जनि पुछ बनमारि।
तोंहे मतिमान, सुमति मधुसूदन, वचन सुनह किछु मोरा।
भनइ विद्यापति सुन बरजौवति, बन्दह नन्द किसोरा।।

संदर्भ : प्रस्तुत पद मैथिल कोकिल के नाम से विख्यात कविवर विद्यापति की विद्यापति पदावली से लिया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद विद्यापति की पदावली से उद्धृत है। इस पद में कृष्ण का राधा के प्रति प्रेमभाव दर्शाया गया है। राधा से मिलन के लिए प्रतीक्षारत कृष्ण का चित्रण प्रस्तुत पद में है।

अर्थ : राधा की सखी राधा से कहती है- हे राधिका नंद का पुत्र कदम्ब के वृक्ष के नीचे बैठकर धीरे-धीरे मुरली बजा रहा है। वह पहले से निर्धारित समय के अनुसार निश्चित स्थान पर पहुँच गया है और मुरली के माध्यम से बार-बार ,मुरली के स्वर में तेरा नाम ले- लेकर तुझे बुला रहा है । हे श्यामा, तुझसे मिलने के लिए मुरारि की व्याकुलता क्षण-क्षण बढ़ रही है। वह यमुना के किनारे के उपवन में विकल भाव से बार-बार उसी पंथ को निहार रहे हैं ,जिस ओर से तेरे आने की सम्भावना है। जो भी गोपी गोरस बेचने के लिए उधर से आती-जाती है ,वह वनमाली उसी से तेरे बारे में पूछता है। हे बुद्धिमती राधा,मधुसूदन (श्रीकृष्ण) तुझ पर अनुरक्त हैं,अत: तू कुछ मेरी बात भी सुन। विद्यापति कहते हैं- हे श्रेष्ठ युवती सुन,नंदकिशोर वन्दनीय हैं,तू उनकी वन्दना कर अर्थात स्वयं को उन्हें समर्पित कर उनकी व्याकुलता को दूर कर।

विशष :

- यह श्रृंगारमूलक पद है।
- इसमें कृष्ण की प्रेमविह्वलता का वर्णन है।
- कृष्ण के लिए विविध नामों नंद का नंदन,मुरारि,वनवारि,मधुसूदन,नंदकिशोर का प्रयोग किया गया है। नंद का नंदन आनन्दित करने वाली प्रकृति के कारण कहा गया है। मुरारि-मुर तथा मधुसूदन- मधु नामक राक्षस का वध करने के कारण तथा नंदकिशोर नंद का पुत्र होने के कारण कहा गया है।
- राधा के लिए सखि सामरि(श्यामा) का सम्बोधन करती है। लक्षणग्रन्थों के अनुसार षोडषी को श्यामा कहते है। शीत ऋतु में उष्णता तथा ग्रीष्म ऋतु में शीतलता प्रदान करने वाली तपे हुए सोने की आभा वाली स्त्री को भी श्यामा कहा गया है।
- भाषा मैथिली है तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है। पद में गेयात्मकता है।
- श्रुत्यानुप्रास की मनोहारी छटा है।

5. जय जय भैरवि असुर-भयाउनि, पशुपति भामिनी माया।
सहज सुमति वर दिअ हे गोसाऊनि, अनुगति गति तुअ पाया।।

वासर रैन सवासन शोभित, चरण चन्द्रमणि चूडा।
कतओक दैत्य मारि मुख मेलल, कतओ उगलि कय कूडा।।

साँवर वरन नयन अनुरंजित, जलद जोग फूल कोका।
कट-कट विकट ओठ पुट पांडरि, लिधुर फेन उठि फोका।।

घन-घन घनन घुँघरू कत बाजय, हन-हन कर तुअ काता।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक, पुत्र बिसरू जनु माता।।

संदर्भ : प्रस्तुत पद मैथिल कोकिल के नाम से विख्यात कविवर विद्यापति की विद्यापति पदावली से लिया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में कवि ने भैरवी की स्तुति की है। भैरवी पार्वती का ही एक रूप है,जो चामुण्डा काली के नाम से भी जानी जाती हैं। देवी का यह रूप असुरमर्दिनी का है जो दैत्यों का विनाश कर भक्तों को राहत देती है।

अर्थ : कवि देवी की आराधना करते हुए कहते हैं असुरों को भयभीत करने वाली देवों के देव महादेव अर्थात भगवान शिव की अर्द्धांगिनी,हे महामाया,तुम्हारी जय हो। कवि कहता है कि हे गोस्वामिनी , मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ ,कृपा कर मुझे ऐसी सुमति दो देवी कि मैं दिन-रात आपके ही चरणों में अनुरक्त रहूँ, आपका ही अनुसरण करूँ। मेरा मन इधर-उधर न भटके। कवि कहते हैं देवी भैरवी के चरण नित्य ही शवों के ऊपर रहते हैं। केशों में चन्द्रकांत मणि विराजमान रहती है। देवी भैरवी ने कितने ही दैत्यों को मारकर निगल लिया है ,कितनों को मुँह में डालकर दाँतों से कुचल कर उगल दिया है। देवी का सलोना श्यामवर्ण है,नेत्र रक्तिम लाल हैं,जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो बादलों में कमल खिले हों। दाँतों की किटकिटाहट से विकट घोष कर रही हैं। उनके होंटो पर रक्त के झाग से बुलबुले उठते रहते हैं। पैरों में पहने घुंघरूओं की ध्वनि बादलों की गर्जन जैसी प्रतीत होती है। उनकी तलवार जिधर भी घूमती है,दैत्यों का वध करती है। कवि विद्यापति देवी से कहते हें कि वह उनके चरणों के सेवक हैं,वह अपने इस पुत्र को न भूलें,अपनी शरण में रखें।

विशष:

- स्तुतिपरक पद है। देवी के असुरमर्दिनी रूप का सजीव चित्रण हुआ है।
- कवि ने देवी की प्रकृति के अनुरूप उन्हें विविध नामों से पुकारा है,जैसे भैरवि असुर भयाउनि(असुरों को भयभीत करने वाली) , पसुपति भामिनी (भगवान शिव की पत्नी),गोसाउनि(गोस्वामिनी अर्थात इन्द्रियों को वश में रखने वाली) आदि।
- भाषा मैथिल और शब्दावली तद्भव है। अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है। पद में गेयात्मकता है

बोध प्रश्न

1.विद्यापति की भाषा कौनसी है?

(अ) हिन्दी (ब)मैथिल (स) गुजराती(द) खड़ी बोली

2.विद्यापति ने किसकी कला को भला कहा है?

(अ)ब्रह्मा व विष्णु की (ब) विष्णु व इन्द्र की

(स) शिव व विष्णु की (द) इनमें से किसी की नहीं

3.रसराज किसे कहा जाता है?
(अ)शान्तरस को (ब)श्रृंगाररस को (स) वीररस को (द) वीभत्सरस को

4.निम्नलिखित में श्रृंगारी कवि कौन हैं?
(अ) कबीर(ब)तुलसी (स)मीरा (द) विद्यापति

15.8 सारांश

इस इकाई में आप संक्रांत काल के कवि विद्यापति के व्यक्तित्व एवं कृतियों से परिचित हुए। आपने कुछ चयनित पदों की व्याख्या के माध्यम से उनके काव्य को समझा। उनके काव्य में व्यक्त भावों तथा अभिव्यक्ति के वैशिष्ट्य से आप परिचित हुए। आपने जाना कि विद्यापति अनेक राजाओं के दरबार में रहे। राज्याश्रय के कारण आपने विविध विषयों और भाषाओं के ज्ञान की वृद्धि की। जीवन का अधिकांश समय राज्याश्रय में बिताने के बावजूद आप आम जनता के कवि थे। हिन्दी के लोकप्रिय कवियों में आपका स्थान अग्रणी है। आप हिन्दी, संस्कृत, बंगला, मैथिली और अपभ्रंश के न केवल अच्छे ज्ञाता थे वरन् आपने अपनी रचनाओं से इन सभी भाषाओं को समृद्ध भी किया है। आपके गीत भक्ति और श्रृंगाररस के अद्भुत उदाहरण हैं। आज भी मिथिलांचल में विशेष धार्मिक एवं सामाजिक अनुष्ठानों में आपके गीत घर-घर में गाये जाते हैं, यही नहीं आपके गीत इंटरनेट पर यु-ट्यूब में भी सुने जा सकते हैं।

15.9 शब्दावली

रूढ़िसंत्रस्त	:	रू ियों में जकड़ा हुआ
शास्त्रीय मार्ग	:	शास्त्रों द्वारा निर्धारित नियमानुसार व्यवहार
लोकमार्ग	:	सामान्य लोगों द्वारा निर्धारित नियमानुसार व्यवहार
लोकाचार	:	समाज में आपसी व्यवहार
पदविन्यास	:	पदों की बनावट
देसिल बअना	:	स्थानीय भाषा (मैथिली भाषा से तात्पर्य है)
प्रक्षेप	:	बाद में जोड़ा गया
शैव	:	शिव को पूजने वाले

शाक्त	:	शक्ति (देवी) की उपासना करने वाले
पंचदेवोपासक	:	पंचदेवों में विष्णु, शक्ति, सूर्य,शिव और गणेश जो क्रमश: आकाश, अग्नि, वायु, पृथ्वी और जल के अधिपति हैं। ये ही पंचतत्व हैं। इनकी उपासना करने वाले पंचदेवोपासक माने जाते हैं।
पदावली	:	पदशैली में लिखित काव्य को पदावली कहते हैं।

15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क मैथिल कोकिल

ख बिसपी

ग मिथिला

2. एक पंक्ति में उत्तर दीजिए

अ . विद्यापति ओईनवार राजवंश की लखिमादेवी (देई) (ख) विश्वासदेवी और (ग) धीरमतिदेवी रानियों के सलाहकार रहे हैं?

ब . विद्यापति के पांच उपनाम अभिनव जयदेव, कविराज, कविकण्ठहार, मैथिल कोकिल,दशावधान हैं।

स . कहा जाता है कि विद्यापति की पुत्रवधू चन्द्रकांता भी अच्छी कविता करती थी।

3 .निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइए।

अ) **(√)**

ब) **(×)**

स) **(√)**

द) **(√)**

15.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 जुयाल,डा. गुणानन्द, विद्यापति का अमर काव्य,साहित्य निकेतन

2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली , पृ0300 खण्ड 3

3. दीक्षित, डा. आनन्दप्रकाश, विद्यापति, साहित्य प्रकाशन मंदिर, ग्वालियर

4. नागार्जुन , नागार्जुन ग्रन्थावली, राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली

5 . वर्मा, डा. धीरन्द्र , हिन्दी साहित्य कोश, पृ .532 , ज्ञानमंडल वाराणसी

6 . विकिपीडिया

15.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

जुयाल डा. गुणानन्द विद्यापति का अमर काव्य,साहित्य निकेतन

सिंह,डा. शिवप्रसाद विद्यापति, विद्यापति, लोकभारती प्रकाशन

बेनीपुरी,रामवृक्ष विद्यापति पदावली, पुस्तक भंडार लहरिया सराय,बिहार

झा,रमानाथ विद्यापति, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

15.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. विद्यापति के व्यक्तित्व व कृतित्व पर विस्तृत प्रकाश डालिए।
2. विद्यापति को मैथिल कोकिल क्यों कहा जाता है, स्पष्ट कीजिए तथा विद्यापति की भक्ति भावना पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई 16 विद्यापति : साहित्य एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 विद्यापति पदावली
16.4 भावपक्ष
16.5 श्रृंगारी कवि अथवा भक्त कवि
16.6 लोक चेतना
16.7 अपरूप के कवि एवं गीति तत्व
16.8 मुक्तक काव्य
16.9 कलापक्षीय विशेषतायें
16.10 सारांश
16.11 शब्दावली
16.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
16.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.15 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने विद्यापति के व्यक्तित्व तथा रचनाओं के बारे में जाना। साथ ही आपने उनके पदों की विस्तृत व्याख्या का अध्ययन भी किया।

प्रस्तुत इकाई में विद्यापति की पदावली के आधार पर विद्यापति के काव्य के भाव-जगत और शिल्पी पक्ष को उद्घाटित किया गया है।

इसके अध्यायन के बाद आप विद्यापति के काव्य-वैशिष्ट्य को अनुभूत कर उनकी विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्यदयन के बाद आप -

- विद्यापति पदावली का विश्लेषण करेंगे।
- विद्यापति की लोकचेतना को अनुभूत करेंगे।
- हिन्दी साहित्य के आदिकाल एवं भक्तिकाल के संधिकाल के एक विशिष्ट रचनाकार के रूप में विद्यापति के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व का विश्लेषण करेंगे।
- हिन्दी काव्य साहित्य के इतिहास में विद्यापति का स्थान निर्धारित करेंगे

16.3 विद्यापति पदावली

विद्यापति की संस्कृत रचनाओं से उनकी विद्वत्ता का परिचय मिल जाता है किन्तु कीर्तिलता, कीर्तिपताका और पदावली ही कवि की ऐसी रचनाएं हैं जिनके कारण उन्हें महाकवियों की श्रेणी प्राप्त हुई है। कीर्तिलता और कीर्तिपताका, अपभ्रंश और अपभ्रंश मिश्रित संस्कृत में लिखी गई हैं। ये कवि की आरम्भिक रवनाएँ हैं इसलिए इनमें काव्य प्रतिभा का वह विकास नहीं दिखाई देता जो उनकी पदावली में दिखाई देता है। विद्यापति पदावली में भाव एवं काव्यात्मक तत्वों का चरमोत्कर्ष है। विद्यापति की 'पदावली' मुक्तक रचना के रूप में है। मुक्तक रचना का प्रत्येक पद अपने में पूर्णता लिये होता है।

विद्यापति चौदहवीं शताब्दी के कवि थे और निर्विवाद रूप से उनका यश सोलहवीं शताब्दी के अंत तक समस्त पूर्वी भारत में व्याप्त हो चुका था। उनके गीत घर-घर में गाये जा रहे थे1 अनेक कवि उनके अनुसरण पर पद रचना करने लगे थे, जिन्होंने अपनी रचनाओं में आदरपूर्वक विद्यापति का अपनी रचनाओं में स्मरण भी किया है। लेकिन बीसवीं सदी से पूर्व विद्यापति के समस्त पदों को

संकलित करने का प्रयास अथवा संकलन-ग्रंथ प्राप्त नहीं होता। पदावली की प्राप्त पाण्डु-लिपियों को देखने से प्रतीत होता है कि ये तीन वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं- 1. नेपाल से प्राप्त पाण्डुलिपि 2.मिथिला की पोथियाँ रागतरंगिनी, रामभउपुर की पोथी 3.बंगाल में संकलित (क्षणदागीत विन्तामणि, पदामृत समुद्र, पदकल्पतरु, संकीर्तनामृत और कीर्तनानन्द). विद्यापति के पदों के संकलन का कार्य सबसे पहले शारदा चरण मिश्र ने किया। 1881 ई0 में जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने गायकों के मुख से सुनकर 82 पद एकत्र किए। बाद में बंगाल के नगेन्द्रनाथ गुप्त ने 1316 बंगाब्द में विद्यापति पदावली का सम्पादन किया। 'विद्यापति ठाकुर की पदावली' के नाम से प्रकाशित इस ग्रन्थ में 936 पदों का संग्रह किया गया है। इसी के आधार पर श्री ब्रजनन्दन सहाय की 'मैथिल कोकिल विद्यापति' तथा श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की 'विद्यापति पदावली' के नाम से सम्पादित पुस्तकें प्रकाशित हुई।

विद्यापति की पदावली का विषय तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- (1) वंदना (2) राधा-कृष्ण की प्रणयलीला,(3) विविध।'पदावली' एक संकलित ग्रन्थ है। प्रारम्भ में कृष्ण, राधा एवं देवी की वंदना है और अंत में प्रार्थना ओर नचारियाँ हैं, जिनमें – दुर्गा, सीता और गंगाजी की स्तुति के अतिरिक्त शिव-विवाह सम्बंधी पद हैं। 'पदावली' का मुख्य विषय-राधाकृष्ण की प्रेमलीला है।भाव पक्ष और कलापक्ष के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि विद्यापति के काव्य में यदि भावपक्ष की माधुरी है तो कलापक्ष की पूर्ण साज-सज्जा भी है।

बोध प्रश्न

नोट : निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गए उत्तर से मिलाइये।

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

अ) विद्यापति की 'पदावली' ..... रचना के रूप में है। (प्रबंध / मुक्तक)

ब) विद्यापति .....शताब्दी के कवि थे। (चौदहवीं / बारहवीं)

स) विद्यापति के पदों के संकलन का कार्य सबसे पहले .....ने किया। (शारदा चरण मिश्र / राम शरण जोशी)

द) श्री रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा सम्पादित पुस्तक .....के नाम से प्रकाशित हुई। (विद्यापति पदावली', विद्यापति रचनावली)

16.4 भाव पक्ष

1 . **श्रृंगार रस** विद्यापति का मुख्य प्रतिपाद्य श्रृंगार रस है। इन्होंने श्रृंगार रस के दोनों रूपों संयोग एवं वियोग का अत्यंत विस्तार से वर्णन किया है, जो बहुत ही स्वाभाविक एवं मर्मस्पर्शी है। 'पदावली' में श्रृंगार की अविरल धारा बहती हुई दृष्टिगोचर होती है।

2 . **मधुर रस-** मधुर रस का वस्तु शिल्प श्रृंगार रस जैसा ही होता है तथापि इसमें भाव का कुछ अंतर होने से यह भक्ति कहलाता है। भक्ति रस का स्थायी भाव है- कृष्ण विषयक रति। मधुर रस के विभाव के अन्तर्गत कृष्ण को नायक और गोपियों को नायिका माना गया है।

3 . संयोग श्रृंगार- संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत विद्यापति ने तरुण-तरुणियों के मनोविज्ञान को राधा-कृष्ण के माध्यम से प्रस्तुत किया है। विद्यापति की वय:सन्धि, अभिसार, खंडिता, कलहांतरिता, मान, विरह विषयक कविताएं अत्यंत प्रसिद्ध हैं। विद्यापति के संयोग श्रृंगार की विशेषताएं इस प्रकार हैं-

(1) नख-शिख वर्णन : संयोग श्रृंगार में रूप-वर्णन प्रधान होता है। रूप-वर्णन में नख-शिख, वेश-भूषा, आकृति-प्रकृति, सुकुमारता आदि का वर्णन होता है। नख-शिख वर्णन शिख-नख वर्णन में भी परिवर्तित हो जाता है। नख-शिख का सम्बंध अलौकिक आलम्बनों से होता है और शिख-नख का लौकिक से। विद्यापति ने क्योंकि कुछ अलौकिकता भी रखी है, अत: उनका नख-शिख वर्णन भी प्रशंसनीय है और शिख-नख वर्णन भी। विद्यापति के नख-शिख वर्णन की विशेषता-बिम्ब प्रस्तुत करने में है। उनका नख-शिख वर्णन कहीं सामान्य रहा है कहीं अलंकृत, किन्तु अलंकृत वर्णनों में उनका मन बहुत रमा है, जिससे बड़े चमत्कारपूर्ण बिम्ब उभरे हैं। एक उदाहरण है-

पल्लवराज चरनजुग सोभित गति गजराज क भाने।
कनक कदलि पर सिंह समारल ता पर मेरू समाने।।
मेरे उपरदुइ कमल फुलायल नाल बिना रुच पाई।
मनिमय हार धार बहु सुरसरि तें नहिं कमल सुखाई।।

(2) वय संधि वर्णन : विद्यापति के श्रृंगार वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने श्रृंगार की प्रत्येक अवस्था का मनोरम वर्णन किया है। नायिका के शैशव और यौवन के मेल और नायिका की प्रतिक्रिया का अति सूक्ष्म अद्भुत वर्णन विद्यापति के काव्य में मिलता है।

सैसव जौवन दुहु मिल गेल। श्रवनक पथ दुहु लोचन लेल।।
वचनक चातुरि नहु-नहु हास। धरनिये चान कयल परकास।।
मुकुर हाथ लय करय सिंगार। सखि पूछय कइसे सुरत-विहार।।
निरजन उरज हेरत कत बेरि। बिहुँसय अपन पयोधर हेरि।।

विद्यापति के श्रृंगार वर्णन की एक और विशेषता यह है कि वे एक साथ नायक और नायिका के रूप का ऐसा चित्रण करते हैं कि एक ओर नायक पर उसका प्रभाव परिलक्षित होता है तो दूसरी ओर नायिका पर। नायक-नायिका के उनके रूप-गुण के आधार पर विभिन्न भेद मिलते हैं।

विद्यापति के काव्य में नायक-नायिका के अधिकांश रूप मिलते हैं। राधा के रूप में नायिका के परकीया, अज्ञातयौवना, मुग्धा, मानिनी, उत्कण्ठिता, वासकसज्जा, दिवाभिसारिका, शुल्काभिसारिका, कृष्णाभिसारिका, विरहिणी आदि रूपों का वर्णन है। विद्यापति के कृष्ण में धीर, ललित, उपपति, चतुर, शठ, धृष्ट और मानी नायक के दर्शन होते हैं। दूती और सखी भी पदावली में विद्यमान है। इस सखी में वाग्वैदग्ध्य और अंतरंगता है। कुलटोपदेश के रूप में प्रेम, प्रेम प्रदर्शन, काम-कला की शिक्षा देने के साथ-साथ संदेश लाना-ले-जाना करती है। इसीलिये आनन्द प्रकाश दीक्षित कहते हैं ,चतुर दूती विद्यापति के श्रृंगार की श्रृंगार है।

विरह वर्णन (वियोग श्रृंगार) आनन्द प्रकाश दीक्षित के शब्दों में कहें तो -" विद्यापति के विरह-चित्रण में भाव और कल्पना का तथा अनुभूति और तन्मयता का ऐसा अद्भुत सामंजस्य है कि पाठक सहज ही सुध-बुध भूलकर तन्मय हो जाता है। भावों की विविधता, व्यग्रता, परिवर्तनशीलता, दीनता, अनुरोध, वेदना-निवेदन, प्रेम का घातक प्रहार और उससे उत्पन्न पश्चाताप, उपालम्भ, विवशता, याचना अदि इतने अनेक रूपी भाव अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

विरह-वर्णन में कवियों का मन हमेशा ही रमा है। सामान्यत: विरह का आश्रय नायिका और आलम्बन नायक होता है। विद्यापति ने नायक के विरह का भी वर्णन किया है। विरह की स्थिति अनेक प्रकार से सम्भव है, जिसमें विदेश-गमन की स्थिति, मान तथा नायक की प्रतिकूलता प्रधान रही है। नायक(पति या प्रेमी) के विदेश-गमन से पूर्व की स्थिति में नायिका प्रोषितपतिका/ प्रयत्नपतिका और बाद में (गमनोपरान्त) प्रोषितपतिका बन जाती है। विरह चित्रण में प्रकृति बड़ी सहायता करती है। प्रकृति विरह को जाग्रत करती, पनपाती और उसे चरम पर पहुँचाती है।विद्यापति ने विरह की सभी स्थितियों का चित्रण भी किया है और प्रकृति के उद्दीपन रूपों का आश्रय भी लिया है। उन्होंने शास्त्रीय परम्परा के अनुरूप स्मरण, गुण-कथन, अभिलाषा, चिंता, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, मूर्च्छा ,मरण आदि दशाओं का वर्णन किया है। विरह की इन विभिन्न दशाओं के उदाहरण निम्नवत् हैं-

कत दिन चाँद कुसुम हम भेली।
कत दिन कमल भ्रमर करु केली।। - स्मरण

पहिन पिया मोर सुमुख हेरिति पलक छोडल न भंग।
अपरूब प्रेम पास तनु बांधल, भब तेजल मार संग।। - गुण कथन

कथ दिन पिय मोर पुजब बात।
कबहुँ पयोधर दहेब हाथ।। - अभिलाषा

सो राम है? सो किय विछुरन जाय।
करि धरि माथुर अनुमति मांगलि ततहि पड़लि मुरछाय।। - मूर्च्छा

सजनी के कह आओब, मधाई।
विरह पयोधि पार किअ पाओब, मोर मन नहिं पतिआई।। - उद्वेग

कह तु कह सखि बोल तु बोल तु रे।
हमर पिया कौन देश रे।। -प्रलाप

विरह की चरम स्थिति में प्रिय के दर्शन नींद में भी नहीं होते क्योंकि नींद ही नहीं आती है-

सपनहु संगम पाऔल रंग बड़ाओल रे,

विद्यापति ने प्रेमी कृष्ण की राधा के प्रति मिलन की आकुलता का भी वर्णन किया है-

नन्दनक नन्दन कदम्बक तरु तर, धिरे-धिरे मुरलि बजाब।
समय संकेत निकेतन बइसल, बेरि-बेरि बोलि पठाव।।
साभरि, तोहरा लागि अनुखन विकल मुरारि।
जमुनाक तिर उपवन उदवेगल, फिरि फिरि ततहि निहारि।।

विद्यापति संस्कृत-साहित्य और भारतीय काव्यशास्त्र के पंडित थे। उनके साहित्य में भारतीय काव्य में साहित्य-शास्त्र की प्राय: सभी परिस्थितियों, परम्पराओं और पद्धतियों को स्थान मिला है। भारतीय काव्यशास्त्रियों ने श्रृंगार को रसराज कहा है।..... श्रृंगार निरूपण में नायक-नायिका भेद काव्य शास्त्र का प्रमुख अंग रहा है।काव्यशास्त्रकारों ने श्रृंगार रस का विवेचन करते हुए 'रति' को श्रृंगार रस का स्थायीभाव बताया है। साहित्यदर्पणकार की दृष्टि में प्रिय वस्तु के मन के प्रेम-प्रेरित होकर उन्मुख होने की भावना का नाम रति है। श्रृंगार रस के स्थायी भाव के रूप में रति उस भावना, अनुभूति, कामना या वासना के अर्थ में ली जाती है, जिसके वशीभूत हो नायक-नायिका (स्त्री-पुरुष) शारीरिक या इन्द्रिय-सुख का उपभोग करना चाहते हैं। इसका आलम्बन विभाव है नायिका और आश्रय है नायक। उद्दीपन विभाव है- एकांत स्थान, चांदनी रात, उपवन, नदी-तट, रूप-सौन्दर्य, वेश-भूषा आदि। सात्विक अनुभाव हैं- कंप, रोमांच, स्वर-भंग, वैवर्ण्य, स्वेद आदि।उत्सुकता, हर्ष, लज्जा, ग्लानि, चिंता आदि संचारी भाव हैं। विद्यापति की रस-प्रक्रिया बड़ी वैज्ञानिक है।उनके अनेक पद रस-परिपाक के आदर्श उदाहरण हैं-

बोध प्रश्न

2. एक पंक्ति में उत्तर दीजिए

अ. विद्यापति द्वारा शास्त्रीय परम्परा के अनुरूप वर्णित विरह की स्थितियों के बारे में बताइये।

ब.मधुर रस क्या है?

स.'साभरि, तोहरा लागि अनुखन विकल मुरारि।' यह पंक्ति किसने किससे कही है?

3. निम्नलिखित कथनों में सही कथन क सामन सही (√) गलत कथन क सामन गलत (×) का चिह्न लगाइए।

अ. विद्यापति ने प्रकृति के उद्दीपन रूपों का आश्रय भी लिया है। **( )**

ब.भारतीय काव्यशास्त्रियों ने शांतरस को रसराज कहा है। **( )**

स.विद्यापति संस्कृत-साहित्य और भारतीय काव्यशास्त्र के पंडित थे।**( )**

16.5 श्रृंगारी कवि अथवा भक्त कवि

विद्यापति पदावली का प्रतिपाद्य विद्वानों में विवादास्पद बना हुआ है। कुछ विद्वानों का मत है कि विद्यापति श्रृंगारी कवि हैं और उनकी भक्ति-भावना एक झीना आवरण मात्र है। कुछ विद्वान विद्यापति की पदावली को आध्यात्मिक विचारों तथा दार्शनिक गूढ़ रहस्यों से परिपूर्ण मानते हैं। विद्यापति को भक्त कहने वालों में डॉ ग्रियर्सन प्रमुख हैं, उन्होंने कहा है कि " विद्यापति के पद लगभग सब के सब वैष्णव पद या भजन हैं। जिस प्रकार सोलोमन के पदों को इसाई पादरी पढ़ा करते हैं उसी प्रकार हिन्दू विद्यापति के चमत्कारी पदों को पढ़ते हैं और जरा भी कामवासना का अनुभव नहीं करते।" डॉ0 श्यामसुन्दरदास के अनुसार हिन्दी में वैष्णव-साहित्य के प्रथम कवि प्रसिद्ध मैथिल-कोकिल विद्यापति हुए। उनकी रचनायें राधा और कृष्ण के पवित्र प्रेम से ओत-प्रोत हैं। काल की पूर्वापरता का ध्यान रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी में भक्ति -काव्य के प्रथम बड़े कवि हैं। उनकी रचनाएँ राधा और कृष्ण के पवित्र प्रेम से ओत-प्रोत है जिनमें कवि की भावमग्नता का परिचय मिलता है। यद्यपि संयोग श्रृंगार का यर्णन करते हुए विद्यापति कहीं कहीं असंयत भी हो गये हैं,पर उनकी अधिकांश रचनाओं में भाव-धारा बहुत ही निर्मल और सरस हुई है। डॉ. जनार्दन मिश्र के अनुसार, विद्यापति अपने को पत्नी (राधा) समझकर ईश्वर (कृष्ण) की उपासना पति के रूप में करते थे। डॉ.मिश्र की दृष्टि में विद्यापति की पदावली आध्यात्मिक विचार तथा दार्शनिक गूढ़ रहस्यों से परिपूर्ण है।

डॉ. जयनाथ नलिन विद्यापति को भक्त सिद्ध करने के कहते हैं-' भाषा और भावों की सूक्ष्मता, प्रांजलता, गहनता और सघनता के विकास-क्रम की कसौटी मानें तो क्रमश: शैव, शाक्त और वैष्णव धर्म की ओर उनका अग्रसर होना निश्चित होता है।' विद्यापति की भक्ति-भावना को वैज्ञानिक और शास्त्रीय आधार प्रदान करते हुए वे कहते हैं कि कवि स्वयं को सांसारिक सुखों से विरत करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, वे संसार की स्वार्थपरता का अनुभव करते हैं, जो उनके वैरागी मन

की दशा का परिचायक है।

जतन अनेक धन पाये बटोरलु मेलि परिजने खय।

मरनक बेरि हेरि कोई न पूछत करम संग चलि जाय।।

वे ईश्वर के चरणों में ही अपना सहारा तलाशते हैं-

हे हरि, बन्दों तुअ पद नाय।

तुअ पद परिहरिपाप-पयोनिधि पार तर कौन उपाय।।

वे हरि से अपनी भूलों का प्रायश्चित करते हैं तथा ईश्वर के चरणों में परम सुख की अनुभूति करते हैं। विद्यापति को भक्त मानने के लिये यह तर्क दिया गया है कि विद्यापति कृष्ण को परब्रह्म मानते है। वह अवतार नहीं, अवतारी हैं, स्वयं भगवान हैं। कृष्ण का यही रूप श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्तपुराण, निम्बकाचार्य, विष्णुस्वामी और बल्ल्भाचार्य ने स्वीकार किया है। सूर, रसखान आदि कवि भी इसी के अनुयायी हैं, और वे भी भक्त कहलाते हैं।भगवान का लीला-गान भक्ति का विशेष अंग है और विद्यापति ने लीला-गान में रुचि ली है। उन्होंने यह लीला-गान कान्ता-भाव की भक्ति के साथ किया है। विद्यापति की राधिका आरम्भ से अंत तक मुग्धा किशोरी है.विद्यापति ने राधिका की जिस प्रेममयी मूर्त्ति की कल्पना की है उसमें विलास-कलावती किशोरी का रूप स्पष्ट ही प्रधान है, पर सर्वत्र उस विलास के पीछे यह भावना छिपी हुई है कि प्रिय इससे प्रसन्न हों। राधिका का रूप भगवान् के लिये है, यौवन भगवान् के लिए है, प्रेम भगवान् के लिए है, विलास भी भगवान् के लिए है,- एक शब्द में उन्होंने भगवान् की संतुष्टि के लिये ही विलास-कलावती का रूप धारण किया है। अगर भगवान् किसी अन्य रूप से प्रसन्न होते और राधिका को यह खबर लग गयी होती , तो वे निश्चय ही उस 'अन्य रूप' को ही अपनातीं। चण्डीदास की राधा में मानस-सौन्दर्य अपनी चरम सीमा तक पहुँचता है। विद्यापति की राधा में शरीर-सौन्दर्य भी उसी प्रकार अपनी परिणति पर पहुँवता है। मगर यह कहना कि विद्यापति की राधिका में शरीर-सौन्दर्य ही प्रधान है, अन्याय है। यद्यपि यह बात होती भी तो विद्यापति की साधना में रत्ती भर न्यूनता नहीं आती। भक्त के विपरीत विद्यापति को श्रृंगारी कवि मानने के पक्ष में भी अनेक तर्क हैं। ' विद्यापति ने कीर्तिपताका में कहा है- राम को सीता की विरह -वेदना सहनी पड़ी इसलिए उन्हें काम-कला चतुर अनेक स्त्रियों के साथ रहने की उत्कट अभिलाषा हुई। इसी कारण उन्होंने कृष्णावतार लेकर गोपियों के साथ अनेक प्रकार के विहार किये।' इससे स्पष्ट होता है कि राधा-कृष्ण के श्रृंगार वर्णन में कोई दार्शनिक गूढ़ रहस्य नहीं है, जिससे उन्हें कबीर आदि रहस्यवादी भक्त या संत कवि ठहराया जाए।

विद्यापति के पद अधिकतर श्रृंगार के ही हैं, जिनमें नायिका और नायक राधा और कृष्ण हैं। इन पदों की रचना जयदेव के गीतकाव्य के अनुकरण पर ही शायद की गई हो। इनका माधुर्य अद्भुत है। विद्यापति शैव थे। उन्होंने इन पदों की रचना श्रृंगार काव्य की दृष्टि से की है, भक्त के रूप में नहीं। विद्यापति को कृष्णभक्तों की परम्परा में न समझना चाहिए।

आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गए हैं। उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने

'गीतगोविंद' के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है, वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी। सूर आदि कृष्णभक्तों के श्रृंगारी पदों की भी ऐसे लोग आध्यात्मिक व्याख्या चाहते हैं। पता नहीं बाललीला के पदों का वे क्या करेंगे। इस संबंध में यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि लीलाओं का संकीर्तन कृष्णभक्ति का अंग है। जिस रूप में लीलायें वर्णित हैं उसी रूप में उनका ग्रहण हुआ है, और उसी रूप में वे गोलोक में नित्य मानी गई हैं, जहाँ वृन्दावन, यमुना, निकुंज,कदंब, सखा, गोपिकायें इत्यादि सब नित्य रूप में हैं। इन लीलाओं का दूसरा बर्थ निकालने की आवश्यकता नहीं है।

बोध प्रश्न

4. विद्यापति के भक्तकवि होने के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने क्या विचार व्यक्त किये हैं

.....

.....

.....

.....

प्रकृति वर्णन : साहित्य के विभिन्न रूपों में प्रकृति-चित्रण की अपनी महत्ता रही है। प्रकृति-चित्रण की यह परिपाटी साहित्य में निरंतर दिखाई देती रही है। संस्कृत काव्यों की तरह विद्यापति के काव्य में भी प्रकृति दो रूपों में लक्षित होती है- आलम्बन या प्रतिपाद्य के रूप में और केवल उद्दीपन बनकर।

अभिनव पल्लव बइसंक देल।
धवल कमल फुल पुरहर भेल।।
करु मकरंद मन्दाकिनि पानि।
अरुन असोग दीप दहु आनि।।
माह हे आजि दिवस पुनमन्त।।
करिअ चुमाओन राय बसन्त।।

नायिका चाँद से कह रही है-

चन्दा जनि उग आजुक राति।
पिया के लिखिअ पठाओब पांति।।

विद्यापति ने विरह वर्णन में बारहमासे की पद्धति अपनाते हुए ऋतुओं का वर्णन किया है। संस्कृत कवियों की रीति पर विद्यापति के काव्य में भी अनेक उपमाओं, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास से सुसज्जित बसंत का वर्णन मिलता है-

नृप आसन नव पीठल पात
कांचन कुसुल छत्र धरु मात
कुन्द वल्ली तरु धएल निसान
पाटल तूण असोक बलरान

वाल्मीकि का काव्य प्रकृति प्रधान है, कालिदास विशुद्ध प्रकृति के कवि माने जाते हैं। विद्यापति लोक के कवि थे। उसी परम्परा में वह आम जन को विविध ऋतुओं के खान-पान का ज्ञान देते हुए भी दिखाई पड़ते हैं-

साओनर साज ने भादवक दही। आसिनक ओस ने कार्तिकक मही।।
अगहनक जीर ने पुषक धनी। माधक मीसरी ने फागुनक चना।।
चैतक गुड़ ने बैसाखक तेल। जेठक चलब ने अषाढ़क बेल।।
कहे धन्वन्तरि अहि सबसँ बचे। त वैदराज काहे पुरिया रचे।।

16.6 लोक चेतना

विद्यापति के कृष्ण नन्दराजा के राजकुमार नहीं, ग्वाल थे, इसीलिये विद्यापति ने जिस वातावरण में उन्हें उपस्थित किया है, वह उसी के उपयुक्त है।राधा कृष्ण पर व्यंग्य करती हुई कहती है कैसा मूर्ख है यह कृष्ण , घोड़ा खरीदा जाता है या उधार मांगने से घी मिलता है? बैठने का स्थान नहीं खाने को व्यंजन मांगता है। आज तो बड़ा मजा आया। कान्हा का मिथ्या गौरव चूर-चूर हो गया। आकर पाँव के पास पुवाल पर बैठ गया। बेचारा पूछने लगा शय्या कहाँ लगी है। पास में फटी हुई चटाई और मन में पलंग। अहीरनियों के नाथ की बात ही क्या कहना-

कउड़ि पठओले पाव नहीं घोर
घीव उधार मां मति मोर

विद्यापति ने लोक-प्रचलित मुहावरों के प्रयोग से भाषा को एक नई शक्ति दी तथा अपने को अधिक जीवन्त और लोक-जीवन-सम्पृक्त बनाया। मुहावरों के साथ ही उन्होंने लोक-जीवन के अन्य तत्व भी ग्रहण किये। उदाहरण के लिये उनके गीतों में कई स्थानों पर प्रेम-विरह आदि की सूक्ष्म परिस्थितियों में लौकिक अंधविश्वास भूत-प्रेत, टोना-टोटका तथा अन्य प्रकार के रूढ़ विश्वासों का प्रयोग हुआ है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने इनका पोषण या समर्थन किया है, किन्तु लोक का आधार होने के कारण अपने लेखन का विषय बनाया है। विद्यापति की सामाजिक चेतना का परिचय एक और प्रकार से मिलता है। उन्होंने सारे अभिजात प्रयोगों के बावजूद कई स्थानों पर घोर ग्राम्य या लोक-प्रसूत प्रयोग किये हैं। राधा तथा गोपियों के द्वारा प्रयुक्त मुहावरों और लोकाक्तियों ने इसे जीवन्त बना दिया है। विद्यापति लोक के कवि थे। उसी परम्परा में वह आम जन को विविध ऋतुओं के खान-पान का ज्ञान देते हुए भी दिखाई पड़ते हैं-

साओनर साज ने भादवक दही। आसिनक ओस ने कार्तिकक मही।।
अगहनक जीर ने पुषक धनी। माधक मीसरी ने फागुनक चना।।
चैतक गुड़ ने बैसाखक तेल। जेठक चलब ने अषाढ़क बेल।।
कहे धन्वन्तरि अहि सबसँ बचे। त वैदराज काहे पुरिया रचे।।

16.7 अपरूप के कवि एवं गीति तत्त्व

विद्यापति की सौन्दर्य-दृष्टि - सौन्दर्य-दृष्टि मनुष्य में स्वाभाविक और सहज है,इसी सौन्दर्य-दृष्टि का जब वह विस्तार करता है तो विभिन्न कलाओं की सृष्टि होती है।सौन्दर्य से प्रेम उपजता है, सौन्दर्य प्रेम का मूल प्रेरक है। स्मृति ही प्रेमानुभूति है। विद्यापति का काव्य प्रेम का काव्य है। प्रेम का मूल प्रेरक है सौन्दर्य, उसका आश्रय है यौवन। विद्यापति श्रृंगारी कवि हैं, उनके काव्य में सौन्दर्य का पूर्ण और उत्कृष्ट रूप मिलता है। इन्होंने सौर्य के बाहरी और भीतरी दोनें रूपों का चित्रण किया है। रूप सौन्दर्य चित्रण के विविध रूप विद्यापति की पदावली में मिलते हैं। विद्यापति ने राधा-कृष्ण दोनों का ही रूप-सौन्दर्य चित्रित किया है, किन्तु राधा का विशेष राधा को कवि ने अपरूप, अपूर्व, अभिरामा आदि कहा है। राधा अनुपम सुन्दरी है, उसके सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता। विद्यापति कहीं तो उस रूप की छटा की अनुभूति के सम्बन्ध में पूछने तक की मनाही करते हैं- पूछहु जनु कहीं और कहीं स्वयं असमर्थ हो जाते हैं- जत देखल तत कहए न पारिअ। कभी इतना अभिभमत हो जाते हैं- कि आरे, की कहब आदि शब्दों का सहारा लेते हैं।शास्त्रीय परम्परा के अनुसार चन्द्रमा, कमल, हरिन, कोकिल, भ्रमर, चकोर, मोर, गजराज, कनक, कदलि, बिम्बाफल, दाड़िम, खुजन आदि सौन्दर्य के प्रतिमान रहे हैं। ये सभी राधा के अंग-प्रत्यंगों के उपमान बने हैं-

हरिन इन्दु अरविन्द करिनि हेम, पिक बूझल अनुमानी।
नयन बदन परिमल गति तन रूचि, अओ अति सुललित बानी।
कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल, ता अरूझायल हारा।
जनि सुमेरू उपर मिलि उगल, चाँद बिहुन सब तारा।
लोल कपोल ललित मनि कुंडल, अधर बिम्ब अधजाई।
भौंह भ्रमर प्रसापुट सुन्दर, से देखि कीर लजाई।'

सौन्दर्य की पराकाष्ठा यह है कि रूप के प्रतिमान भी राधा के रूप से लज्जित होकर कहीं जा छिपे-

'कबरी-भय चामरि गिरि-कन्दर मुखभय चाँद अकासे।
हरिन नयन भय, सर-भय कोकिलगतिभय गज बनवासे।
कुचभय कमल-कोरक जल मुँदिरहु।घट परवेस हुतासे,
दाड़िम सिरिफल गगन वास करू ।सभु गरल कर ग्रासे
भुजभय पंक मृनाल नुकाएल। कर-भय किसलय काँपे ।।'

यौवन के आगमन के साथ नायिका के अंगों में आ रहे परिवर्तन का वर्णन करने के लिए विद्यापति ने अनेक रूपक, उपमा तथा उत्प्रेक्षाओं की योजना की है-

उरहि अंचल झांपि चंचल आप पयोधर हेरु

पौन पराभव मरद घन जानि थुल बेकत केयल सुमेरु।

अर्थात् जैसे शरद ऋतु के श्वेत बादल पवन से पराजित होकर पर्वत का आकार बना देते हैं, उसी प्रकार नायिका का लहराता हुआ श्वेत ऑचल उभरे स्तनों को प्रकाशित कर दे रहा है। इनकी राधा का सौन्दर्य सचेष्ट, हाव-भाव युक्त है। राधा की प्रत्येक भाव-भंगिमा कृष्ण को आकुल-व्याकुल करने वाली है। राधा का रूप ही नहीं, कृष्ण का रूप भी अपूर्व है, उसे देखते हुए नेत्र अघाते नहीं- जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल, में मानव राधा-कृष्ण के रूप को 'अपरूप' कहती है,जिसका वर्णन सुनकर लोगों को सहसा विश्वास न होगा, उसे देखते हुए राधा लज्जा और आकर्षण की द्विधा के काँटों में गिर पड़ी "

कान्ह हेरल छल मन बड़ साध।कान्ह हेरइत भेलएत परमाद।।
तबधरि अबुधि सुगुधि हो नारि। कि कहि कि सुनि किछु बुझय न पारि।।

दूतियाँ राधा और कृष्ण दोनों का वर्णन एक-दूसरे से करती हैं। विद्यापति को अपरूप का कवि कहा जाता है। उन्होंने स्थान-स्थान पर अपरूप तथा इसके समानार्थी शब्दों का प्रयोग किया है।

गीति तत्व - गीति-काव्य कविता का सर्वाधिक लोकप्रिय और परम्परा-प्रशंसित रूप है। गीत मानव सभ्यता के साथ जुड़ा है, अत: जैसे-लैसे मानव सभ्यता अपना रूप बदलती रही और विकसित होती गयी,वैसे ही वैसे गीत भी अपने विभिन्न नाम-रूपों में लोक व साहित्य में स्थान पाते रहे। हीगेल के मत में गीति-काव्य का कवि जगत् के सारे तत्वों को अपने में समाहित करता है,अपने वैयक्तिक प्रभाव से इसे पूर्णत: आत्मसात् करता है। और इस आत्मपरकता को सुरक्षित करने वाली शैली में अभिव्यक्त करता है।भारतवर्ष में गीत की परम्परा वेदों के समय से चली आ रही है। सामवेद जो देव-स्तुति का आदि ग्रन्थ है की प्रत्येक ऋचा संगीत के नियमों से अनुशासित है। **सामवद क गान क आधार पर ही राग-रागनियॉ, उनका रंग-रूप, स्वर-ताल, दशकाल प्रभाव, वाद्य-यंत्र आदि का निरूपण हुआ। (आनन्दप्रकाश दीक्षित, 45)** संस्कृत साहित्य में गीति तत्व की प्रधानता है। महाकवि कालिदास के 'ऋतु संहार' और 'मेघदूत' को गीति काव्य की श्रेष्ठ रचनाऍं माना जाता है। जयदेव की गीत गोविन्द तो संस्कृत गीति-काव्य की सर्वोत्तम रचना है। हिन्दी में गीतिकाव्य की प्राचीनतम कृति 'सरहपा' की रचनाऍं हैं। सिद्ध लोग गा-गाकर अपने मत और अनुभूतियों का प्रचार किया करते थे। इनके गीत संक्षिप्त हुआ करते थे। नाथपन्थी साधुओं ने भी गीति-शैली अपनाई इनके गीत अपेक्षाकृत लम्बे हैं। **वदों में गीत क दो प्रकार मिलत हैं- ऋक् और गाथा। सिद्धों क गीत प्रथम प्रकार क हैं और नाथों क दूसरी प्रकार क हैं। (आनन्दप्रकाश दीक्षित, 45) ई डब्ल्यू हापकिन्स** ने प्राचीन भारतीय गीति-काव्य को चार भागों में विभाजित किया है। पहले में धाम्रिक

और वीरगाथात्मक गीतियॉं, दूसरे में भक्तित्व प्रधान गीतियॉं, तीसरे में सहज प्रेमगीत और चौथे में ऐसे प्रेमगीत हैं जिनमें आध्यात्मिकता और रहस्य के साथ वासना के रंगों से रंजित अत्यंत गहन अरैर उलझे हुए हैं। (वर्धमान 87) हिन्दी में गीति-काव्य रचना का आरम्भ श्रृंगार एवं शौर्य की परिभूमि पर हुआ है। इसकी झलक हमें बीसलदेव रासो और जगनिक के आल्हा खण्ड में मिलती है। आल्हा खण्ड को विद्वान कथात्मक गीत का उत्कृष्ट रूप मानते हैं। अपभ्रंश की रचनाओं के बाद गीति-शैली का अच्छा नमूना खुसरो की रचनाओं में मिलता है। खुसरो स्वयं अच्छे गायक और संगीत-कला के आचार्य थे। खुसरो के पश्चात् हिन्दी गीतकारों में पहला नाम विद्यापति का है। हम विद्यापति को हिन्दी गीति-काव्य परम्परा का आदि-प्रवर्तक भी कह सकते हैं। आनन्द प्रकाश दीक्षित के अनुसार साहित्य और लोकमानस दोनों में विराजमान विद्यापति की पदावली ही हिन्दी की आदि गीति-शैली होने का दावा कर सकती है।विद्यापति से पहले के सिद्धों और नाथों के गीत भाव और शिल्प दोनों ही दृष्टि से अपनी परम्परा नहीं बना सके, यहाँ तक कि वे सिद्धांत पक्ष में निर्गुण सन्तों को प्रभावित करते हुण् भी अपने गीति-शिल्प का प्रभाव उन पर नहीं डाल सके। उनका गीति-शिल्प उनके साथ ही समाप्त हो गया।मध्ययुगीन सन्तों ने अपना गीति-काव्य विद्यापति के ही आधार पर रचा है।रीतिकाल में आकर यह गीति-धारा प्राय: लुप्त दिखाई देती है, किन्तु भारतेन्दु के उदय के साथ इसका पुनरोदय होता है जो आज भी विविध नामरूपों में निरंतर प्रवहमान है। गीति-तत्वों के आधार पर विद्यापति के काव्य की परख के लिए तीन बातें ध्यान में रखने योग्य हैं-1.गेयता 2..भाव-प्रसार और 3.प्रभाव-सीमा

गयता - "गीति-काव्य व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दु:खात्मक अनुभूति का वह शब्द-रुप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके ।" महादेवी वर्मा विद्यापति के सभी में गेयता और नाद-सौन्दर्य है। इनके पद अधिकांशत: लघु आकार के हैं तथा मिथिला में आज भी विवाह तथा मांगगलिक अवसरों पर गाये जाते हैं। विद्यापति के गीत पूर्णतया संगीतात्मक हैं। उनमें अपेक्षित लय में स्वर-ताल है। स्वरों का आरोह-अवरोह अनुभूतियों को उकसाता है। उनकी संगीत भावना में सहज आकर्षण है। कोमलकांत मधुर शब्दावली का प्रयोग हुआ है। नाद-सौन्दर्य के लिए उन्होंने सानुप्रास शब्दों की पुनरुक्ति या द्विरुक्ति और गुण या क्रिया से सम्बधित शब्दों का उपयोग किया है। जैसे-

जय जय भैरवि असुर-भयाउनि, पशुपति भामिनी माया।
सहज सुमति वर दिअ हे गोसाऊनि, अनुगति गति तुअ पाया।।

वासर रैन सवासन शोभित, चरण चन्द्रमणि चूडा।
कतओक दैत्य मारि मुख मेलल, कतओ उगलि कय कूडा।।

साँवर वरन नयन अनुरंजित, जलद जोग फूल कोका।
कट-कट विकट ओठ पुट पांडरि, लिधुर फेन उठि फोका।।

16.8 मुक्तक काव्य

भारतीय काव्यशास्त्रकारों ने रूप-रचना के अनुसार काव्य के दो मुख्य भेद किये हैं- प्रबन्ध और मुक्तक। प्रबन्धकाव्य में प्रतिपाद्य विशयवस्तु का पमर्वापर सम्बन्ध रहता है, जबकि मुक्तक में पूर्वापर प्रसंग का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। मुक्तक काव्य में निम्नलिखित गुण होने चाहिए-

1. पूर्वापर सम्बन्ध से मुक्त हो। 2. रसाभिव्यक्ति में सहायक हो।
3. संक्षेप में भाव-प्रकाश करता हो। 4. केवल एक ही छंद में आबद्ध हो।

विद्यापति की पदावली एक मुक्तक काव्य रचना है। विद्यापति ने न केवल मुक्तक की शैली को अपनाया है बल्कि उसमें सफलता भी प्राप्त की है। उनका प्रत्येक पद एक स्वतंत्र इकाई है। प्रत्येक पद में एक स्वतंत्र और पूर्ण भाव है। विद्यापति ने आशा-निराशा, मिलन-विरह, उत्कंठा, अनुराग, अभिसार, संयोग, रति, मान-मनुहार आदि के अनेक स्वतंत्र चित्र उकेरे हैं। कहीं अज्ञात यौवन की झॉकी है, तो कहीं सद्य:स्नाता की छवि। कहीं प्रकृति-चित्रण है, कहीं संयोग की छटा है तो कहीं विरह की ज्वाला, कहीं शिव-स्तुति है तो कहीं देवी-वन्दना। प्रत्येक परिस्थिति और प्रत्येक चित्र अपने भिन्न कलेवर में है। विद्यापति को रससिद्ध कवि कहा जा सकता है। श्रृंगार-रस की अत्यंत सूक्ष्म और गहन अनुभूतियॉ विद्यापति के काव्य में विद्यमान हैं। रूप-सौन्दर्य, कौतुक, छलना, नखशिख, अभिसार आदि के प्रसंग पाठकों के मन में भिन्न-भिन्न भावानुभूति जगाकर रसाप्लावित कर देते हैं।

सम्पूर्ण भाव-चित्र को संक्षेप में वर्णित कर देना विद्यापति के काव्य की विशेषता है। एक छोटे से पद में लोक-गीत का भाव और भावोद्दीपन किस प्रकार हो सकता है, इसे निम्न पद से भली प्रकार समझा जा सकता है।

कर धर करु मोहे पारे, देव मैं अवरूब हारे कन्हैया।
सखि सब तेज चील गेलो, न जानूं कौन पथ भेलौ,कन्हैया
हम न जाएब तुअ पासे, जाएब ओघट घटे, कन्हैया।
विद्यापति एहो भाने गुजरि भजु भगवाने कन्हैया।।

एक ही छंद में आबद्ध होने का अर्थ है एक भाव की अभिव्यक्ति के लिए एक ही पद अपने आप में पूर्ण हो। मुक्तक के अनेक नामरूप हो सकते हैं- गीत, अनुगीत, प्रगीत, गीति। दोहा, छप्पय, सवैया, सोरठा, पद किसी भी शैली में उसे लिखा जा सकता है। विद्यापति का एक भाव एक ही पद में आबद्ध है। एक प्रकार के भाव-चित्र एकाधिक पदों में मिलते हैं, लेकिन अभिव्यक्ति की दृष्टि से वह पूर्णरूप से स्वतंत्र है। इतना ही नहीं अपनी भाव-संकुलता के कारण एक पद पढ़ने के बाद दूसरा पद पढ़ने की चाह जगती है।

16.9 कलापक्षीय विशेषतायें

भाव काव्यपुरुष की आत्मा है और शैली उसका शरीर। शैली विचारों का दृश्यमानर रूप है। रचनाकार जो कुछ देखता-सुनता, सोचता-समझता है और अनुभव करता है उसे अभिव्यक्त करना चाहता है। सामान्यतया शिल्प या शैली अथवा कलापक्ष के अन्तर्गत कवि की भाषा, अलंकार और छंदों की परख की जाती है। कलापक्ष के अन्तर्गत यह देखने की बात है कि कवि अपने भावों और विचारों को कितनी कलात्मकता और बिम्बात्मकता के साथ प्रस्तुत कर सकता है। विद्यापति का भाव-पक्ष जितना गहन तथा विस्तृत है, उनका शिल्प उसे अभिव्यक्ति देने में उतना ही समर्थ है।

भाषा शली - विद्यापति का भाषा पर असाधारण अधिकार था। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अवधी, मैथिली, बंगला आदि अनेक भाषाओं के पंडित होने के कारण उनका शब्द-भेडार भी विस्तृत था प्रतीक-योजना और शब्द, पद तथा वाक्ययोजना में भी वे कुशल थे। शब्द शक्ति का उन्हें अच्छा ज्ञान था और इसीलिए ये भावानुकूल भाषा का निर्माण कर लेते थे। इनकी भाषा में ओज, प्रसाद, माधुर्य तीनों गुण विद्यमान हैं। इनकी भाषा लोकभाषा के निकट थी इसलिये सरल, सरस और मधुर है। विद्यापति शब्दों के मर्म से परिचित थे, इसीलिए अर्थगर्भित शब्द-योजना में उन्हें कुशलता प्राप्त थी। डॉ. आनन्द प्रसाद दीक्षित के अनुसार ' विद्यापति का शिल्प बड़े मनोवैज्ञानिक आधार पर निखरा था। वे लोक-मानस के बड़े पारखी थे, इसीलिए उन्होने अपनी कला को भी लोक-कला के निकट रखा।उन्होने लोक–भाषा अपनाई, उसे लोक-हृदय ओर लोक-कण्ठ में विराजमान लोकोक्तियों और मुहावरों से सजाया और लोक-गीत की तरंगों पर बिठा कर लोगों के इस लोक के आनन्द(श्रृंगार और प्रेम) से लेकर लोकोत्तर आनन्द(भक्ति) तक के लिए मुखरित कर दिया।(107 पृ0) युद्ध प्रसंगों तथा शक्ति-स्वरूपा दुर्गा देवी की स्तुति में इनकी भाषा में ओजगुण विद्यमान है। इस शैली के अनुकूल समासयुक्त शब्दावली तथा संयुक्ताक्षरों का प्रयोग हुआ है-

साँवर वरन नयन अनुरंजित, जलद जोग फूल कोका।
कट-कट विकट ओठ पुट पांडरि, लिधुर फेन उठि फोका।।

घन-घन घनन घुँघरू कत बाजय, हन-हन कर तुअ काता।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक, पुत्र बिसरू जनु माता।।

साधारण वर्णनों, कथा-प्रसंगों आदि में प्रसाद-गुण पूर्ण शब्दावली का प्रयोग मिलता है , जिसमें न समास है, न कर्णकटु शब्द और न ही संयुक्ताक्षर का प्रयोग हुआ है। शब्दों के दोहराव और आनुप्रासिकता से माधुर्य की सृष्टि हुई है-

नन्दक नन्दन कदम्बक तरु तर, धिरे-धिरे मुरलि बजाब।
समय संकेत निकेतन बइसल, बेरि-बेरि बोलि पठाव।।

शब्द-शक्ति - सार्थक शब्द-योजना विद्यापति की भाषा का एक और गुण है। जैसे 'कामिनी करए सनाने। हेरतहि हनए पंचबाने। ' में कामिनी शब्द बड़ा सार्थक है। जिसमें काम का निवास हो वही कामिनी है, उसके कटाक्ष ही कामदेव के पॉच बाणों के समान हैं। एक ही शब्द को भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग कर अर्थ-विस्तार, प्रतीकात्मकता और बिम्बात्मकता विद्यापति के काव्य की विशेषता है। विद्यापति अपनी सजग और सूक्ष्म कल्पना द्वारा भावों का सजीव बिम्ब प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त हैं। उनकी पदावली में प्रत्येक पद में लाक्षणिकता और व्यंग्यात्मकता का गुण दिखाई देता है। वे ऐसी शब्द योजना करते हैं कि अनुभूति साकार हो उठती है।प्रतीकात्मकता अथवा बिम्बात्मकता में अप्रस्तुत विधान विद्यापति के काव्य की एक और विशेषता है। विद्यापति अपने काव्य में दो प्रकार से अप्रस्तुत का उपयोग करते हैं- एक वास्तविक और दूसरे कल्पनाजन्य। वास्तविक अप्रस्तुत को उपमा के अन्तर्गत रखा जा सकता है और कल्पनाजन्य को उत्प्रेक्षा के अन्तर्गत। विद्यापति के काव्य में रूपक, अपह्नुति अपन्हुति , अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, पर्यायोक्ति आदि। वैसे विभावना, निदर्शना, रूपक, ललितोपमा, तुल्योगिता, सन्देह, भ्रम आदि का भी उपयोग किया है; किन्तु उन्हें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक ही विशेष प्रिय हैं। कालिदास की भॉति ही विद्यापति की उपमाएँ अनूठी और अछूती हैं, उनकी उत्प्रेक्षायें कल्पना के उत्कृष्ट विकास का उदाहरण हैं। विद्यापति ने रीतिकालीन कवियों की भॉति ही किसी-किसी पद में अनेक अलंकारों का प्रयोग भी किया है, जैसे-

माधव कि कहब सुन्दरि रूपे
कतेक जतन विहि आनि समारल देखलि नयन सरूपे।
राज चरण युग सोभित गति गजराजक भाने।
कनक कदली पर सिंह समारल तापर मेरु समाने।
मेरु उपर दुइ कमल फुलायल नाल बिना रुचि पा।
मनिमय हार धार वह सुरसार ते नहिं कमल सुखाई।
अधर बिम्ब सन दसन दाड़िम-विजु रवि ससि उगथिक पासे।
राहु दूरि बसु नियरो न आवधि तैं नहंि करधि गरासे।
सारंग नयन, बचन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने।
सारंग उपर उगल दस सारंगकेलि करथि मधु पाने।
भनहि विद्यापति सुन कर यौवति एहन जगत नहिं जाने।
राजा शिवसिंघ स्पनारायण लखिमादइ प्रति माने।

इस पद में एक साथ अनुप्रास, उपमा, रूपकाशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, विशेषोक्ति तथा वस्तुप्रेक्षा का प्रयोग मिलता है

भाव-प्रसार - भाव-प्रसार की दृष्टि से विद्यापति की पदावली अत्यंत समृद्ध है।एक ओर उनके गीत भक्ति-भाव की सात्विकता लिए हुए हैं, तो दूसरी ओर श्रृंगार की माधुरी से मडित हैं, एक ओर वीर-काव्य की ओजस्विता है तो दूसरी ओर चमत्कारपूर्ण कौतूहल की सृष्टि हुई है। भक्ति-भाव में भक्त की दीनता और आराध्य के चरणों में समर्पण विद्यापति के भक्तिकाव्य में सर्वत्र विद्यमान है। 'निरधन जानि के हरहु कलेस' 'हम सम जग नहीं पतिता' ' तुम सम उधार न दोसर' 'दया कर सूलपानी' आदि पंक्तियों में कवि का यही आत्मसमर्पण और दैन्यभाव मुखरित हुआ है।

विद्यापति पर संस्कृत के गीतकाव्यकारों में सर्वाधिक प्रभाव गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव का पड़ा है। उनके गीतों में जयदेव की शैली के साथ-साथ भावों का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। इसीलिए उन्हें 'अभिनव जयदेव' भी कहा जाता है। श्रृंगार के पदों में विद्यापति ने हृदय के भावों के उद्वेग का मार्मिक एवं प्रभावशाली ंग से चित्रण किया है । उनके पदों में संगीतात्मकता, भाव-प्रवणता तथा माधुर्यव्यंजक कोमलकान्त पदावली का चरम उत्कर्ष है। श्रृंगार के पदों के बारे में इसी इकाई में पहले चर्चा हो गई है। हिन्दी गीति-काव्य परम्परा में विद्यापति का स्थान निधार्रित करते हुए डा0 गुणानन्द जुयाल कहते हैं-" विद्यापति के गीतों में यदि एक ओर लोकभाषा की तरलता और सुकुमारता है तो दूसरी ओर भावों की अनुपम माधुरी और साहित्य की अपूर्व सौन्दर्यमयता भी है। वे हिन्दी के आदि गीतकार हैं तो परवर्ती गीतिकारों के आदि गुरू भी हैं। उनके गीत हिन्दी साहित्य की अनूठी सम्पत्ति हैं।" **प्रभाव-सीमा -** विद्यापति के गीतों की प्रभाव-सीमा भी विस्तृत है। विद्यापति के गीत आम-जन और भक्त तथा वैरागी और संसारी सभी में समान रूप से लोकप्रिय हैं। मिथिला का लोकमानस आज भी उनके गीतों से उद्वेलित है। यह उनकी लोकप्रियता का ही प्रमाण है कि आज उनके गीत अंतरजाल (इंटरनेट) में 'यू ट्यूब' में भी उपलब्ध हैं। आप उन्हें सुनकर इन गीतों का आनन्द भी ले सकते हैं और विद्यापति के काव्य की बारीकियॉ भी समझ सकते हैं। विद्यापति लोकप्रिय कवि हैं। उनकी लोकप्रियता ही है जिसके कारण उन्हें हिन्दी के साथ-साथ बंगभाषी भी अपना मानते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे कबीर को हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपना कहते हैं। कुछ समय तक तो ये बंगाली कवि ही माने गए, क्योंकि उनकी विचारधारा बंगाल की वैष्णव परम्परा से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। मिथिला के होने के कारण उन्हें मिथिला का कवि भी माना जाता रहा, इसीलिए उन्हें मैथिल कोकिल के नाम से अभिहित किया गया।

16.10 सारांश

इस इकाई में आपने विद्यापति पदावली के आधार पर उनके काव्य में व्यंजित भावों और उसकी कलात्मकता से परिचित हुए। आपने उनके काव्य की विशेषताओं को समझा। उनके काव्य में व्यक्त भावों तथा अभिव्यक्ति के वैशिष्ट्य से आप परिचित हुए। आपने जाना कि विद्यापति के पदों को व्यापक लोकप्रियता मिली। विद्यापति आम जनता के कवि थे। हिन्दी के लोकप्रिय कवियों में इनका स्थान अग्रणी है। इनके गीतों में व्यक्त भक्ति और श्रृंगाररस के संदर्भ विविध आलोचकों के मतों का आपने अध्ययन किया। आपने इनकी भाषा और कला-सौष्ठव को जाना तथा इनकी लोकप्रियता के कारणों को जाना। अब आप विद्यापति के साहित्य की आलोचनात्मक व्याख्या कर सकते हैं तथा हिन्दी साहित्य में विद्यापति का स्थान निर्धारित कर सकते हैं।

16.11 शब्दावली

अपरूप	:	अवर्णनीय अथवा वर्णनातीत सौन्दर्य
मुक्तक काव्य	:	मुक्तक काव्य ऐसी रचना को कहते हैं जिसमें रचना का प्रत्येक पद स्वतंत्र तथा अपने में पूर्णता लिये होता है। इसमें एक पद का दूसरे पद से सम्बंध नहीं होता।मुक्तक काव्य को पूर्वापर सम्बन्ध से मुक्त , रसाभिव्यक्ति में सहायक , संक्षेप में भाव-प्रकाश करने वाला तथा केवल एक ही छंद में आबद्ध होता है।
वय:सन्धि	:	किशोरावस्था, बाल्यावस्था एव यौवनावस्था के मिलन का समय।
अभिसार	:	प्रेमी-प्रेमिका का मिलन
खंडिता	:	नायिका का एक रूप
कलहांतरिता	:	नायिका का एक रूप
नख-शिख वर्णन	:	नायिका के अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य का वर्णन
पुनरुक्ति	:	किसी बात को बार-बार कहना द्विरुक्ति : किसी बात को दो बार कहना

16.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

अ. मुक्तक

ब. चौदहवीं

स. शारदा चरण मिश्र

द. विद्यापति पदावली

2. अ. विद्यापति ने शास्त्रीय परम्परा के अनुरूप विरह की स्मरण, गुण-कथन, अभिलाषा, चिंता, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, मूच्र्छा ,मरण आदि दशाओं का वर्णन किया है।

ब. मधुर रस का वस्तु शिल्प श्रृंगार रस जैसा ही होता है, इसमें भाव का कुछ अंतर होने से यह भक्ति कहलाता है, इसका स्थायी भाव कृष्ण विषयक रति है।

स. इस पंक्ति में राधा की सखी कृष्ण की विकलता के बारे में राधा से कहती है।

3. अ. (√)

ब. (×)

स. (√)

16.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

जुयाल,डा. गुणानन्द विद्यापति का अमर काव्य,साहित्य निकेतन

द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड 3, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

दीक्षित, डॉ. आनन्दप्रकाश विद्यापति, साहित्य प्रकाशन मंदिर, ग्वालियर

नागार्जुन , नागार्जुन ग्रन्थावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारणी सभा, काशी

श्यामसुन्दरदास डॉ., हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारणी सभा, इलाहाबाद

16.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री

वर्मा, डा. धीरेन्द्र हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल,वाराणसी

सिंह,डॉ. शिवप्रसाद विद्यापति, विद्यापति, लोकभारती प्रकाशन

बेनीपुरी,रामवृक्ष विद्यापति पदावली, पुस्तक भंडार लहरिया सराय,बिहार

झा,रमानाथ विद्यापति, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

16.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. विद्यापति के काव्य में श्रृंगार और भक्ति की विवेचना कीजिए।विद्यापति भक्त कवि हैं अथवा श्रृंगार के कवि स्पष्ट कीजिए।
2. विद्यापति का सम्पूर्ण जीवन परिचय देते हुए उनकी काव्यगत विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

इकाई 17 अमीर खुसरो : परिचय ,पाठ और आलोचना

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 अमीर खुसरो: जीवन एवं साहित्य
17.3.1 अमीर खुसरो का जीवन परिचय
17.3.2 अमीर खुसरो का साहित्य
17.4 अमीर खुसरो: पाठ एवं आलोचना
17.4.1 अमीर खुसरो: पाठ
17.4.2 अमीर खुसरो: आलोचना
17.5 सारांश
17.6 शब्दावली
17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
17.9 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के अंतर्गत सम्मिलित है. इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने हिन्दी साहित्य के इतिहास के उद्भव ,उसकी सम्पूर्ण परम्परा एवं आतंरिक प्रक्रिया को समझा. इस के अलावा आपने हिन्दी कविता के आरंभिक काल , उसकी सम्पूर्ण पृष्ठभूमि एवं उसकी काव्य-संवेदना को भी समझा .

यह इकाई अमीर खुसरो के जीवन एवं साहित्य से संबन्धित है। इसमें आपका परिचय अमीर खुसरो के जीवन और साहित्य से कराया जा रहा है। इस भाग में अमीर खुसरो के जीवन, राजाओं के राजाश्रय एवं साहित्य कर्म पर विचार किया जायेगा। इस भाग में आप सकेंगे की खुसरो मात्र एक कवि ही नहीं थे अपितु एक पहुँचे हुए सूफी साधक भी थे। उनकी राजनैतिक समझ जितनी स्पष्ट थी उससे कहीं ज्यादा जन-सामान्य के रीति-रीवाजों की परख थी। इस बहुमुखी विशेषता के कारण ही उनको 'तूती-ए-हिन्द' की उपाधि से विभूषित किया गया।

17.2 उद्देश्य-

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

1. अमीर खुसरो का जीवन चरित समझ सकेंगे .
2. अमीर खुसरो के काव्य को समझ सकेंगे .
3. खड़ी बोली हिन्दी के विकास में उनका योगदान समझ सकेंगे.
4. सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत अमीर खुसरो का महत्व एवं उनकी प्रासंगिकता का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

17.3 अमीर खुसरो : जीवन एवं साहित्य

17.3.1 अमीर खुसरो का जीवन परिचय-

अमीर खुसरो का जन्म 1253 ई0 (652 हि0) में उ0प्र0 के एटा जिले के पटियाली कस्बे में हुआ था। इनके पिताजी मध्य एशिया की लाचन जाति के एक तुर्क सरदार थे। चंगेज खाँ के आक्रमणों से पीड़ित होकर उन्होंने बलबन के शासनकाल में भारत में शरण लिया। खुसरो की माँ बलबन के एक मंत्री इमादुतुल मुल्क की लड़की, भारतीय मुसलमान थी। खुसरो मात्र सात वर्ष के थे

तभी इनके पिता की मृत्यु हो गयी, परन्तु इससे इनकी शिक्षा-दीक्षा पर कोई असर नहीं पड़ा। खुसरो ने अपने समय के विज्ञान और दर्शन में शिक्षा ग्रहण किया और काव्य-लेखन में रूचि पैदा की। बीस वर्ष की अवस्था तक वे एक कवि के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे ।कवि होने के कारण खुसरो कपोल-कल्पना में जीवित रहने वाले व्यक्ति न थे । सामाजिक जीवन से उनका गहरा सरोकार था और वे व्यवहारिकता में भी दक्ष थे ।कवि होने के कारण जहाँ उनके पास घोर कल्पनाशक्ति थी वहीं सामाजिक होने के कारण व्यवहारकुशल और कूटनीतिज्ञ भी थे । इनके व्यक्तित्व की विशेषता बतलाते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि ''ये बड़े ही विनोदी, मिलनसार और सहृदय थे , इसी से जनता की सब बातों में पूरा योग देना चाहते थे ।

आदिकालीन परम्परा के अनुसार कलाकार और बुद्धिजीवियों के जीविका का सर्वोत्तम उपाय राजाश्रय था। अमीर खुसरो ने भी अपने समकालीन राजाओं का आश्रय ग्रहण किया। इन्होंने दस से अधिक राजाओं के आश्रय में रहकर जीवन-यापन किया। इनके व्यक्तित्व की मुख्य विशेषता यह है कि इतने अधिक शासकों के राजाश्रय में रहने के बावजूद वे कभी भी दरबारी राजनीति के कुचक्रों का अंग नहीं रहे। इन सबसे मुक्त रहते हुए वे एक कवि, संगीतज्ञ, कलाकार और सैनिक के रूप में अपना जीवन-यापन करते रहे। खुसरो प्रसिद्ध सूफी संत निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे । उनके अन्दर अपने समय की राजनीति, धर्म और लोकव्यवहार को लेकर एक अजीब तरह का अन्तर्विरोध पाया जाता है। इस पर प्रकाश डालते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है ''खुसरो में अनेक अन्तर्विरोध थे । एक ओर वे मलिक छज्जू जलालुद्दीन, अलाउद्दीन खिलजी, तुगलक आदि के राजकवि थे तो दूसरी ओर सूफी फकीर निजामुद्दीन औलिया के पट्ट शिष्य। एक ओर दरबार था तो दूसरी ओर मठ। एक ओर वे कट्टर बादशाहों और मुल्लाओं से घिरे थे तो दूसरी ओर सूफी फकीरों से। एक ओर वे फारसी लिखते थे तो दूसरी ओ खड़ी बोली में। एक ओर अलाउद्दीन की कट्टरता की प्रशंसा करते थे तो दूसरी ओर सूफी फलसफे के प्रकाश में वीरानगी के सुलतान पर मरसिया पढ़ते थे ।''खुसरो एक साथ कई विधाओं के जनक थे। इस संदर्भ में उनको बहुमुखी प्रतिभा का धनी कहा जाता है। वे बहुभाषाविद्, संगीतकार और इतिहासकार थे । भाषा के संदर्भ में वे अरबी, फ़ारसी, तुर्की में पारंगत थे । संस्कृत भाषा का उन्हें ज्ञान था, हिन्दी, उर्दू साहित्य के वे प्रणेता माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त वे भारत की कई क्षेत्रीय भाषाओं के भी जानकार थे । संगीत की दुनियाँ में भी उन्होंने कई आविष्कार किया। इसमें राग-रागिनियों से लेकर वाद्ययंत्र् तक सभी सम्मिलित हैं। वे संगीत के क्षेत्रों में अपनी परम्परा के साथ-साथ कई मौलिक उद्भावना भी की है। इन्होंने अरबी, फारसी और हिन्दी लयों के मिश्रण से कई रागों का आविष्कार किया जिसमें मुख्यतया-मजीर साजगिरी, एमन, उषआक, सनम है। इसके अतिरिक्त खुसरो ने सितार और ढ़ोलक जैसे वाद्य यंत्रों का भी आविष्कार किया।

कवि, संगीतज्ञ और भाषाविद होने के साथ-साथ अमीर खुसरो प्रसिद्ध इतिहासकार भी थे । इनका प्रसिद्ध इतिहासग्रन्थ 'तुगलकनामा' है। इसमें उन्होंने दिल्ली नरेश गियासुद्दीन तुगलक के समय का इतिहास लिखा है। इसके अतिरिक्त उन्होंने बहुत सी ऐसी मसनवियों की रचना की है जो

कि इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इनमें मुख्यतः- किरानुस्सादैन, खिजर खाँ, नुहासिपहर और इशकिमह है। इन पुस्तकों के अध्ययन से आपको तात्कालीन जीवन तथा घटनाओं के संदर्भ में विशेष ज्ञान प्राप्त होगा। इन ग्रन्थों में आपको जीवन के ऐसे-ऐसे सांस्कृतिक तत्व प्राप्त होंगे जो कि प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थों में अप्राप्य है।अमीर खुसरो और उनके गुरू निजामुद्दीन औलिया का आपस में आत्मीय संबन्ध था। गुरु को अपने शिष्य के सद्व्यवहार और विद्वता पर गर्व था। शिष्य को अपने गुरु की आध्यात्मिकता और वैराग्य से लगाव था। इसलिए दोनों एक-दूसरे का बहुत आदर करते थे। कहते हैं कि जब निजामुद्दीन औलिया का देहान्त हुआ तो उस समय अमीर खुसरो गयासुद्दीन तुगलक के साथ बंगाल गये हुए थे। उन्हें जब अपने गुरु के मृत्यु की खबर मिली तो वे बंगाल से रोते-बिलखते हुए आये और पागल की भाँति निम्न दोहा पढ़ते हुये उनकी कब्र पर बेहोश होकर गिर पड़े-

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।

चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस।।

इस घटना के पश्चात् खुसरो के पास जो कुछ धन-सम्पत्ति थी उसको गरीबों में बाँट दिया और स्वयं काला कपड़ा पहनकर औलिया की मजार पर बैठे रहते थे। गुरू की मृत्यु से वे इतने आहत हुए की छः माह के अंदर ही स्वयं स्वर्ग सिधार गये (1325 ई0)। दोनों गुरू शिष्य की कब्र दिल्ली में आस-पास बना दी गयी। आज भी हर साल उनकी कब्र पर उर्स होता है और मेला लगता है।

17.3.2 खुसरो का साहित्य-

खुसरो हिन्दी साहित्य के आदिकालीन कवियों में प्रमुख हैं। आदिकालीन साहित्य में सर्वप्रथम उन्हीं की रचनाओं में खड़ी बोली का प्रयोग मिलता है। उन्होंने विभिन्न प्रकार के पुस्तकों की रचना की है। इसमें इतिहास, जीवनी, साहित्य प्रमुख हैं। खुसरो फारसी के उच्चकोटि के विद्वान थे और फारसी में उन्होंने बहुत-सी मसनवियों की रचना की है। इन मसनवियों के माध्यम से उन्होंने लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम का संदेश दिया है। उनकी कुछ प्रमुख मसनवियाँ इस प्रकार हैं- किरानुस्सादैन, नुहसिपहर, तुलकनामा, खम्स-ए- खुसरो ये सभी मसनवियाँ फारसी में लिखी गयी हैं। परन्तु इनका प्रभाव परवर्ती हिन्दी प्रेमाख्यान परम्परा के साहित्य पर देखा जा सकता है। इस दृष्टिकोण से ये महत्त्वपूर्ण हैं। हिन्दी में खुसरो की तीन रचनाओं का उल्लेख किया जाता है- खालिकबारी, हालात-ए-कन्हैया और नजराना -ए-हिन्दी। इसमें से मात्र खालिकबारी ही उपलब्ध है। अन्य पुस्तकों का सिर्फ नामोल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त हिन्दी में खुसरो की पहेलियाँ और मुकरियाँ प्रचलित हैं। खालिकबारी के भी सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का विचार है कि यह प्रामाणिक रचना नहीं है।

17.4 अमीर खुसरो: पाठ एवं आलोचना

17.4.1 अमीर खुसरो: पाठ

अमीर खुसरो ने हिन्दी भाषा में बहुत-से दोहे, पहेलियाँ, गीत, दो सुखने, कोसले इत्यादि की रचना की है। खुसरो को हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं का प्रथम कवि माना जाता है। वास्तव में वे फारसी के प्रसिद्ध कवि हैं। फारसी साहित्य में उनकी गणना महाकवि फिरदौसी, शेख सादिक और निजामी के साथ की जाती है। फलस्वरूप उनकी कविताओं में फारसी शब्दों की बहुलता पायी जाती है, वैसे उन्होंने कई स्थलों पर स्वयं को हिन्दी का कवि माना है-

तुर्क-ई-हिंदुस्तानिम मन, दर हिंदवी गोयम जवाब

शक्कर-ई-मिस्त्री न दारम कज़ अरब गोयम सुखन।

(अर्थात् मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ, मैं हिन्दवी में जवाब देता हूँ, मेरे पास कोई मिश्री शक्कर नहीं जिससे मैं अरबों की बात करूँ)।

दोह- अमीर खुसरो ने हिन्दी भाषा में बहुत-से दोहों की भी रचना की है। इन दोहों की विशेषता है कि उसका सामान्य अर्थ करेंगे तो उसमें श्रृंगार की प्रधानता दिखायी पड़ेगी परन्तु जब उसे सूफी मत के आलोक में देखेंगे तो उसमें आध्यात्मिक संदेश दिखायी पड़ेगा-

1. गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस,

चल खुसरो घर आपनें रैन भई चहुँ देस।

(यह दोहा खुसरो ने अपने गुरू औलिया की मृत्यु के पश्चात् लिखा था। इसका आशय यह है कि इस संसार में इंसान का एकमात्र मार्गदर्शक गुरू होता है। उसके न रहने पर मनुष्य के लिये सम्पूर्ण संसार अंधकारमय हो जाता है।)

2. खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग,

तन मेरा मन पीऊ का, दोउ भये एक रंग।

(यह दोहा सूफी मत के अनुसार आत्मा और परमात्मा के मिलन का संदेश देता है। आत्मा और परमात्मा के परस्पर साक्षात्कार के पश्चात् उनके मध्य का द्वैत समाप्त हो जाता है और साधक मस्त रहने लगता है। सूफी साहित्य की विशेषता होती है कि इसमें लौकिक स्त्री-पुरुष प्रेम के माध्यम से

कवि अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति करता है। उक्त दोहे में भी खुसरो ने इसी शैली का प्रयोग किया है।)

गज़ल- अमीर खुसरो को गजल का जन्मदाता माना जाता है। उनके हिन्दी गजलों में अभिनव प्रयोग देखने को मिलता है। इसमें उन्होंने एक पंक्ति फारसी की तो दूसरी पँक्ति साधारण बोलचाल की हिन्दी में लिखा है। ऐसे में उन्होंने अरबी, फारसी और हिन्दी के शब्दों का प्रयोग किया है-

जे हाल मिस्कीं मकुन लगाजल दुराय नैना बनाए बतियाँ।

के तावे हिजरां नदारम अय जाँ न लेहु कहे लगाय छतियाँ।।

शबाने-हिजराँ दराज चूँ जुल्फ बरोजे वसलत चूँ उम्र कोताह।

सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूं अंधेरी रतियाँ।।

(अर्थात् आँख छिपाकर और बातें बनाकर दुखियों की दशा की अवहेलना मत करो। ऐ मेरी जान, मैं विरह के सहने में असमर्थ हूँ। इसलिए क्यों नहीं छाती से लगा देतीं। विरह की राते जो जुल्फ की तरह लम्बी हैं, मिलन का दिन उम्र की तरह छोटा है। ये सखी ! जो मैं पिया को न देखूँ तो अंधेरी रातें कैसे काटूँ?)

पहलियाँ- अमीर खुसरो ने भारतीय लोक परम्परा में प्रचलित पहेली शैली को भी अपनाया है। पहेली खेल की तरह होता है जिसमें किसी वस्तु के समस्त लक्षण बता दिये जाते हैं, उत्तर देने वाले को लक्षण के आधार पर वस्तु को पहचानना होता है, जैसे-

1. श्याम बरन पीतांबर कांधे , मुरलीधर नहीं होय।

   बिन मुरली वह नाद करता है, बिरला बूझे कोय।। **(भौरा)**

2. एक पुरुष बहुत गुन भरा, लेटा जागे सोवे खड़ा।

   उलटा होकर डाले बेल, यह देखो करतार का खेल ।। **(चरखा)**

3. फारसी बोली आईना, तुर्की बोली पाईना।

   हिन्दी बोली आरसी आये, मुँह देखो जो उसे बताये।। **(दर्पण)**

मुकरिया- मुकरना अर्थात् नकारना, लोक प्रचलित वह शैली जिसमें उत्तर को नकार कर कुछ नवीन अर्थ प्रस्तुत करना। अमीर खुसरो ने बहुत-सी मुकरियों को भी लिखा है। यह भी पहेली के ही समान होता है। परन्तु इसका उत्तर कुछ अटपटा होता है, जिससे पहेली से इसमें भिन्नता आ जाती है-

1. वह आवे तब शादी होय। उस बिन दूजा और न कोय।

   मीठे लागैं वाके बोल। ऐ सखि साजन! ना सखि ोल।।

2. सारी रैन मोरे संग जागा। भोर भई तब बिछुड़न लागा।

   वाके बिछुड़त फाटे हिया। ऐ सखि साजन! ना सखि दिया।।

दोसुखना- दोसुखने में प्रश्नकर्ता किसी ऐसे दो प्रश्नों को पूछता है जिसका उत्तर एक ही होता है। उदाहरणार्थ-

1. जूता क्यों न पहना? समोसा क्यों न खाया? - तला न था।

2. पंडित क्यों पियासा? गदहा क्यों उदासा? - लोटा न था।

3. पान सड़ा क्यों? घोड़ा अड़ा क्यों? - फेरा न था।

गीत- अमीर खुसरो ने हिन्दी भाषा में बहुत-से गीतों की भी रचना की है। इसमें कुछ गीतों के अर्थ तो लौकिक हैं जबकि कुछ गीतों का अर्थ सूफी विचारधारा के अनुसार आध्यात्मिक है। उदाहरणार्थ-

1. बहुत कठिन है डगर पनघट की-

   कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी-

   मोरे अच्छे निजाम पिया-कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी-

   जरा बोलो निजाम पिया-पनिया भरन को मैं जो गयी थी-

   दौड़ झपट मोरी मटकी पटकी-बहुत कठिन है-

   खुसरो निजाम के बल-बल जाइये-लाज राखो मेरे घूँघट पट की-

2. काहे को ब्याही बिदेस रे-लयि बाबुल मोरे।

   भैया को दीनो महल दोमहलों , हमको दिया परदेस-

लखि बाबुल मोरे।

हम तोरे बाबुल बेले की कलियाँ, घर-घर माँगी जाये रे

लखि बाबुल मोरे।

डोली के परदा उठाकर जो देखा, आया पराया देस रे

लखि बाबुल मोरे।

अमीर खुसरो यूँ कहें तेरा धन-धन भाग सुहाग रे

लखि बाबुल मोरे।

निम्नलिखित गीत के संदर्भ में कहा जाता है कि खुसरो ने इसमें अपने गुरू औलिया के साथ दाम्पत्य भाव का रूपक बाँधकर आत्मा और परमात्मा का संबन्ध स्थापित किया है-

परबत बास मंगाव मोरे बाबुल नीका मड़ुवा छवावो री।
डोलिया फंदाय पिया ले चले हैं, अब संग कोई नहीं आवरी।।
गुडिया खिलौना ताक में रह गए, नहीं खेलन को दाव री।
निज़ामदीन औलिया बहिया पाकर चले , धरिहों वाके पाव री।।

17.4.2 आलोचना

हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में खुसरो का महत्वपूर्ण योगदान है। हिन्दी साहित्य से आशय उसकी अन्य क्षेत्रीय भाषाओं- ब्रज, अवधी, बुन्देली, भोजपुरी, मैथिली और खड़ी बोली का भी साहित्य है। परन्तु आज हिन्दी का प्रतिनिधित्व खड़ी बोली हिन्दी करती है। इस भाषा का साहित्य के रूप में पहला प्रयोग अमीर खुसरो के यहाँ मिलता है। विद्वानों का विचार है, इतनी परिमार्जित भाषा का प्रयोग साहित्य में अचानक नहीं हो सकता। खुसरो से पहले भी इसका प्रयोग होता रहा होगा, परन्तु जो साक्ष्य अभी प्राप्त होते हैं, उसमें सर्वाधिक प्राचीन साहित्य खुसरो का ही है। अतः जब तक अन्य कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता तब तक खुसरो को खड़ी बोली का पहला साहित्यकार माननें में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

खड़ी बोली को हिन्दवी, देहलवी अथवा हिन्दी नाम से सर्वप्रथम खुसरो ने ही सम्बोधित किया है- 'तुर्के हिन्दुस्तानियम मैं हिन्दवी गोयम जवाबी'। खुसरो ने खड़ी बोली का नामकरण 'हिन्दी' अपने ग्रन्थ 'खालिकबारी' में किया है। इस पुस्तक में 'हिन्दवी' शब्द 30 बार और हिन्दी शब्द 5 बार प्रयुक्त किया गया है। कुछ लोगों का विचार है कि इतिहास प्रसिद्ध जिस खुसरो का उल्लेख किया

जाता है, वह हिन्दी का कवि था ही नहीं। उनके नाम से कुछ रचनाएँ प्रचलित हो गई हैं, जिन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। वास्तविकता क्या है, इसे प्रमाणिक ंग से नहीं सिद्ध किया जा सकता है, परन्तु जो कुछ साक्ष्य प्राप्त होते हैं, उनके आधार पर हम इस बात को स्वीकार कर सकते हैं कि खुसरो खड़ी बोली के आरम्भिक कवि थे ।हिन्दी भाषा से अमीर खुसरो का गहरा लगाव था, इसका प्रमाण उनके इस उद्धरण में निहित है-''हिन्दी फारसी से किसी प्रकार कम नहीं है। जो लोग हिन्दी का महत्व कम समझते हैं, वे नादान हैं। हिन्दी अरबी के समान है, क्योंकि इन दोनों में कोई मिश्रित नहीं है। शब्द-भण्डार और विचारों की दृष्टि से भी हिन्दी कम नहीं है। हिन्दी में बहुत-से ऐसे शब्द हैं, जो छोटे होने पर भी अर्थ की गम्भीरता रखते हैं। वे एक बूँद में समुद्र की शक्ति रखने वाले हैं। जिन लोगों ने हिन्दुस्तान की गंगा को नहीं देखा है, वे नील और दजला पर अभिमान कर सकते हैं। जिन्होंने केवल बुलबुल की सुन्दरता को देखना सीखा है, वे हिन्दुस्तान के तोते के महत्व को क्या समझ सकते हैं? मैं इन तीनों भाषाओं को जानता हूँ, इसलिए ऐसा कह रहा हूँ।''

अमीर खुसरो की एक महत्वपूर्ण पुस्तक 'खालिकबारी' है। यह शब्दकोश है। इसमें उन्होंने काव्यात्मक ंग से अरबी-फारसी-हिन्दी भाषाओं का अर्थ बतलाया है। इस पुस्तक की रचना उन्होंने मुहम्मद बिन तुगलक के लड़के को भाषा का ज्ञान कराने के लिये किया था। इस पुस्तक की प्रमाणिकता विवादास्पद है। विवादास्पद होने के बावजूद इस पुस्तक का बहुत महत्व है। आज से आठ-नौ सौ वर्ष पहले एक ऐसी पुस्तक जिसके माध्यम से व्यक्ति अरबी, फ़ारसी और हिन्दी का अर्थ समझ सके महत्वहीन नहीं हो सकती। हिन्दी भाषा के संबंध में इस पुस्तक में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया के कालगत रूपों की प्रमाणिक जानकारी मौजूद है।खालिकबारी में हिन्दी भाषा के जो छंद प्राप्त होते हैं उनमें लयभंग है। फारसी भाषा में जो छंद हैं, उनकी लयात्मकता मौजूद है। इस आधार पर स्पष्टतः हम कह सकते हैं कि इस पुस्तक की रचना सर्वप्रथम फारसी में हुयी थी, फिर आवश्यकता पड़ने पर उसे हिन्दी में परिवर्तित किया गया। छंदों की लयात्मकता और नाद सौन्दर्य के आधार पर यह बात प्रमाणित होती है कि इसका रचयिता कवि था। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है-

रसूल पैगम्बर जान बसीठ। यार दोस्त बोले जो ईठ।।
मर्द मनस जन है इस्तरी। कहत अकाल बबा है मरी।।
बिया बिरादर आव रे भाई। बिनशी मादर बैठरी माई।।
तुरा बुगुफतम मैं तुझ कह्या। मुजा बिमदीतू कित रह्या।।
राह तरीक सबील पहचान। अर्थ तिहू का मारग जान।।

अमीर खुसरो की पहेलियों का भारतीय संदर्भ में काफी महत्व है। इसके माध्यम से हम भारतीय संस्कृति की झलक पाते हैं। इसमें लोक-परम्परा, प्रकृति-चित्रण , मनुष्य स्वभाव, जीव-जन्तु, जाति-बिरादरी, तीज-त्यौहार इत्यादि का वर्णन किया गया है। श्रृंगार भारतीय साहित्य का महत्वपूर्ण वर्ण-विषय रहा है। इसमें श्रृंगार-प्रसाधनों का सूक्ष्म निरीक्षण करके उसकी अलग-अलग विशेषता प्रकट

करना खुसरो की पहेलियों में दिखायी पड़ता है। काजल को महत्त्वपूर्ण श्रृंगार-प्रसाधन माना जाता है। इसके संदर्भ में खुसरो ने एक पहेली की रचना की है-

आदि कटे से सबको पाले। मध्य कटे तो सबको मारे।।

अंत कटे तो सबको पीठा। खुसरो वाको आंखो दीठा।।

मुस्लिम साम्राज्य में पर्दा प्रथा का विशेष प्रचलन था। पर्दे भी रंग-बिरंगे हुआ करते थे। वे आवरण का कार्य तो करते ही थे साथ-साथ सज्जा और श्रृंगार के साधन के रूप में भी स्वीकृत करते थे। पालकी में बैठी स्त्री को पर्दे के भीतर रखा जाता था, वह पर्दा भी अत्यंत आकर्षक होता था। राह चलता व्यक्ति उसके कारण आकृष्ट हो जाता था। श्रृंगार के लिये स्त्रियाँ हीरे, मोती, जवाहरात का बहुत उपयोग करती थी। इसका वर्णन खुसरो की पहेलियों में मिलता है। खुसरो ने अपनी एक पहेली में स्नानागार का एक मनोरम दृश्य प्रस्तुत किया है-

शुभ के कारज बना एक मंदर, पवन न जावे वाके अंदर।

इस मंदर की रीति दिवानी, बिछावै आग और ओढ़े पानी।।

खुसरो की पहेलियों में भारतीय जातियों का और उनके व्यवसाय का वर्णन किया गया है। भारतीय समाज की विशेषता है कि प्रत्येक जातियों का अपना परंपरागत व्यवसाय होता है। इस व्यवसाय का बहुत बारीक विश्लेषण खुसरो ने अपनी पहेलियों के माध्यम से किया है। इन जातियों में मुख्यतः बढ़ई, लुहार, धुनिया, कुम्हार, बरई, नाई हैं। इन जातियों के जीविकोपार्जन के लिये अपने कुछ औजार होते हैं। इनका वर्णन खुसरो ने इतनी प्रमाणिकता के साथ किया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि खुसरो का इनके साथ गहरा लगाव रहा होगा। इन जातियों की विशेषताओं को सूक्ष्मता के साथ प्रकट करने पर यह बात सिद्ध होती है कि खुसरो का लोकानुभव गहरा था।कुम्हार जाति उसके चाक और डोरे के संदर्भ में खुसरो ने अलग से एक-एक पहेली की रचना की है। सर्वप्रथम कुम्हार की विशेषता बतलाते हुये लिखा है- कीली पर खेती करै औ पेड़ में दे दे आग।
रास ोवै घर में राखे , वहाँ रह जाय राख।।
कुम्हार के चाक का वर्णन करते हुये लिखा है-
चार अंगुल का पेड़ सवा मन का छत्ता।
फल लगे अलग-अलग पक जाए इकट्ठा।।
कुम्हार के डोरे का वर्णन करते हुये लिखा है-
पानी में निसि दिन रहे जाके हाड़ न माँस।
काम करे तलवार का फिर पानी में बास।।

अमीर खुसरो ने अपनी पहेलियों में जीव-जन्तुओं का भी वर्णन किया है। इनमें मुख्यतया मोर, मधुमक्खी, भौंरा, बया का घोसला, बीर बहूटी और बिच्छु हैं। अमीर खुसरो को भारतीय पक्षियों में मोर अत्यधिक प्रिय है। यह भारतीय संस्कृति का प्रतीक भी है। इसका वर्णन करते हुए खुसरो ने लिखा है-

एक जानवर रंग-रंगीला, बिन मारे वह रोए।

उसकी मां पर तीन तलाकें जो बिना बताए सोए।।

मधु के छत्ते का वर्णन करते हुए लिखा है-

एक गांव सधा कूएं, कुएं कूएं पनिहार।

मूरख तो जाने नही चतुरा करै विचार।।

भौरा का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है-

श्याम बरन पीताम्बर बांधे मुरलीधर ना होय।

बिन मुरली वो नाद करता है बिरला बूझे कोय।।

बिच्छू के विषय में लिखा है-

आगे से वह गाठ-गठीला पीछे से वह टेढ़ा।

हाथ लगाये कहर खुदा का बूझ पहेला मेरा।।

इसी के साथ उन्होंने भारतीय वृक्षों और वनस्पतियों का भी वर्णन किया है। आम का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है-

एक पुरुष जब मद पर आवै, लाखों नारी संग लिपटावै।

जब ओ नारी मद पर आवै, तब ओ नारी नर कहलावै।।

जामुन के बारे में लिखा है-

काजल की कजरौटी उधौ का श्रृंगार।

हरी डार पर मैना बैठी है कोई बूझनहार।।

निबौरी के बारे में लिखा है-

तरूवर से एक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया।

बाप का उससे नाम जो पूछा, आधा नाम बताया।।

आधा नाम पिता पर प्यारा, बूझ पहेली गोरी।

अमीर खुसरो यूं कहै, अपनो नाम निबौरी।।

इसी प्रकार खुसरो ने मक्का और अरहर जैसी फसलों के विषय में भी लिखा है। अरहर को छरहरी नायिका के रूप में चित्रित करते हुए लिखा है-

गोरी सुन्दर पातली के सर कारे रंग।

ग्यारह देवर छोड़के चली जेठ के संग।।

इस दोहे में जेठ शब्द का 'श्लेष' प्रयोग किया गया है। एक जेठ तो बारह महीनों का जेष्ठ है। दूसरा पति का बड़ा भाई है। अरहर अषाढ़ में बोयी जाती है और जेष्ठ में काटी जाती है। इन पंक्तियों में यही दर्शाया गया है कि वर्ष के जो ग्यारह महीने हैं वो अरहर के देवर की तरह हैं। इसके अतिरिक्त जो दूसरा अर्थ ध्वनित हो रहा है। उसके अनुसार उस समय स्त्रियाँ अपने पति को छोड़कर जेठ के साथ भी निकल जाती थी। इसी तरह अमीर खुसरो ने दैनिक जीवन की ेर सारी वस्तुओं को भी अपनी पहेलियों की विषय-वस्तु बनाया है। ताला का वर्णन करते हुये लिखा है-

बात की बात ठिठोली की ठिठोली।

मरद की गांठ औरत ने खोली।।

इसी तरह दियासलाई का वर्णन किया है-

पी के नाम से बिकत है, कामिनी गोरी गात।

एक बेर दो बेर सती भई, दिया न पूछे बात।।

भारतीय परम्परा में हुक्का पीना और सुरती खाना नाश के दो व्यसन है। इन पर भी अमीर खुसरो ने पहेलियों की रचना की है-

अग्निकुंड में घर किया और जल में किया निवास।

परदे परदे आवत है अपने पिया के पास।।

खुसरो के साहित्य में भारतीय लोकतत्त्व का विशिष्ट निरूपण किया गया है। उन्होंने अपने समकालीन रीति-रीवाज और परम्पराओं को अपनी कविताओं में स्थान दिया है। इसी में एक प्रमुख परम्परा 'बाबुल गीत' की रही है। ग्रामीण क्षेत्र में लड़कियाँ सर्वप्रथम जब अपने पिता का घर छोड़कर अपने पति के घर जाती हैं, उस समय उनका रोना एक अजीब करूणामय परिस्थिति का निर्माण करती है। यह 'बाबुल गीत' आज भी उत्तरी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में विदाई के समय गाया जाता है। इसी में से एक प्रसिद्ध 'बाबुल गीत' इस प्रकार है-

'काहे को बियाहे परदेस,

सुन बाबुल मोरे।

भइया को दीहे बाबुल महला-दुमहला,

हमके दिहे परदेस, सुन बाबुल मोरे।

मैं त बाबुल तेरे घूंटे की गइया,

हांका-हूंकी जाऊँ परदेस, सुन बाबुल मोरे।

मैं त बाबुल तेरे पिंजड़े की चिड़िया,

रात बसे उड़ जाऊँ, सुन बाबुल मोरे।.....'

यह स्वयं में एक आश्चर्य की बात है कि राजाओं-महाराजाओं के साथ महलों एवं नगरों में रहने वाले खुसरो को इन ग्रामीण परम्पराओं एवं जनसामान्य की मनोदशा को परखने की अकूत शक्ति थी। खुसरो के समय चिकित्सा पद्धति इतनी सर्वजन सुलभ न थी तो लोग वैद्य एवं हकीमों के पास जाया करते थे और वे ग्रामीण जड़ी-बूटियों के माध्यम से उपचार करते थे । खुसरो ने अपनी पहेलियों के माध्यम से रोगों के उपचार हेतु जड़ी-बूटियों का नुख्शा भी बतलाया है-

लोध फिटकरी मुर्दासंख। हल्दी जीरा यक-यक टंक।।

अफयून चना भर मिर्चे चार। उरद बराबर थोथा डाल।।

पोस्त के पानी पुटली करे। तुरत पीर नैनो की हरे।।

निःसंदेह पहेलियाँ और मुकरियाँ खुसरो की प्रसिद्धि का कारण है। इन पहेलियों और मुकरियों के अतिरिक्त खुसरो ने पर्व, उत्सव एवं ऋतुओं के अनुकूल गीतों की रचना की है। भारतीय परम्परा में खुसरो का और महत्वपूर्ण योगदान संगीत के क्षेत्र में है। उन्होंने भारतीय संगीत में कव्वाली के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कव्वाली मुख्यतः अरब देश के संगीत की पद्धति थी, सूफी साधक इसके माध्यम से अपने आराध्य को खुश करते थे अथवा उसके मिलन-विरह के गीत गाया करते थे। अमीर खुसरो ने हिन्दी में कव्वालियों की रचना करके उसे लोकप्रिय बनाया। उनके विषय में कहा जाता है कि वे न सिर्फ कव्वालियों के रचनाकार थे अपितु एक निपुण गायक एवं संगीतकार भी थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'रसापलुलएजाज' में भारतीय संगीत और संगीतकारों का उल्लेख किया है।

अमीर खुसरो ने जिस हिन्दी का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है, उसका स्वरूप तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एवं चौदहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। यह भाषा मध्य देश के विशाल भूखण्ड में प्रचलित थी। परम्परा से राजस्थानी और ब्रज भाषा में साहित्य की रचना होती थी। परन्तु सम्पर्क का माध्यम खड़ी बोली थी। खुसरो ने जनसामान्य में प्रचलित इस लोक भाषा का साहित्य में प्रयोग करके एक अभिनव शुरूआत की थी। अमीर खुसरो फारसी के प्रकाण्ड पण्डित थे। फारसी भाषा में उन्होंने अनेकानेक रचनाएँ की हैं। मुसलमान और फारसी भाषा के ज्ञाता होते हुये भी अमीर खुसरो का जन्म भारत में हुआ था। उनको भारतीय प्रकृति, परिवेश, भाषा, संस्कृति और रीति-रीवाज से अनन्य लगाव था। वे अपनी रचनाओं में भारतीय भाषाओं, पर्वतों, नदियों, ऋतुओं पर्वों और उत्सवों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वे भारतवर्ष को अपना देश मानने के साथ विश्व के अन्य देशों से इसे उत्कृष्ट बतलाया है- ''भारत संसार के सब देशों से श्रेष्ठ और खुरसान, कंधार, रोम और ईरान की अपेक्षा अत्यधिक सुन्दर है। भारत के फूल, भारत के नर-नारी, भारत के पशु-पक्षी अद्वितीय हैं। उनकी तुलना किसी और देश से नहीं की जा सकती, भारत तो स्वर्ग से भी रमणीय स्थान है- भारत का पक्षी मोर अपनी सुन्दरता में अप्रतिम है।'' इस तरह जाति, धर्म, देश, भाषा से ऊपर उठकर खुसरो ने सांस्कृतिक समन्वय का कार्य अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है। इससे भी अधिक भारत देश से अपना लगाव प्रदर्शित करके खुसरो ने सच्चे राष्ट्रभक्त या देश-भक्त होने का प्रमाण दिया है।

बोध प्रश्न 1

क . रिक्त स्थानों की पूर्ति करो-

1. अमीर खुसरो का जन्म.....नामक स्थान पर हुआ। (पटियाला/आगरा/दिल्ली)

2. अमीर खुसरो के गुरु का क्या नाम था?

   (1) कबीर (2) निजामुद्दीन औलिया (3) ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती

3. अमीर खुसरो की रचना कौन-सी है?

(1) पृथ्वीराज रासो (2) खालिकबारी (3) कीर्तिलता

17.5 सारांश

इस इकाई में आपने अमीर खुसरो से संबन्धित विभिन्न पहलुओं की जानकारी प्राप्त की। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकते हैं कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में खुसरो का क्या योगदान एवं महत्त्व है। साथ ही आप ने जाना खुसरो जिस समय रचना कर रहे थे , वह राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से काफी अस्थिरता का समय था। परन्तु उन्होंने परिस्थितियों के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया अपितु सभी चुनौतियों का साहस के साथ सामना किया। खुसरो एक साथ सैनिक, कवि, सूफी साधक एवं कुशल राजनीतिज्ञ थे । उनकी रचनाओं को पढ़ने पर आपको लोकव्यवहार का ज्ञान होगा, श्रृंगार के छींटे पढ़ेंगे , सूफी प्रेम का एहसास होगा।

खुसरो के साहित्य में ही आपको सर्वप्रथम खड़ी बोली हिन्दी का परितिष्ठित रूप दिखायी पड़ेगा। इस इकाई में आपको उक्त भाषा के कुछ नमूने भी दिखायी पड़ेगें।

17.6 शब्दावली-

हिन्दवी: भारत में रहने वाले मुसलमान फारसी लेखक हिन्द की देशी भाषा के लिए 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग करते हैं।

मुकरियाँ: मुकरना का अर्थ नकारना होता है। एक पद्य जिसमें पहले हाँ कहा जाए फिर उसका खण्डन किया जाय। इस लोकशैली का प्रयोग अमीर खुसरो ने अपने साहित्य में किया है।

खलिकबारी: अरबी, फारसी और हिन्दी का यह पद्यमय कोश है। इसकी रचना खुसरो ने की हे। इसके माध्यम से फारसी वाले हिन्दी सीखते थे और हिन्दी वाल्ो फारसी सीखते थे ।

17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

क . रिक्त स्थानों की पूर्ति करो-

1. पटियाली

2. निजामुद्दीन औलिया

3. खालिकबारी

17.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री -

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

डॉ. बच्चन सिंह,हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

17.9 निबंधात्मक प्रश्न-

1. अमीर खुसरो का जीवन परिचय दीजिए तथा सिद्ध कीजिए अमीर खुसरो हिन्दु-मूस्लिम एकता के अग्रदूत थे।

3. अमीर खुसरो का साहित्यिक परिचय देते हुए खड़ी बोली के विकास में उनके योगदान का मूल्यांकन कीजिए।